

कथाकार प्रेमचन्द और गबन

गंगासागर चौधे

A Critical Study of Premchand's Gaban

KATHAKAR PREMCHAND AUR GABAN

BY

GANGA SAGAR CHAUBE, M. A.

● UDAI PRAKASHAN VARANASI ●

Price Rs. 5/-

प्रथम संस्करण

जानवरी १९६४

लेखक

२ गासागर चौखे

प्रकाशक—

हिन्दी प्रकाशक बाराबसी

आवरण

कठिनाय

मुद्रक

भोला प्रिंटिंग वर्कर्स

पियरी कर्मा बाराबसी

मूल्य

पाँच रुपये

भद्रो य प० रमाकान्त चौबे
को

जिनकी स्नेह-धारा में
लिखने-पढ़ने के योग्य
बन सका और
जिनका कर्मठ व्यक्तित्व
मेरे कर्ममय जीवन
का प्रेरणा स्रोत है।

सादर

लेखक की आगामी कृतियाँ—

- सामान्य मनोविज्ञान की कपरेका
- साहित्य और मनोविज्ञान
- जीवन और व्युत्पत्ति

मूमिका

'यवन के पूर्व प्रेमचन्द जी के प्रेमा 'सिवासदन बरदान' प्रेमचन्द 'रंगमूमि' 'कायाकल्प' निम्मा और प्रतिज्ञा उपन्यास प्रकाशित हो चुके थे जिनके माध्यम से सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं की झूँकी तो वे हिन्दी जगत के सम्मुख प्रस्तुत कर चुके थे पर सभी समस्याओं के मूल में सक्रिय धार्मिक विषमता और उससे उत्पन्न मध्यवर्गीय दुःखता का सेखा बोला जाता तो यही हो ही था जो 'यवन के साथ ही सम्भव हो सका। इस प्रकार प्रेमचन्द के कथा साहित्य में यवन ने एक नये चित्रण का उद्घाटन किया। यवन पुरुषों उपन्यासों की तुलना में प्रेमचन्द जी ने उपन्यास के अनेक नए अपनी मनोवैज्ञानिक प्रतिमा का बलकार धार्मिक दिखाया है।

सौंज प्रश्नों की कृपा से भारतवर्ष में जिस मध्य वर्ग का उदय हुआ यवन उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने उसकी रचना कही है। प्रेमचन्दजी के जीवन काल में मध्यवर्गीय भारतीय समाज की जो समस्या रही हैं उसमें धार्मिक भी बहुत परिवर्तन नहीं हो पाया है। कुस मर्यादा के ग्रहण से पीड़ित तथा धार्मिकप्रवृत्तियों के रोग से ग्रस्त 'यवन' उपन्यास का केन्द्र बरिष्ठ 'रामायण' अपनी एक साधारण ही मूल को धारण में न संभाल पाये के कारण जिस प्रकार समस्याओं के ठाने जाने में मकड़ी की तरह समझ जाता है जिस उसने अपनी मानसिक दुःखताओं के कारण स्वयं बना है। प्रेमचन्दजी भारतीय समाज की माड़ी पहचानते थे और उसमें उनकी पैठ इतनी सटीक थी कि एक पात्र के रूप में वे उस प्रकार के समाज का सहीचित्रण उपस्थित कर देते थे। रामायण जिसका जन्म उदाहरण है। जहाँ एक परिस्थिति के प्रतिक्रमता में उत्पन्न प्रतिस्तिता के विषय का प्रश्न है प्रेमचन्द जी समस्त हिन्दी उपन्यास साहित्य में अपनी प्रतिस्तिती नहीं रखते।

इन उपन्यास की मुख्य समस्या धार्मिक-धर्म की समस्या है जो भारतीय समाज के लिए धर्मशाप बन गई है। मुख्यतः मध्य वर्ग जिनकी धार्मिक स्थिति धर्ममत्त घोषणा होती है। धार्मिक प्रेम के कुरूपितार्यों से इतना पीड़ित है कि इसका प्रतिफल ही कभी-कभी सन्देहास्पद हो जाता है, समाज के लिए धार्मिक-धर्म सचमुच बहुत

बुरा मर्ज है। "बहु धन जो जीवन में सच होता चाहिए, बाम-बच्चों का पेट काट कर गड़कों को भेद कर दिया जाता है। बच्चों का दूध न मिले न सही भी की गम समझी मात्र एक न गड़के न सही मेधा और फला के बरत उगड़े न हों काई पाबाइ नहीं पर बेबी भी महते बरुए पहिनेगी और स्वामी भी गहने बरुए बनवायेने।" इन-दर बीस-बीस बन्ध पाने बाने बन्धों को देखता हूँ जो सही हुई कोठरियों में पत्नी की मर्ति बीबल काटत है किन्तु सबरे का जसपान मयस्सर नहीं होता उन पर भी गहनों की सजक सजाव रहती है। इस धामूपस प्रेम की समस्या को लेकर प्रमत्तबी ने समाज में पाई जाने वाली सभी प्रकार की स्त्रियों का अत्यन्त सजीव चित्र खींचा है और बहु स्पष्ट करम का प्रयत्न किया है कि किसी न किसी प्रकार का धामूपस प्रेम सभी बंध की स्त्रियों में होता है। चाहे वे बाभिकाएँ हा बमबा बूझाए तबबपुएँ हों अथवा अभिकामिक काल की परिखीवा पत्नियाँ धनुकूल पति की पत्नियाँ हो अथवा बलमेन बिदाह के कुपरिष्कार से अस्त बूध पुष्प की सुबती परिवर्तनी इस धामूपस प्रेम के कारण से स्वयं दुखी रहती है और तारे परिवार को दुःख में गाल देती है। जिस दिन उनका धामूपस प्रेम संपाप्त हों जाता है न सचमुच वे बेबियाँ बन जाती हैं और अपने मनोदम के प्रहाप से निरै हुए पुण्या का भी उच्चार करके न अर्पक सिद्ध होती हैं। जामपा जिस समय बाभिका की उसके मन में जाता पिता की अलावधानी के कारण तबकी हार के प्रति धनुकूल बगा जो बीबल-बाल एक असी ही हार तक विकसित होता गया जिससे वह बीबल अस्त की रंगीनियों में भी मुरझाई रही। रमानाच बय और रूप बीबी ही वृष्टियों से बालपा के योग्य पति का पर जामपा के धामूपस प्रेम में होने का जीवन पुत्र पूर्ण बना दिया। जामपा ने जिस दिन से धामूपस प्रेम को तिलांजलि देती वह एक साधारण रमणी से ऊपर उठकर देवी बन गई और अपने पैरों पर गड़ी होकर उसने भाष्य को अपने धनुकूल बना लिया तथा अपने पटक एवं पपभात पति का भी उसने सुधार कर लिया। रामेश्वरी भी धामूपस से प्रेम रखती थी और उसने भी अपने जीवन कालीन दिनों में धामूपस बनवा रखे थे पर बड़नी हुई प्राकिक कठिपारियों के कारण बाद की उमड़े बीबने पड़े। धामूपस के अभाव में रामेश्वरी अपनी पति अमानाच के साथ सुखी थी क्योंकि पति-पत्नी के बीच धामूपस प्रेम की कोई समझा नहीं थी। रोमी एवं बूध ऐडबीकेट हार्डीकौ इन्धनूपस की सुबती पत्नी रत्न भी धामूपस-प्रेम की ठिकार है जिसके कारण वह रमानाच के सम्पर्क में अत्यधिक धा गई थी। अर्थात्तव के न होने के कारण वाणिज्यिक बन्ध का प्रत्येक रत्न के धामूपस प्रेम के कारण नहीं बल पर रमानाच के प्रति उसके मन में जो कटुता का

संसार हो गया था, उसके मूल में उसका धामूपल-प्रय ही था। धामूपल-प्रय के समाप्त होते ही हम देखते हैं कि रतन का दृष्टिकोण इतना उदार हो गया है कि वह आस्था को अपने सहायक हठ करके दबाती है और उसके दुःख से स्वयं इतनी दुःखी हो जाती है कि जैसे बालका उसकी समी-बहुत ही ठहरी। यहाँ तक की देवीदीन की बुढ़ा पत्नी जगमो को भी महने बनवाने का कुछ कम शोक नहीं है। वह चरस और नाँवा पीने से बिरस होने के लिए देवीदीन को इसलिए उपरोक्त बेटी है कि उसको मेहनत की कमाई वह बीठे-बीठे फूँक दे रहा है। उसके लिए पीठे का सधुपयोग तो दो एक बाल बहम बनवा सेना ही है। भारतीय समाज की इस कुप्रथा एवं उसकी मानसिक दुबसता का अत्यन्त मर्म एवार्थकारी बिज 'मनन' में प्रस्तुत किया गया है जो सपत्न्यासकार का उद्देश्य बाल पढ़ता है। परिवार सम्बन्धों अनेक समस्यार्थें मनन में प्राये पार्श्वों के माध्यम से उठाई जा सकती थी पर उपन्यासकार ने उधर से धपनी पार्श्वों फेर ली है। धनमेस बिज, वह स्वयं में एक बहुत बड़ी समस्या है, जिससे समाज में न जाने कितन पापाचारों को प्रोत्साहन मिलता है। रतन रूप जीवन के मार से मरी एक युवती है जिसके परिचय की परिधि भी काटो नहीं है। सभी प्रकार के मर गारियों से उसका परिचय है और वह बुनियाँ की सभी रंजोनियों को जानता-समझती भी है, पर क्या उसके मन एक पन्धे छापी की प्राकांक्षा नहीं है जिसके हाथों में हाथ लेकर वह पाकों में धामुनिक समाज को मात दे सके। उसके पास धामुनिक युव की समते बड़ी क्षमि पैसा है, रूप है बचानो है तथा टर्मन के लिए माटर-कार और धामुनिक साज-सज्जाओं से युक्त रहने के लिए बंगला है पर क्या उसने इसे ही अपने जीवन की इयता समझ ली है? ये सभी वस्तुयें किसी भी स्त्री के जीवन का सधप नहीं बन सकती क्योंकि इनसे तो केवल सामाजिक महम् एवं बाह्य मुख को इच्छाओं को ही तृप्ति मिल सकती है, जिसे ही हम जीवन का एक मात्र सधप नहीं स्वीकार कर सकते। इनके प्रमाणा भी मारी जीवन की कुछ ऐहिक इच्छायें भी होती हैं जिन्हें वह स्वभावतः तृप्ति देना चाहती है। इस शारीरिक मुख की तृप्ति न तो मन-बैमन से हो। इसके लिए तो मन चाहे छापी की ही आवश्यकता है। प्रत्येक स्त्री पाता बनना चाहती है। इन्द्रमुपल के साथ रहकर रतन की भी ऐहिक इच्छा पूरी नहीं हो सकती क्योंकि न तो वह उखे मत्वृत्त प्रदान करने में ही सहायक हो सकता है और न तो रतन को शारि-रिक मूल को ही तृप्ति कर सकता है। मगता है रतन उन ने वैयक्तिक इच्छाओं की मुख्य रूप में बुझाकर मुख के सभी भौतिक साधन लपिरे हैं जिससे उसने अपने जीवन के अमाकों के साथ समझीठा कर लिया है। वह जानती है कि एक साधारण परिवार को

स्त्री को जो इतने बल-बैलब मिला है उसका एक मात्र श्रेय उसके बूढ़ पति को ही है । जिसने अपने की शक्ति से बुढ़ी रतन की इच्छाओं को खरीद लिया है तथा उसके धाम्पत्य प्रेम को क्षुब्ध देकर स्वयं को भ्रष्टा का पात्र बना लिया है । रतन भी स्वीकार करती है कि वे बेचारे उसकी सारी इच्छाओं को पूरी करने के लिए सदाबने रहते हैं और यदि जनका बस बसे तो वे रतन को धाम्पत्यों से माह हों पर रतन इसे जानने बारख ही उनके लिए धनिक उदात्तनी नहीं होती । जिस सत्तासेपन ने जालपा के स्व-शोचन पति तथा परिवार की मुच-खान्ति के साथ ऐसा सिलसाब किया कि वे ठकाइ हो गए । इस क्षुब्ध से धार्मिक समस्या धाम्पत्य-प्रेम ही समस्या से अधिक महत्वपूर्वक जान पड़ती है जिसने मानवीय भावों तक को बसा रखा है । रतन भी धाम्पत्यों से प्रेम करती है पर धर्मभाव के न होने के कारण उसका धाम्पत्य प्रेम किसी भी प्रकार के सामाजिक अथवा धार्मिक दृष्ट का समन नहीं करता । ऐसीबीन की बुढ़ा पत्नी भी धाम्पत्यों से अनुराग रखती है पर जन्हीं खरीदने के लिए उसके पास पैसे है जिससे किसी भी प्रकार के पारिवारिक कलह की सृष्टि नहीं हो पाती । रमानाय बनहीन है और बाग्या पुच्छत उस पर धाभित है जिससे वह रमानाय की बातोंपर ही विश्वास करने के कारण साम्प्रतिक बलु-स्थिति से अपरिचित रहती है । यदि वह जन्नों की भाँति मालकिन होती तो कभी भी उसका वह धाम्पत्य प्रेम पारिवारिक संकट का बारख न बन पाता क्योंकि हम देखते हैं कि जिस छत्र असे वास्तविक स्थिति का पता लग जाता है वह अपने इस धाम्पत्य प्रेम को अपने के केंचन की भाँति उछारकर निर्मल बन जाती है ।

बलुन मध्यम की प्रमुच समस्या अथ की समस्या है जिसके अन्त में बीबवी सताप्यों का जीवन बचिहीन ही नहीं हा एकता । ठबको अर्थ की धावरयकता है जिनमें से कुछ के लिये तो वह उनकी वैदिक धावरयकताओं की पूर्ति करता है और कुछ की संप्राप्तक क्षुब्ध को क्षुब्ध प्रदान करता है । पुरुष के पास शक्ति है अथवा है वह पारिवारिक धर्म-अथवा का सर्वेसर्वा है जिससे उनमें धाम्पत्य प्रेम वैसी किसी क्षुब्ध के दर्शन नहीं होते पर स्त्रियों की एकमात्र सम्पत्ति उनका धाम्पत्य ही है । क्योंकि हिन्दू धर्म शास्त्र ने अथवा हिन्दू-विवाह-पद्धति में स्त्रियों को सभी सम्पत्तियों से बन्धित रखा है और उसने यह स्पष्ट घोषित कर दिया है कि स्त्रियों का एक मात्र स्वामित्व उनके धाम्पत्यों पर ही है । यही कारण है कि उनका सारा धर्मोत्तरण धाम्पत्यों में केन्द्रीभूत ही गया है । क्योंकि अपने दिनों में वही धाम्पत्य उनकी सहायता करता है । क्या रामेश्वरी ने धावरयकता पड़ने पर अपने महने नहीं बेचे क्या जालपा ने अपने

गहनों को बेच कर धन के रूप नहीं बुकाये और यदि रतन ने बकीस साहब के स्वर्णों को धामूपखों में परिवर्तित कर लिया होता तो क्या उसे अग्त में दर-दर की लाक धाननी पड़ती ? बेक के बीस हजार स्वर्णों पर मखिमूपख का अधिकार हो सकता है, कार तथा बंगसे को बहु बेच सकता है पर यदि स्त्री धन के रूप में रतन के पास धामूपख होये तो उसे भी बेचकर क्या बहु रतन का बंगाम बना सकता वा ? इस प्रकार धामूपख प्रेम की समस्या वहीं विकट है जहाँ स्त्रियों को सम्पत्ति में अधिकार नहीं मिलता है। सम्पूर्ण भारतीय जातियों में नी त्रियों की आर्थिक स्थिति समान नहीं। अतः धामूपख प्रेम की समस्या हम सम्पूर्ण भारतीय समाज के साथ भी नहीं जोड़ सकते जिससे यह भारत के विशिष्ट लघुधन धनवा समाज की समस्या हो सकती है। विदेशों में इस प्रकार की समस्याओं के दशान इसमिए नहीं मिलते कि वहाँ नारियों को आर्थिक अधिकार प्राप्त है। मध्यमम की सबसे बड़ी समस्या है अर्वाभाव की समस्या जिसके कारण बहु म तो अपनी आबरयकताओं को ही पूरी कर पाता है और न तो अपने सामाजिक स्तर की ही रखा करके बोप स्वाभिमान एवं मर्दाना को ही प्रबुध बना पाता है जिससे स्वभावतः उनकी पति करने के लिए उसे मूठ बोलने पड़ते हैं। बीने मारनी पड़ती है और आबरयकता पढ़ने पर जेस के दरबाने भी घीकने पड़ते हैं। जिसवा जीबल उबाहरण 'गबन' का नावक रमानाब है। मानव के पतिहीन जीवन में काम-नाबना की प्रमातता देने बालों को प्रेममन्त्र जी न 'मबन' के माध्यम से निमन्त्रित किया है कि वे आकर रतन का दशान कर सें जिसने काम-नाबना को धन-अंया की सहरो में डूबो दिया है। बूड पति की पत्नी होकर भी रतन का मन पर-भुण्य के प्रति अंधम नहीं होता और न तो बालपा धपन मुबक पति को घोड़कर किसी पतिक व्यक्ति की धोर ही आकपित बाप पड़ती है क्योंकि 'मबन' की सनी तारियाँ काम-नाबना से प्रेरित न होकर प्रब-नाबना से प्रेरित होती हैं, बाहे बहु रतन ही धपवा बालपा या स्वर्णों पर अस्मत् बेचन बाली जोहरा।

इस उपन्यास की कथा ऐसे दो स्वर्णों को घेर कर चलती है जिनमें पर्याप्त दूरी है, पर उपन्यासकार ने कथाबल्लु का निर्माण ऐस बंग से किया है धार उसमें ऐसे कीशल वा परिचय दिया है कि उसमें कहीं से भी शिविमता नहीं धाने पाई है। पूरे उपन्यास की कथा रमानाब और बालपा को ही घेर कर चलती है जो उसके प्रमुख पात्र हैं। उपन्यास के पूबाड के नी प्रमुख पात्र रमानाब और बालपा हैं और उतपद के भी उनकी समस्याओं को उमादने तथा परिस्थितियों में रंग मरने के निमित्त हो-

उपन्यासकार ने धन्य पार्श्वों की व्यवस्था की है। चाहे वे समाज्ञावार में रहने वाले यमागम रामेश्वरी, रमेश बन्धु रतन तथा हनुमण्डल एडवांफैट-हाइकोर्ट हो प्रथम कलकत्ता में रहनेवाले बेबीनीग बच्चों पुत्रिस अफसर, बोहरा तथा बिनैश के प्रसह्य परिवार वाले हों। ये सभीपान मासा को मर्तियों को भक्ति बिहार जायें और उनका उस रूप में पहिनालना भी कठिन हो जाय कि वे कभी कबामासा के मण्डिनाथ से यदि रतन और कामपा का कषामूत्र तिकास दिया जाय तो एसे कषामस्तु के निर्माद्य में उपन्यासकार के लिए प्रसन्न होमे की धरयत्रिक सम्भावनाएँ होती हैं पर "यवन" की कषामस्तु प्रयत्न पुस्त एव गठित है। यदि उसमें से अपचार स्वरूप उपन्यास का बहु धंश तिकास दिया जाय तिसमें बन्धीकों के माध्यम से स्यापात्म्य में लड़े होकर उपन्यासकार ने भायछ देना धारम्भ कर दिया है।

इस उपन्यास की लोकप्रियता इसी के स्पष्ट है कि धनेक विश्वविद्यालयों ने इसे प्रथम पाठ्यक्रम में स्थान दिया है। अतः एक विस्तृत समीक्षा की धन्यत प्रावरयकता भी तिससे छात्रों को समुचित लाभ पहुँचता। मुझे यह ज्ञानकर प्रत्यक्ष प्रसन्नता हुई कि मेरे ही एक मित्र बीबे जीने इस विद्या में काम किया है तिससे उवे देखने का सोम में संवरण न कर सका। इस समीक्षा पुस्तक को पढ़ सेने पर मुझे एसा लगा कि छात्रों को कठिनाइयाँ बहुत कुछ हल हो जायेंगी। तिसने नौ सम्भावित प्रश्न परीक्षा की वृष्टि से इस उपन्यास पर किये जा सकते हैं। मखक ने उन सभी सम्भावित प्रश्नों को उठाया है और पुस्तक की सीमा में उनका समाधान देने का प्रयत्न किया है। लेखन की प्रेस-श्रम का ज्ञान नहीं जा तिससे मुझे यह पई है, पर वे ऐसी हैं कि पाठक उन्हें सरलता पूर्वक सुधार कर पढ़ सकते हैं। प्रथमी इस प्रथम कृति में भी बीबे जी ने तिस सफलता का परिचय दिया है तससे मेरी सम्भावनाएँ बढ़ गई हैं। मैं उनके आशी मश के निमित्त विज्ञामु हूँ।

द्विती विभाव
कारी हिन्दू विश्वविद्यालय
बाघबटी।

विभुवन सिंह
११.१.१४

अपनी ओर से

प्रेमचन्दजी हिन्दी-साहित्य के युग प्रबलक कथार है। उनकी रचनाओं की विशेषता एवं मोक्षप्रियता हिन्दी जगत को स्पष्ट है। रचनात्मक-कौशल की दृष्टि से यवन बहुप्रसिद्ध कवि हैं। प्रेमचन्द-साहित्य पर प्रतिनिधि-मानोचना ग्रन्थों के रहते पुस्तक का बना महत्व है? मैं नहीं जानता। हाँ, इतना सचरय कह सकता हूँ कि उपन्यास कला की दृष्टि से सुमन्यौ शैली में विस्तारपूर्वक इस रचना पर स्पष्ट रूप से विचार हो सके जो प्रेमचन्द-साहित्य के सम्प्रदायी और विद्याविधियों के लिए उपयोगी हो—इसी मूल प्रेरणा से यह पुस्तक आपके सामने है।

साहित्य के प्रति मेरी स्वाभाविक रुचि है—ईश्वरवर्गी पुस्तकालय का बातावरण और आदर्शपूर्ण भाई ठाकुर प्रसार की वा साम्प्रदाय साहित्य के प्रति अनुपम उत्पन्न करने एवं साहित्यिक रुचि विकास का मूल प्रेरक है। छात्र जीवन में श्री सम्पूर्णानन्द श्रीवास्तव श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़, धार्याय व विरचनाय प्रसाद की मित्र व कब्रखापति विप्राय व श्री सुभाकर पाण्डेय डा० नामवर सिंह भावि साहित्य क विद्वानों के साम्प्रदाय, पारोर्वाह एवं सम्पादन से लाभ उठाकर अपने विचारों को पुष्ट करने की प्रेरणा पाता रहा हूँ—प्रस्तुत इन सबके प्रति षडानत हूँ।

उन नेतृत्वों एवं कृतियों का इच्छा हूँ जिनसे मुझे प्रेरणा और सहायता मिली है। अपने मित्रों का आभाठी हूँ जिनसे सर्वत्र कुछ पाता रहता हूँ। भाई श्री मोक्षिन्द सिंह के पद्यमय अनुपम रचनाकर पाण्डेय श्री माकण्डेय उपाध्याय श्री जगदीशचन्द्र मिश्र और श्री कमलाप्रसाद जी भावि के सहयोग के निमित्त सम्प्रदाय देकर अपने प्रति उनकी आत्मीयता की सहज भावना का टोच नहीं पहुँचाना चाहता। दूर बैठे मित्रों में श्री रामकुमार मेहता और श्री मामनजी सिंह का स्मरण करता हूँ जिन्हें इस प्रयास से प्रसन्नता होगी। पुस्तक को प्रकाश में लाने का मार्ग देय श्री लक्ष्मण प्रसाद शर्मा को है। इन्होंने तथा श्री जयेश कुमार शर्मा ने जिन उत्साह और निष्ठा से पुस्तक का प्रकाशन किया है इसके लिए धन्यवाद देना ही अपना कर्तव्य समझता हूँ।

पुस्तक की त्रुटियों के सम्बन्ध में क्या कहें ? समयान्तर के कारण मुखर में शीघ्रता करनी पड़ी, फलतः मुखर की असाक्षरता एवं ठीक से न देखे जाने के कारण कहीं-कहीं टाया का क्रम इधर-उधर हो गया है। इन स्वाभाविक त्रुटियों के लिए सुविध पठकों से क्षमा चाहूँगा।

भोला प्रिय वचन के प्रबन्धक एवं क्रमवारियों को बन्धबाध देना नहीं भूल सकता किन्तु नि मुरी महदमता एवं तदपरत के घाय इसका मुखर किया है।

घादरखीम मित्र बा० विभुवन सिंह जी ने अपने व्यस्त कार्यक्रमों के बीच मुझका निराकर मुझ कृतज्ञ किया है। घत उनके प्रति घामार प्रकट करना घेय पुनीत कतव्य है।

इस प्रकार अपने गुरुवर्गों शुनेष्युषों, तथा साक्षियों के प्रति घामार प्रकट करते हुए घाकासा करता हूँ कि वे सर्वैक मेरे जीवन की संवत्-सावता म घातीर्वाय और सहायक बेटे रहेंगे।

अधस्त पंचमी 'निराना निवस'
ईरवररंगी, बाराणसी }

विगत—
गंगासागर चौबे



अनुक्रम

१—प्रोमबंद एक पुप	१४
१—बीजक परिचय एवं संस्मरण	१४
२—पूर्ववर्ती उपन्यास और प्रोमबंद	१४
३—प्रोमबंद 'साहित्यिक मन्व्यता'ए	३४
२—पद्य समीक्षा	८३
क्यातक	८२
वस्तुविधान	११३
चरित्र-चिह्न	११७
कथोपकथन	१२३
भाषा-शैली	१२८
देशकाल	१३०
उद्देश्य	१३५
१—पद्य की समस्वार्थ	
७—प्रोमबंद कीपश्चात्तक उपकथित	

प्रेमचंद : एक युग

प्रेमचन्द का नाम अपने
में स्वयं एक युग का बोध
कराता है। हिन्दी-कथा
साहित्य में प्रेमचन्द ही एक
अकेले ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने
समूचे युग का नेतृत्व किया
और कथा-साहित्य के लिए
युग प्रवर्तक का काम किया।
इसका कारण था जीवन के
प्रति महान् आस्था का होना।
प्रेमचन्द जी जीवन के सत्य
में विश्वास करते थे—जीवन
का यथाथ सत्य ही उनके
साहित्य का सत्य था।
प्रेमचन्द जी ने जीवन के
सत्य, युग के दायार्थ के
साहित्य के माध्यम से रक्त
का प्रयास किया।

प्रेमचन्द जी भारतीय जन जीवन के प्रतिनिधि लेखक और अपने को विचारधारा तथा भावनाओं के संदेश वाहक थे। जीवन की यथा एवं सामाजिक स्पन्दन ही उनके साहित्य की मूल प्रेरणा है। जन साहित्य को समाज के घरतल पर जीवन-विरलेपण की प्रेरणा दी।

प्रेमचन्द जी मानवतावादी कलाकार थे—मानवता, सत्यता एवं प्रेम को जीवन का सम्बन्ध मानते थे—यही कारण था कि जनजीवन के सुख-दुःख के प्रति, जनकी मायनाओं के प्रति उन्हें सच्ची सहानुभूति थी और साहित्य में इनके साथ न्याय करने में समर्थ हो सके। प्रेमचन्द जी ने अपने साहित्य में भारतीय जनजीवन के संघर्ष एवं समस्याओं को विविध रूप में चित्रित किया और साहित्य में मानवतावाद की प्रतिष्ठा की।

प्रेमचन्द का युग भारतीय जीवन का परतन्त्रता एवं शोषण का युग था उस युग की अपनी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ थीं। दैनिक जीवनसंघर्ष, शोषण एवं प्रपीड़न में युग की आत्म-घुट रही थी—समाज की चेतना कुचिठल हो गयी थी—दमन, अत्याचार एवं शोषण के दबाव में जीवन मौत की साँस ले रहा था।

प्रेमचन्द जी ने जीवन से ऊड़ते हुए, पिसते हुए संघपरिच्छन्न जन समाज को अपने साहित्य का मूल आधार बनाया। उस युग की आर्थिक परिस्थितियों का विरलेपण सन् १९२६ ई० में 'हिन्दुस्तान' में निम्न शब्दों में उल्लिखित है, जिसका संकेत डॉ० महेन्द्र मटनागर ने अपनी पुस्तक 'समाज्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द' में किया है—“कुछ मजदूरों को छोड़कर हिन्दुस्तान के मजदूरों को इतनी पगार मिलती है कि मुद्रिकस से उनके पेट भर सकता है और उन तक रह सकता है।” दूसरे स्थान पर पुनः इस बात का संकेत है, “हिन्दुस्तान के लोगों का एक बहुत बड़ा हिस्सा अब भी ऐसी गरीबी का दिन कष्ट रहा है कि इस तरह की बीस परिधम के देरों में ही नहीं। चिन्दगी और मौत के दरार पर उनके दिन कट रहे हैं।”

जीवन का यह सत्कालीन आर्थिक पित्र था, जिसका अनुभव स्वयं प्रेमचन्द भी अपने जीवन में कर चुके थे। प्रेमचन्द का एक आत्म-संस्मरण उनकी के शब्दों में इस प्रकार है “बादों के दिन थे। पास एक कौड़ी न

गम

थी। दो दिन एक एक पीसे खाकर काटे थे। मेरे महाजन ने उधार देने से इन्कार कर दिया था। संकोचवशा मैं उससे माँग न सका था। फिराग अल चुके थे। मैं एक युक्तसेलर की दुकान पर एक क्वाथ बेचने गया। एक चक्रवर्ती गणित कुजी दो साल हुए खरीदी थी, अथवाक उसे बड़े अतन से रखे हुए था, पर आज चारों ओर से निराशा होकर मैंने उसे बेचने का निश्चय किया। क्वाथ दो रुपये की थी लेकिन एक रुपये पर सीधा ठोक हुआ।”

यह देशा थी तत्कालीन कृषक एवं निम्नवर्गों के जीवन की। समाज के सामान्य मध्यवर्गीय परिवारों पर व्यक्तियों की स्थिति भी इसी से मिलती-जुलती थी। मध्यवर्गीय समाज का मनोबैज्ञानिक एवं सामाजिक धरातल तेजी से परिवर्तित हो रहा था। आर्थिक बोझ, पारिवारिक मर्यादा, टूटते हुए परिवार, अभावमय जीवन, नयी शिक्षा, इन सबने जीवन को नये मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया था।

इस सन्वन्ध में डा० इन्द्रनाथ मदान अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द एक विवेचन' में लिखते हैं—“मध्यमवर्ग जीवन के प्रधान और नवीन आशों के संपर्क के बीच से गुजर रहा था। पूँजीवादी या पारंपार्य सभ्यता के आघात ने जीवन के मध्यकालीन और आधुनिक दृष्टिकोण के बीच एक गहरी खाई खोद दी थी। प्रेमचन्द जी की प्रारम्भिक कृतियों का सन्वन्ध विशेष रूप से मध्यवर्गीय समाज के इसी संपर्क से है। वह सुधार करने के लिए कटिबद्ध था। सामाजिक मामलों में मध्यवर्ग ने व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का अधिक उपयोग आरम्भ किया।”

एक ओर हा समाज का निम्नवर्ग एवं मध्यमवर्ग अपनी विविध प्रकार की समस्याओं से लड़ता सड़ रहा था किन्तु दूसरी ओर देश में जन जागृति की भा सहर आ चुकी थी। भारतीय राजनीतिक जीवन में महात्मा गाँधी के आगमन से पूर देशमें एक नयी सहर कैत चुधी थी—स्वतंत्रता प्राप्ति की भावना, राष्ट्रप्रेम एवं सुधार आ शोसना का प्रचार एवं प्रसार बढ़ा। पूरा देश एक नयी अनुमूति से आत-प्रोत हो पडा—इस अनुमूति ने देश को स्वतंत्र करने का संकल्प किया।

इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने जीवन से लड़ते हुए संपरंरत दमित व्यक्तियों एवं अन-जागृति को अपने साहित्य का विषय बनाया। युग-जीवन की सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संघर्ष एवं समस्याएँ उनके साहित्य में साकार हो उठीं। सव्युगोन जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसका विरलेपण एवं चित्रण प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाओं में न किया हो।

प्रेमचन्द जी की दृष्टि व्यापक थी। जीवन के विभिन्न स्तर एवं पक्षों का सूक्ष्ममम मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में प्रेमचन्द जी की ऐशनी नवधा सक्रम एवं सकल रही—कथानक निर्माण एवं चरित्रांकन दोनों ही में प्रेमचन्द जी को अपूर्व सफलता मिली।

मानव जीवन के वैन्य एवं कारुणिक पक्ष की ओर प्रेमचन्द जी की विशेष रुचि थी—कृषकों के पीड़ित एवं छेड़ित संघर्ष शील जीवन को प्रेमचन्द जी ने मज्जी-भांति देखा था। उनके अन्तर एवं वल्ल जीवन का सूक्ष्ममम मनोवैज्ञानिक विरलेपण प्रेमचन्द जी ने किया।

कुल मिलाकर यद्दान, प्रतिष्ठा, प्रेमाभम, निर्मला, कामारूप, रंगमूमि कर्ममूमि एवं गोदान द्वारा विविध सामाजिक समस्याभा को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द जी पूरे समाज का कथारूप चाहते थे। यथाय के घराठल पर आदर्श जीवन की प्रतिष्ठा ही उनका मूल लक्ष्य था।

प्रेमचन्द जी ने अन-जीवन का नवयण्णी दी और जीवन की विरासता को अपने साहित्य में साकार किया। युग-जीवन को साहित्य के साथ जोड़कर एक नयी परम्परा का सूत्रपाठ किया। युग-जीवन की अमिष्यक्ति ने ही उनको युग-प्रसक्तक क रूप लाकर खड़ा किया। जीवन की यथार्थवादी परल, अन्तयाध पक्षों का मनोवैज्ञानिक विरलेपण ही प्रेमचन्द जी की परम्परा क रूप में आगे पठकर विकसित हुई।

प्रेमचन्द और उनके युग के संर्बन्ध में डा० रामरत्न भटनागर की निम्न पं.क्याँ प्रेमचन्द की परम्परा को आगे पदान वाली हैं।

“आश व नहीं हैं। सुनते हैं उनका युग समाप्त हो गया। परराष्ट्रीति और राजनीति वहाँ से बड़ी आसाइ है। नइ रोराजी में प्रेमचन्द के पठावे हुए समस्याओं के दृष्ट चितने फेके-वइ गये हैं, परन्तु समस्याएँ अप भी वही हैं। इहें हूइने के लिये हमें प्रेमचन्द को छोड़कर कहीं नहीं जाना पड़ेगा”

गोपी के जन-नेतृत्व से सम्पूर्ण समाज प्रभावित हुआ—रास्ता, से मुक्ति के लिए सरकार-विरोधी मोर्चे और संगठन बने, जन-आन्दोलन में बढ़ता आने लगी।

जहाँ एक समसामयिक सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है—समाज की आर्थिक नींव कमजोर थी। एक ओर रूढ़िप्रस्त संस्कारों, जातिगत भेद, अशिष्टा एवं साम्यवादिता से निर्देशित जीवन का, दूसरी ओर जन-जागृति एवं शिक्षा तथा सुधार आन्दोलनों के फलस्वरूप नया जीवन आने की तीव्र इच्छा। इस प्रकार भारतीय जन-जीवन की धारा दो समानान्तर मार्गों से आगे बढ़ रही थी।

जीवन की दुःखियों के प्रति प्रेमचन्द की दृष्टि जागृत थी। शिक्षा, वैयक्तिक, देशी जीवन, जातिगत विभेद आदि विविध पहलुओं पर उन्होंने, विभिन्न रचनाओं में विविध परियेश में ऊपर विचार किया। इन समस्याओं के मूल उद्घाटन के पीछे उनका आवेश्य जीवन एवं समाज का सही रूप में मूल्यांकन करना था। समाज को स्वस्थ रखने के लिए दुःखियों एवं मानवता विरोधी कृत्यों को नष्ट करना चाहते थे।

प्रेमचन्द की रचनाओं ने पुनर्जागरण में योग दिया। विविध वर्गों के जन-आन्दोलनों को बल मिला। इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने जन-नेतृत्व के महान् दायित्व को संभाला।

इस सम्बन्ध में डा० त्रिसुवन सिंह जी अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास और यथावत्' में लिखते हैं—

“युग की परिस्थितियों ने प्रेमचन्द जी को प्रेरित किया था। वे परिस्थितियों की ही बेन थीं। देश के अन्दर बढ़ती हुई सामाजिक रासनीतिक तथा धार्मिक और नैतिक विषमताओं की मार का प्रेमचन्द जी का सहिष्णु हृदय सह नहीं पाया और वह अति आक्रुष्ट होकर सहस्रमूर्ति के स्वर में योक्ष उठा जिससे उत्काङ्क्षित जीवन और युग का यथाथ चित्र उनकी रचनाओं में उतर आया है। वर्तमान परिस्थितियों से समाज को निकासना उन्होंने अपना पवित्र कर्तव्य समझा।”

इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने जीवन से लड़ते हुए संघर्षरत दमित व्यक्तियों एवं जन-जागृति को अपने साहित्य का विषय बनाया। युग-जीवन की सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संघर्ष एवं समस्याएँ उनके साहित्य में साकार हो चलीं। तदुत्तरीन जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसका विरलेपण एवं विचित्रण प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाओं में न किया हो।

प्रेमचन्दजी की दृष्टि व्यापक थी। जीवन के विभिन्न स्तर एवं पक्षों का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक विचित्रण करने में प्रेमचन्द जी की छेखनी मजबूत सक्षम एवं सफल रही—कथानक निर्माण एवं चरित्राकन दोनों ही में प्रेमचन्द जी को अपूर्व सफलता मिली।

मानव जीवन के वैयक्तिक एवं फारुणिक पक्ष की ओर प्रेमचन्द जी की विशेष रुचि थी—रूपकों के पीड़ित एवं उपेक्षित संघर्षशील जीवन को प्रेमचन्दजी ने मजबूत-भौति देखा था। उनके अन्तर एवं ध्यान जीवन का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक विरलेपण प्रेमचन्द जी ने किया।

कुल मिलाकर धर्यान, प्रतिज्ञा, प्रेमाग्रम, निमला, कायाकल्प, रंगभूमि, कर्मभूमि एवं गोदान द्वारा विविध सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द जी पूरे समाज का कायाकल्प चाहते थे। यथाय के धरातल पर आदरा जीवन का प्रतिष्ठा ही उनके मूल लक्ष्य था।

प्रेमचन्द जी ने जन-जीवन को नववाणी की ओर जीवन की विरासत को अपने साहित्य में स्वीकार किया। युग-जीवन का साहित्य के साथ जासूफ एफ नयी परम्परा का सूत्रपात किया। युग-जीवन की अभिव्यक्ति ने ही उनके युग-व्यक्ति के रूप साकार करा दिया। जीवन की पधार्थवादी परस्पर, अन्वयाग्र पक्षों का मनोवैज्ञानिक विरलेपण ही प्रेमचन्दजी की परम्परा का रूप में आगे चलकर विकसित हुए।

प्रेमचन्द और उनके युग के संघर्ष म डा० रामरत्न भटनागर की निम्न पंक्तियों प्रेमचन्द को परम्परा को आगे बढ़ाने वाली हैं।

“आज य नहीं है। मुनते हैं उनका युग समाप्त हो गया। परराष्ट्रनीति और राजनीति वही से चली आ रही है। नई रारानी में प्रेमचन्द के बताये हुए समस्याओं के हल चितने फीये-पड़ गये हैं, परन्तु समस्याएँ अब भी वही हैं। उन्हें हल करने के लिये हमें प्रेमचन्द को छोड़कर कहीं नहीं जाना पड़ेगा।

गाँधी के अन-नेतृत्व से सम्पूर्ण समाज प्रभावित हुआ—दासता से मुक्ति के लिए सरकार विरोधी मोर्चे और संगठन बन, जन-आन्दोलन में दृढ़ता आने लगी।

वहाँ तक समसामयिक समाजिक व्यवस्था का प्रश्न है—समाज की आर्थिक नीति कमजोर थी। एक ओर रुढ़िप्रसूत सत्कारों, जातिगत भेद, अशिष्टा एवं भाव्यबादिता से निर्देशित जीवन था, दूसरी ओर जन-अभ्युक्ति एवं शिक्षा तथा सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप नया जीवन जीने की तीव्र इच्छा। इस प्रकार भारतीय जन-जीवन की घाटा का समानान्तर मार्गों से आने लड़ रही थी।

जीवन की कुअथाओं के प्रति प्रेमचन्द की दृष्टि जागृत थी। शिक्षा, प्रेमचन्द, धैर्य, जीवन, जातिगत विभेद आदि विविध पहलुओं पर उन्होंने, विभिन्न रचनाओं में विविध परिचय में ऊपर विचार किया। इन समस्याओं के मूळ उद्घाटन के पीछे उनका उद्देश्य जीवन एवं समाज का सही रूप में मूल्यांकन करना था। समाज की स्वयं रखने के लिए कुअथाओं एवं मानवता विरोधी दृष्टियों को यन्त्र करना चाहते थे।

प्रेमचन्द की रचनाओं ने पुनर्जागरण में योग दिया। विविध वर्गों के जन-आन्दोलनों को बल मिला। इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने अन-नेतृत्व के महान् दायित्व को संभाला।

इस सम्बन्ध में डा० त्रिभुवन सिंह जी अपनी पुस्तक 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' में लिखते हैं—

“युग की परिस्थितियों से प्रेमचन्द जी को उपन्यास किया था। वे परिस्थितियाँ ही ही देन थे। देश के अन्दर यदुसी हुई सामाजिक राजनैतिक तथा आर्थिक और नैतिक विपमताओं की मार को प्रेमचन्द जी का सहिष्णु हृदय सह नहीं पाया और वह अति आक्रुष्ट होकर सहानुभूति के स्तरों में बोल उठा जिससे सरकासीन जीवन और युग का यथार्थ चित्र जनजी रचनाओं में उतर आया है। वर्तमान परिस्थितियों से समाज को निष्कासन उन्होंने अपना पवित्र कर्तव्य समझा।”

कम

इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने जीवन से जाड़ते हुए संपर्परत दमित व्यक्तियों एवं जन-जागृति को अपने साहित्य का विषय बनाया। युग-जीवन की सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक संघर्ष एवं समस्याएँ उनके साहित्य में साकार हो उठीं। उद्युगीन जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसका विरलेपण एवं चित्रण प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाशा में न किया हो।

प्रेमचन्दजी की दृष्टि व्यापक थी। जीवन के विभिन्न स्तर एवं पक्षा का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में प्रेमचन्द जी की लेखनी सघना सक्षम एवं सफल रही—कथानक निर्माण एवं परिभाषन दोनों ही में प्रेमचन्द जी को अपूव सफलता मिली।

मानव जीवन के वैय्य एवं कारुणिक पक्ष की ओर प्रेमचन्द जी की विशेष रुचि थी—कृषकों के पीड़ित एवं ह्येक्षित संघर्ष शील जीवन को प्रेमचन्दजी ने मखी-भाँति देखा था। उनके अन्तर एवं बाह्य जीवन का सूक्ष्मतम मनोवैज्ञानिक विरलेपण प्रेमचन्द जी ने किया।

पुल्ल मिलाकर वरदान, प्रतिष्ठा, प्रेमाभ्रम, निमला, कायाकल्प, रंगभूमि कर्मभूमि एवं गोदान द्वारा विविध सामाजिक समस्याओं को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द जी पूरे समाज का कायाकल्प चाहते थे। यथाय के भगवत पर आदरा जीवन की प्रतिष्ठा ही उनके मूल लक्ष्य था।

प्रेमचन्द जी ने जन-जीवन को नयवाणी वा और जीवन की विरालता को अपने साहित्य में स्वाकार किया। युग-जीवन का साहित्य के साथ चाइजर एक नये परम्परा का सूत्रपाठ किया। युग-जीवन की अमिष्यक्ति ने ही उनके युग-प्रयत्न के रूप आकर खड़ा किया। जीवन की यथार्थवादी परण, चन्तवाप पक्षों का मनोवैज्ञानिक विरलेपण ही प्रेमचन्दजी की परम्परा पर सप म आगे चलकर विकसित हुई।

प्रेमचन्द और उनके युग के संघर्ष में डा० रामरतन भटनागर की निम्न पक्षों प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाने वाली हैं।

‘आप व नहीं हैं। सुनते हैं उनके युग समाप्त हो गया। परराष्ट्रनीति और राजनीति कहीं से कहीं आस दे। नर रोशनी में प्रेमचन्द के पतावे हुए समस्याओं के हल कितने फोके-पड़ गये हैं, परन्तु समस्याएँ अब भी बड़ी हैं। उन्हें बढ़ाने के लिये हमें प्रेमचन्द को छोड़कर कहीं नहीं जाना पड़ेगा

नये साहित्य में समाजवाद का बोझाका है। परन्तु अभी इस साहित्य ने प्रेमचन्दजी द्वारा उपस्थित की हुई (और अब भी बनी हुई) परिस्थितियों को समाजवादी दृष्टिकोण से नहीं परखा है। अब वह परखेगा तो किसी को प्रेमचन्द के प्रगतिशील होने में संदिह नहीं रहेगा।”

प्रेमचन्दजी की रचनाओं का गौरव इसीमें है कि आत्म उनकी रचनाओं की तुलना विरयविस्मयत उपन्यासकारों जैसे बिकटरहूगो, टालस्टाय, गोर्की आदि से की जाती है।

‘प्रेमचन्द एक युग’ के संदर्भ में विचार करते हुए श्री जितेन्द्रनाथ पाठक के विचारों का उल्लेख करना चाहता हूँ जिन्होंने प्रेमचन्द जी के ऐतिहासिक व्यक्तित्व एवं कृति पर स्पष्टरूप से विचार किया है—

“प्रेमचन्द ने भारत की गतिशील वास्तविकता को वाणी दी। उन्होंने अपने समस्त कृतियों में देश और समाज का वर्तमान परिस्थितियों में विकासमान जन शक्तिओं का साथ दिया और उनका निर्देशन किया। यदि कुछ देश का इतिहास लुप्त हो जाय तो प्रेमचन्द का साहित्य आत्म की अमरता की वरदा और उसकी संघर्षशील जीवन शक्तियों का इतिहास प्रस्तुत करेगा।”



जीवन परिचय एवं सास्मरण

प्रेमचन्द जी का जन्म सम् १८८० ई में कृष्णा के एक निर्धन ग्रामीण कृषक परिवार में हुआ था। आप के बचपन का नाम बनपतराय था। आप के पिता कृषि से पारिवारिक आर्थिक बोझ न समझ सकने के कारण बाकसाने में पालीस रुपये मासिक के बखर हो गये थे। धार्यकाल में ही माता की स्नेह क्षाया ऊपर से टूट गयी थी और विमाता का कटु व्यवहार मिला था। सोलह वर्ष की आयु में पिता का भी देहान्त हो गया। इस प्रकार अमाव पूर्व दुःख के बोझ से बोझिल उनका जीवन प्रारम्भ हुआ।

धार्यकाल के प्रारम्भिक सुखों से प्रेमचन्द जी वंचित रहे। माँ की मृत्यु के पश्चात् प्रेमचन्द जी के पिता ने दूसरी शादी कर ली। विमाता के हृदय में घातक प्रेमचन्द के लिए कोई स्थान नहीं था। विमाता के कटु व्यवहार का प्रेमचन्द जी के जीवन पर स्थायी प्रभाव पड़ा—विमाता के कारण प्रेमचन्द जी के बाल-जीवन का स्वभाविक विकास रुक गया और उनका मानसिक

घरातल मये परिवेरा में सोचने लग्गा । प्रेमचन्द जी ने अपनी विमाता के सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखा है कि "ये इस बात का कोई भी न्याय नहीं रखती कि प्रेमचन्द उनके पुत्र नहीं तां पुत्र स्वामीय हैं, इसलिये उनके सामने दूसरों से हँसी मजाक बापरे के अन्दर ही करना चाहिये, किन्तु ये इसका न्याय नहीं रखती थीं । मुझे तेरह सालमें ही उन बातों का ज्ञान हो गया था जो बच्चों के लिए पाठक है ।" इस उद्धरण से यह बात स्पष्ट होती है कि केवल पैसा और प्यार के सुख से ही वह संतुष्ट नहीं हुये अपितु उनके मानसिक जीवन पर विमाता का छिछला घुरा प्रभाव पड़ा था ।

प्रेमचन्द जी के पिता का नाम अज्ञात रहता था—जाह्नविक के सामान्य बच्चे, पारिवारिक बोझ, कमी भी सुख की सोच नहीं ले सके । बेटे के लिये जाह कर भी सुख न ले सके । प्रेमचन्द जी को अपने पिता से असंतोष नहीं था । ये घर की वास्तविकता एवं पिता के बोझ को अच्छी तरह समझते थे । प्रेमचन्द जी ने पिता की आर्थिक समस्या का जिक्र करते हुये लिखा है कि "जोधरा के पुत्र का चमरीया झूठा हमने बहुत दिनों तक पहना है । अब तक मेरे पिता को खोजित रहे, जब तक उन्होंने मेरे लिये चारह आने से ज्यादा का झूठा कमी नहीं खरीदा ।"

प्रेमचन्द जी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में ही हुई । १३ वर्ष की आयुमें मिशन स्कूल में मर्ती हुये । प्रारम्भ में किसी प्रकार पिता जी से प्राप्त पाँच रुपये में पूरे महीने का खर्च चलाते रहे । बाद में स्वयं उपहार करने लगे और किसी प्रकार १९०४ में मेट्रिक्यूलेट की परीक्षा पास कर लिया । पुत्र १८ रुपये मासिक पर अध्यापक नियुक्त हो गये और इन्टर तथा पी० ए की परीक्षाएँ तथा अध्ययन से पास किया । अपनी शिक्षा के खर्च पर ही प्रेमचन्द जी कदु बर्षों तक अध्यापक पद पर कार्य करते करते, डिग्रीकेट बोर्ड के सचइन्सपेक्टर के पद पर नियुक्त हो गये । किन्तु खराब एम स्वाधिमानी प्रवृत्ति के कारण स्थायी रूप से इस पदों में न रह सके ।

प्रेमचन्द जी का वैवाहिक जीवन भी सुखी नहीं था । प्रेमचन्द जी का प्रथम विवाह पन्द्रह वर्ष की आयुमें ही हो गया था । कठिनायियों के

बावजूब भी शायी से इनकार नहीं कर सके किन्तु पत्नी के दर्शन के बाद उसके मनमें अतीव ग्लानि उत्पन्न हुई। पत्नी के रूप एवं व्यवहारसे सन्तुष्ट नहीं हुये। फलतः वैवाहिक जीवन सुखी एवं सन्तोषप्रद नहीं बन सका। अपने विवाह के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि "मेरा विवाह पत्नी जिले के मेहदाबाद तहसील में रामपुर गाँव में ठीक हुआ। वे भी अपने घर के जमींदार थे। कुछ पूरब की रीति रिवाज ऐसा है कि सय के घर में लोग ने दुखाया सय सैकड़ों पियरों पर में थी। हँसी मजाक व बाजार गरम था। पुरुषों के नाते तो मैं ही एक था। मुझे हँसी मजाक भ्रष्टा भी लगता था। सब हँसी मजाक करती थी, मैं अकेला उनसे परेशान था। खैर किसी तरह उनसे छवरा। मेरी स्त्री की विवाह का समय आया। कई रोज का भरसा हो गया था। डेंट गाड़ी से आना पड़ा। जब हम डेंट गाड़ी से छवरे तो मेरी स्त्री ने मेरा हाथ पकड़ कर बहना शुरू किया। मैं इसके लिये तैयार नहीं था। मुझे फिकक मालूम हो रही थी। छत्र में वे मुझे ब्यादा थी। जब मैंने उनकी सूख देखी, तो मेरा खून सूख गया।"

"वह धक्कूरत तो थी ही उसके साथ-साथ अपान की भी मीठी न थो। यह इन्सान को और भी दूर कर देता है।"

फलतः पूरब विवाह से असन्तुष्ट एवं दुःखा होने के कारण मानसिक व्यथा की प्रतिक्रिया में १९०५ में प्रेमचन्द जी ने शिवरानी नामक धात-विषया की अपनी जीवनसंगिनी बनाया। उस समय विषया विवाह की अनुमति समाज से नहीं मिल पाती थी। अतः प्रेमचन्द जी ने यह कार्य नैतिक साहम के साथ समाज को चुनौती देकर किया। शायी के सम्बन्ध में संस्मरण व रूप म शिवरानी दधीन लिखा है कि "मेरी शायी के सम्बन्ध में आपकी पापी परीह किसी का राय नहीं थी, मगर यह आप की दिलीरी थी। आप समाज का धक्कन ताड़ना चाहते थे। यहाँ तक कि अपने परयासों को भा खबर नहीं दो।"

शिवरानी ने प्रेमचन्द जी के जीवन को भर दिया। पिछले जीवन के जिन फुटु एवं अभावप्रस्त अनुभवों ने उन्हें थका दिया था उसमें विभ्राम, शक्ति एवं नयी अनुभूतियों की चेतना आयी। शिवरानी के

के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि—“वह एक निर्भीक, साहसी, बड़ बिरबलनीय, भूल स्वीकार करनेवाली और अत्यधिक प्रांसाहन देनेवाली स्त्री हैं। उसकी रचि साहित्यिक है और वह कभी-कभी कहानियाँ लिखती हैं। उसने असहयोग आन्दोलनों में भाग लिया और जेल गई। जो कुछ यह नहीं वं सकती उसकी आशा न करता हुआ मैं उससे प्रसन्न हूँ। यह टूट भले ही क्षय पर आप उसे मुका नहीं सकते।”

प्रेमचन्द जी का साहित्यिक जीवन बचपन से ही प्रारम्भ हो चुका था। पढ़ने लिखने की ओर स्वामाधिक अभिरुचि थी। प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि जब वे छोट थे तो एक मित्र के पहाँ पढ़ने जाते थे और सिखस, होशरुषा पढ़ते थे। प्रेमचन्द जी लिखते हैं—“बड़ी मुक्त लिखने का भी शौक हुआ। मैं लिखता फाड़ता, लिखता फाड़ता। कभी-कभी मेरे पिता जी हुक्का पीत मेरी कोठरी में आ जाते थे। जो कुछ मैं लिखकर रखता था पक्ष फेंते और पूछते—‘नयाप कुछ लिख रहे हो?’ मैं शर्मकर गड़ जाता। मगर इस विषय में पिता जी को कोई दिखपस्पी न थी।”

प्रारम्भिक दिनों में प्रेमचन्दजी ने रूप पढ़ा। इन रचनाओं के पढ़ने से प्रेमचन्द जी बचपना एवं सूक्त परिपक्व होने लगी। बाद में उन्होंने विविध पत्रों में लिखना शुरू किया। प्रारम्भिक दिनों में सेंशन का कार्य उन्हें में प्रारम्भ किया। प्रेमचन्द जी ने इसका अक्षेप अपने एक पत्र में किया है।

“मैंने उन्हें सप्ताहिकों और मासिकों में लिखना प्रारम्भ किया। लिखना मेरे लिये शौक ही थीस थी। मैं सरकारी नौकर था और फुरसत के समय ही लिखता था। उपन्यास के लिये मेरे हृदय में शान्त न होने वाली मूल थी और बिना भले घरे के ज्ञान के आ मुख भी मुझे मिलता था, उसे ही मैं निगल आता था। मेरा प्रथम कृत्य सन् १९०१ में छपा और प्रथम पुस्तक सन् १९०३ में। लिखन से मेरे अहम् को सुष्टि के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं हुआ। पहले मैंने सामाजिक घटनाओं पर लिखा। उसके बाद वतमाम तथा अतीव के वीरों के रेखाचित्र परा किये। सन् १९०७ ई० में मैंने धूम में कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया और निरन्तर मिलने वाली सफलता से उत्साहित हुआ। सन् १९१४ में मेरी कहानियों का अनुवाद हुआ और वे हिन्दी के पत्रों में प्रकाशित हुईं। इसके परचात् मैंने हिन्दी को

अपनाया और 'सर्वस्वतो' में लिखना प्रारम्भ किया। इसके बाद मेरा 'देवा सदन' निकला और मैंने नौकरी छोड़कर स्वतंत्र रूप से साहित्यिक जीवन पिताने का निरन्तर किया।"

उपरोक्त सन्दर्भ में प्रेमचन्दजी के व्यक्तित्व पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। प्रेमचन्दजी का व्यक्तित्व एक भूमिक एवं संचपरत परिस्थितियों से जूझने वाले व्यक्ति का जीवन था। उनका कहना था—“मैं मगधूर हूँ, मगधुरी किये बिना मुझे भोजन करने का अधिकार नहीं।”

जीवन के प्रति इमानदारी, सादगी, राष्ट्रभक्ति एवं समाज के सुधार तथा कायाकर्म की यत्नशील इच्छा उनके व्यक्तित्व की प्रधान विशेषताएँ थी। अनुपपत्ता एवं प्यारता इनमें घूट-घूट कर भरी थी।

स्वतंत्रता की उनकी प्रबल आकांक्षा थी—स्वतंत्रता के संघर्ष में १९३३ में 'विशाल भारत' में प्रेमचन्द जी ने लिखा कि 'मेरी अभिलाषाएँ बहुत सामित हैं। इस सबसे बड़ी अभिलाषा यह है कि हम अपने स्वतंत्रता संग्राम में सफल हों। मैं दौलत और शोहरत का छसुक नहीं हूँ। खाने को मिल जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हविस नहीं है। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो बार उच्च कोटि की रचनाएँ हो जाएँ, लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतंत्रता प्राप्ति ही हो।"

प्रेमचन्द जी का व्यक्तित्व के संघर्ष में उनके सुपुत्र अश्वराय जी का संस्मरण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा है—“प्रेमचन्द बहुत सीधे साध, बेहोस मुद्दखती व्यक्ति थे। जो लोग भी उनके सम्पर्क में आय उनके प्रेमचन्द का यही रूप देखने को मिला होगा। घर में भी उनका यही रूप था। घर के बाहर भी घर के भीतर—अपने बाहर और भीतर—वही भी जसमें पाइ दुर्गापन नहीं था। सब जगह वह एक था, मीठ के नीले पानी की तरह साफ, पारदर्शक। यही उस आदमी की सयमे बड़ी महानता थी कि वह किसी तरह से महान नहीं था, रूपड़े-सरो में, न तीर तरीके में न दास-बाल में, न रहन-सहन में। हर और से वह आदमी एक साधारण निम्नवर्ग का आदमी था, बास बरुघोदार गृहस्थ पाखवर्षों में रमा हुआ। क्या तो उसकी हुकिया थी—“घुटनों से जरा ही नीचे तक पहुँचने वाली मिल की बोती, घड़के ऊपर गाँड़े का कूर्ता और पैर में बंदहार जूता। यानी कुछ

मिलाकर आप उसे पहचान ही करते गवर्नरों सुख, जो अभी-अभी रॉब से चला आ रहा है, जिसे कपड़ा पहनने की भी तमीज नहीं, जिसे यह भी मालूम नहीं कि पोली-बुर्से पर चप्पल या पम्प शू पहना जाता है। आप शायद उन्हें प्रेमचंद कहकर पहचानने से भी इन्कार कर देते। लेकिन तब भी वही प्रेमचंद था क्योंकि वह हिन्दुस्तानी है। मुझे अच्छी तरह याद है कि वरसों उन्होंने सस्त के ब्याज से फिरमिच का जूता पहना और ताकि रंग रांगन को मम्हट न रहे रोस-रोस उसपर सफ़री पोतने की मुर्चावत से नजात मिल, इसलिये वह फिरमिच का जूता प्रायः रंग का होता था, जिसे आज तो शायद रिक्शा याखा मी न पहनता और शौक से ता नहीं ही पहनता और मुझे उनके दोनों पैरों की कानी हँगली की अच्छी तरह याद है जो अूते को चोरकर बाहर निकली जाती थी। सदागी इससे भाग नहीं जा सकती। अपने ऊपर कम से कम यह उनकी मिनरगी का साधारण नियम था। पर के बाकी लोग भी कोई मलमल नहीं पहनते थे मगर उनसे सभी, अच्छे थे। यों तो और कमी इतने वैसे ही नहीं हुये कि कोई बड़ी पेशा-इशारत से रहवा और मसल भी मराहूर है कि सुरा गंज का नाखून नहीं दंठा। लेकिन जहाँ तक मैं समझता उस आदमी का पेशा-इशारत की भूय या हविस थी भी नहीं”

प्रेमचंदजी के जीवन एवं कृतित्व के संबंध में और भी संक्षेप है जिनका उल्लेख करना सभव नहीं लेकिन उनसे इतनी यासों अक्षरय स्पष्ट है कि ये सादगी ईमानदारी एवं लगन के प्रतीक थे। जीवन सादा था, सत्य के प्रति आस्था और बमरत जीवन में विश्वास करते थे। जहाँ भी रहे आत्म विश्वास के साथ फर्मैरत रहे।

प्रेमचंद जी युग नायक महात्मागांधी एवं उनके द्वारा संचालित स्वतंत्रता आन्दोलन के पक्षके समर्थक थे। गांधीके व्यक्तित्व एवं व्यावहारिक पापक्रमों से बहुत प्रभावित थे। प्रेमचंद-साहित्य में सुधार आन्दोलन एवं जनजागृति का मंदरा महात्माजी के ही प्रभाव के कारण था। प्रेमचंदजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व शाना ही गांधीवाद से प्रभावित था। 'प्रेमचंद पर म' नामक पुस्तक में शिवरानी प्रेमचंद जी ने प्रेमचंदजी से एक बात का प्रसंग दिया है जो उनके जीवन पर गांधीवाद के प्रभाव का स्पष्ट करने वाली है। बात इस प्रकार है—

शिवरानी—तो आप भी क्या महात्मागान्धी के तरफदार हो गये ?
 प्रेमचंद—बरे तरफदार होने को तुम कहती हो, मैं उनका चेला हो
 गया। चेला तो उसी समय से हुआ, जब वह गोरखपुर में
 आये थे।

शिवरानी—चेले ठव हुये थे, दर्शन अब कर पाये।

प्रेमचंद—चेला होने के मानी, किसी की पूजा करना नहीं होता, यल्कि
 उन गुणों का अपनाना है।

शिवरानी—तो आपने अपना लिये ?

प्रेमचंद—मैंने अपना लिये। अपनाने को कहती हो, उसी के बाद तो
 मैंने प्रेमाश्रम लिखा है। सम् २० में बना है।

शिवरानी—वह तो पहले से ही लिखा जा रहा था ?

प्रेमचंद—इसके मानी यह है कि मैं महात्मागान्धी को बिना देखे ही
 उनका चेला हो चुका था।

शिवरानी—तो इसमें महात्मा गान्धी की कौन खास बात हुई ?

प्रेमचंद—बत यह हुई है कि जो बत वह करना चाहते हैं, उसे मैं
 पहले ही कर देता हूँ। इसके मानी यह है कि मैं उनका बना बनाया
 कुदरती चेला हूँ।

शिवरानी—यह कोई बत नहीं है और न कोई बलीछ है।

प्रेमचंद—बलीछ की कोई बत नहीं। इसके माने हैं कि दुनिया में मैं
 महात्मागान्धी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका बदेरय भी यही है कि मजदूर
 और कामकार सुखी हों, यह इन लोगों को आगे बढ़ाने के लिये आन्दोलन
 मचा रहे हैं। मैं लिखकर उनको बतसाह दे रहा हूँ। महात्मा गान्धी हिन्दू
 मुसलमानों की एकता चाहते हैं, तो मैं भी हिन्दी और उर्दू को मिलाकर के
 हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ।”

क्याकार प्रेमचंद के साहित्य लेखन का क्रम निर्वाण रूप से आजीवन
 चलता रहा। उनकी बिराष्ट कवियों का रचना-क्रम इस प्रकार रहा है।
 सेवासदन (१९१६), प्रेमाश्रम (१९२२) रंगभूमि (१९२५) गयन (१९११) कर्म

भूमि (१९३२), निमला (१९२३) कायाकल्प (१९२८), गोदान (१९३६)। उपन्यासों के अतिरिक्त उन्होंने भारतीय जीवन की समस्याओं पर खिलित, कहानियों का भी संकलन प्रकाशित करवाया जिसमें मानसरोवर (घाट भाग) विशिष्ट कहानी संकलन है।

प्रेमचंदजी ने हिन्दी पत्रकारिता के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। 'जमाना' (पूर्व पत्र) 'मर्यादा' 'माधुरी' 'हंस' एवं 'जागरण' आदि पत्रों का महत्वपूर्ण संपादन, निर्देशन एवं संचालन करते रहे। 'हंस' के माध्यम से जन-जागृति एक जन आन्दोलन को सक्रिय बनाने में प्रेमचंदजी सदैव सचेष्ट रहे। प्रेमचंद आ पत्रों एवं उनके द्वारा पढ़ने वाले प्रभाव को अच्छी तरह समझते थे, उनके पत्रों के पीछे उनका एक मन्तव्य था और इनके प्रकारानुवय्य के निमित्त उन्हें संपर्कों को देखना पड़ा। पत्रकारिता जीवन के कटु अनुभव के संबंध में उन्होंने सुप्रसिद्ध समाजशास्त्रिक कयाकार जेनेन्द्रजी का एक पत्र में लिखा था कि 'जन का अभाव है, 'हंस' में कई हथारों का पाटा पड़ा हुआ है लेकिन साम्राज्य के प्रसोभन को न रोक सका। कारिरा कर रहा है कि सबसाधारण क अनुकूल पत्र हो। इसमें भी हथारों का पाटा ही होगा। पर कर्क क्या ? यहाँ तो जीवन ही एक लम्बा पाटा है। यह कुछ बल जाय तो प्रेस के लिये काम की कमी की शिकायत न रहेगी। अभी तो मुझे ही पिसना पड़ेगा।'

जीवन एवं आजीविका के लिये प्रेमचंद जी का अनेक व्यवसायों की ओर झुकना पड़ा—गैर सरकारी और राजकीय विद्यालयों में अध्यापन स्वतंत्र लेखन, पत्रों का संपादन तथा प्रेस संचालन उनकी आजीविकाके विविध स्रोत थे। इतना ही नहीं 'जागरण' पत्र सब घाट में चल रहा था और कज को थोड़ा कुछ बढ़ गया तो १९३४ में 'चक्रवर्तिन जगत' (बम्बई) की भी यात्रा करनी पड़ी। यहाँ उन्होंने फिल्म के लिये कुछ कहानियाँ लिखीं किन्तु यहाँ का जीवन उन्हें पसन्द नहीं आया, उनकी प्रयत्न के अनुकूल वातावरण नहीं मिला। फलतः चिन्ता एवं थोका से बचे हुये बम्बई से वापस आ गये।

बम्बई से उन्होंने एक पत्र में लिखा—'मैं जिन इरतों से आया था। वनमें एक भी पूरा हावा नजर नहीं आता। ये प्रोड्यूसर जिस रंग को

कमल

कानियाँ बनाते हैं उस लोक से जो मर नहीं हट सकते। 'बलगरटी' का ये इण्टरटेनमेण्ट वेल्फू' कहते हैं। अदभुत ही मैं इनका विश्वास है। राजा रानी, उनके मंत्रियों के पक्ष्यत्र, नकली लड़ाई घोसेवाजी यही उनके मुख्य-साधन हैं। यह साक्ष्य पूरा करना ही है। कजदार हो गया या, कज पटा हुआ, मगर और कोई काम नहीं। यहाँ तो जान पड़ता है जीवन नष्ट कर रहा है।"

इस प्रकार ओषन-संपर्प की छम्बी यात्रा को समाप्त कर न अक्टूबर २०२६ को उन्होंने अपने ओषन का अन्तिम अभ्यास समाप्त कर दिया।

पूर्ववर्ती उपन्यास और प्रेमचन्द

हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचन्दजी युग-
वर्तक के रूप में आये। उपन्यास की दिशा
। एक नया मोड़ दिया और उपन्यास साहित्य
। मूल्यांकन नयी दृष्टि से किया।

प्रेमचन्दजी के पूर्व हिन्दी में उपन्यास लिखने
। शुरू थे। प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यास लेखकों
से श्री निवासदास, देवकीनन्दन खत्री, पं०
जगन्नाथ मट्ट, पं० जयोभ्यासिंह उपाध्याय, श्री
वाङ्मय दास और पं० किशोरीदास गोस्वामी
नाम मुख्य हैं।

हिन्दी का सर्व प्रथम मौखिक उपन्यास
: निवास दास लिखित 'परीक्षा गुरु' माना जाता
। प्रेमचन्द के पूर्व हिन्दी उपन्यास लेखन
कार्य भारत-रेणु युग से प्रारम्भ हुआ। 'परीक्षा
गुरु' से सामाजिक जीवन के चित्रण का प्रारम्भ
ना जाता है। इस पुस्तक में मध्यमवर्ग के
दू-दोपों की व्याख्या है। उपन्यास में नैतिकता
भरे हुए चरित्रों और आदर्शों का चित्र
या गया है। 'परीक्षा गुरु' ने हिन्दी में सामान्य
जन पर उपन्यास लिखने की परम्परा में पथ
दान किया। इसमें औपन्यासिक तर्कों का

कर्म

आभास मिलता है। इसके बाद, हिन्दी में बालकृष्ण मठ ने "नूतन ब्रह्मचारी" और 'सौ अज्ञान एक सुज्ञान' भी राधापरण गोस्वामी ने 'विधवा विपत्ति' और श्री गोकुल नाथ शर्मा ने 'पुण्यावती' भावि उपन्यास लिखे।

उपर्युक्त उपन्यासों में घटनाओं का कौतूहल, मनोरञ्जन और नैतिकता तथा आदर्शवादिता का उद्बोधन स्पष्ट रूप से मिलता है। पं० बालकृष्ण मठ ने उपन्यासों में नैतिक जीवन पर बल दिया गया। इन उपन्यासों की मापा स्पष्ट और सरल है।

श्री देवकीनन्दन खत्री के आगमन से 'पराङ्मा गुरु' से प्रारम्भ होने लगी परम्परा और विकास में अंतर आ गया। श्रीदेवकीनन्दन खत्री हिन्दी में 'विलासी' और "पेयारी" प्रकार के उपन्यास लेकर आये। "बन्धु कन्था" (१९२२) का आगमन हिन्दी उपन्यास पढ़ने वालों के दिलों में ईश्वर का संकेत है। यह पुस्तक २४ भागों में है और इसी प्रकार की दूसरी पुस्तक "बन्धुकांठा सन्तति" है। ये उपन्यास कल्पनिक और रोचक हैं। कल्पना में परिभ्रमण करने और मनोरञ्जन की पर्याप्त सामग्री इसमें प्रदानता है। यह पाठक को एक कल्पनालोक में विचरण करता है।

देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों के प्रसंग में विचार करते हुये श्रीकृष्ण बाल ने लिखा है कि—“विलासी का भाव हिन्दी में फारसी कहानियों में आ जाता है—“अलीबाबा और चालीस चोर” की कहानी में जब अलीबाबा कहता है, 'खुश आसिम सिम' तब एक सुरंग सी खुल जाती है और एक बन्द सहायक दिखाई पड़ता है। और 'बन्द हो आसिम-सिम' कहने पर उसी प्रकार बन्द हो जाता है, मानो वहाँ पृथ्वी को छोड़ कर और कुछ था ही नहीं इसी को 'विलासी' कहते हैं और फारसी कहानियों में इसका प्रायः उपयोग किया जाता है। यह फारसी से उर्दू में आया और 'अमीर हमजा' ने अनेक 'विलासी' उपन्यास लिखे जिनमें अद्भुत विलासों की सृष्टि की गई है। देवकी नन्दन खत्री ने उर्दू से लेकर हिन्दी में विलासों का प्रयोग किया, परन्तु अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति से उनमें इतना कौशल और कथित्य भर दिया कि वे उर्दू और फारसी के 'विलासों' से कहीं अधिक अद्भुत और आकर्षक बन गये।

पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन उपन्यासों के बारे में लिखा है कि "इनमें अधुसूत और असाधारण की ऐसी रेख-रेख है कि पाठक का चित्त बरकका खाकर भागे कूटा जाता है, उसे कल्पक कं गठन और चरित्र के विकास की बात याद ही नहीं रह जाती। अति प्राकृतिक, अधुसूत और असाधारण घटनाओं से आरपार्यजनक परिस्थितियों का निर्माण 'विह्वलस्मात्' कथानकों का प्रसिद्ध आकर्षण है। इन कथानकों में 'सकलका' नामक एक प्रकार की मादक द्रव्य के प्रयोग का प्रसंग प्रायः ही आता रहता है जिसके सूँघने से मनुष्य बेहोश हो जाता है। "विह्वलस्मात्" उपन्यासों का वातावरण भी साहित्यिक 'सकलका' है वह पाठक को बेहोश और अधिमूढ कर देता है, वह कथानक कं बहुरेख, गठन और पात्रों के साथ उनके सम्बन्ध की और पात्रों के मनोविकास की बात सोच ही नहीं पाता। इन उपन्यासों ने हिन्दी जनता के चित्र को ऐसे ही मादक वातावरण में डाल रक्खा था। उपन्यास के वास्तविक रूप से तो उन्होंने इस जनता को परिचित ही नहीं कराया। परन्तु आधुनिक उपन्यासों की सघन बड़ी विशेषता मनोरंजन है उसे प्राप्त करने की दुर्बल क्षमता उन्होंने अवरम उत्पन्न कर दी।"

इस युग के 'जासूसी' उपन्यासकार श्री गोपाधराम जी गहमरी का नाम विशेष रूप से बल्लेखनीय है। इन्होंने अपने जीवन काल में लगभग १५० जासूसी उपन्यास लिखे—'सूनी कौन', 'जासूस की मूख' आदि पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासों का घटनाक्रम पेप्यारी और तिलस्मी उपन्यासों से भिन्न था। बुद्धि उत्कृष्ट की प्रधानता थी क्योंकि इत्या को जानकारी और अपराधी का पता लगाने के लिए बुद्धि बल की विशेष आवश्यकता पड़ती है। ये जासूसी उपन्यास हिन्दी में अग्रणी जासूसी उपन्यास के प्रमाण से आये थे।

प्रेमचन्द कं पूर्ववर्ती उपन्यासकारों में पं० चित्तोरीलाल गोस्वामी का स्थान महत्वपूर्ण है। गोस्वामी जी ने लगभग ६५ उपन्यासों की रचना की। इनमें सामाजिक, तिलस्मी, जासूसी आदि सभी प्रकार के उपन्यास हैं। धारा, अपना, लक्षण तपस्विनी, रश्मि बेगम, लखनऊ, इन्द्रावतारिणी इनके विशिष्ट उपन्यास हैं। इनके उपन्यासों में प्रेम का पिस्तार है समझाओं का आभाव है और इनके उपन्यास बहुत सुन्दर मुद्रान्त पद्धति पर लिखे गये हैं। इसके सम्यन्ध में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य' में कहा

है कि 'इनकी रचनायें साहित्य ज्योति में आती हैं। इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूप रंग, चित्ताकर्षक बर्णन और थोड़ा बहुत चरित्र चित्रण भी अवश्य पाया जाता है।'

हिन्दी में गोस्वामी जी ने कुछ ऐतिहासिक उपन्यास लिख कर हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास परम्परा के अग्रदूत के रूप में हमारे सम्मुख आये। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में कानन कुसुम, मन्दिषका वेशी प्रमुख हैं। गोस्वामी जी के इन उपन्यासों की भाषा संस्कृतनिष्ठ है और उन पर रोमांस का प्रभाव अधिक है।

उपरोक्त उपन्यासों में घटनाका ही प्रधानता ही विद्वत्सी और आसूसी उपन्यासों का कल्पना लोक था। चरित्र विरलेपण की ओर विशेष ध्यान नहीं था, उपदेश की प्रवृत्ति अधिक थी। भाषा एक मिश्रित स्वरूप को लेकर आगे बढ़ रही थी। हाँ, इतनी बात अवश्य थी कि इन उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यासों का मार्ग प्रदर्शन किया। आसूसी और ऐयारी उपन्यासों ने अनदपि को उपन्यासों के लिए आकर्षित किया।

इन उपन्यासों के सम्बन्ध में डा० रामरतन भटनागर लिखते हैं—
 "चन्द्रकान्ता का संसार रोमांस का संसार है। उसमें चरित्र चित्रण नहीं, भाषों का पद्य-प्रतिपाद नहीं, मनोविकारों का बिरलेपण नहीं, पात्रों में व्यक्तित्व नहीं। केवल कथा मात्र है—कुतूहल प्रधान, मनोरञ्जक, कि किताब हाथ में थी कि खाना-पीना गया। प्रेमचंद जी ने अपने छुटपन में उन सब विद्वत्सी और ऐयारी उपन्यासों से परिचय प्राप्त कर लिया था जो हिन्दी के इन उपन्यासों का प्रभाव उन्हें के मौखिक माध्यम से उनकी रचनाओं पर पड़ा है। परन्तु सत्री की रचना शक्ति और कल्पना एवं वर्णन शक्ति अद्वितीय थी और उनके कारण बनारस शोध ही उपन्यास लेखन का केन्द्र बन गया।"

इस युग में लिखे गये मौखिक उपन्यासों के अलावा हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में द्विविध भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं के जो अनुवाद हुए। इन उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास की परम्परा को विशेष रूप से प्रभावित किया। सरहासीन भारतीय भाषाओं में बंगला भाषा अधिक समर्थ थी चन्द्रिका, रविन्द्रनाथ ठाकुर, शम्भूदास, रमेशचन्द्र दत्त आदि विरिष्ट

उपन्यासकार थे, जिनके उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में किया गया। इस अलावा मराठी तथा अंग्रेजी के महत्वपूर्ण उपन्यासों का भी अनुवाद हुआ।

१९१८ में हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में श्री प्रेमचन्द जी का आगमन एक ऐसी हासिक घटना है। वे हिन्दी उपन्यास वर्ग के लिए युगान्तरकारी व्यक्ति और इतिहास लेखक आये। युग का नेतृत्व कर उपन्यास साहित्य को ए नई दिशा दी। प्रेमचन्द जी उपन्यासों का सामाजिक आधार लेकर आये वही प्रमर्षण जी ने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के रूपना हाक के धरातल पर समाज की यथार्थ समस्याओं का सङ्घाटित किया। घटना प्रथा उपन्यासों के ध्यान पर घटना और चरित्र का संयोजन किया गया। कल्पनिकता के स्थान पर जीवन का वास्तविकताओं पर विशेष रूप विचार किया गया।

मानव जीवन की समस्याओं और युग जीवन की अभिव्यक्ति को प्रेमचन्द जी ने उपन्यास का आधार घोषित किया। उपन्यास के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने लिखा—“श्री उपन्यास का मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता है मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और इसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास का मूल उद्देश्य है। किन्हीं भी वा आत्मियों की सूरतें नहीं मिलती वही भौतिक आत्मियों के चरित्र नहीं मिलते। जैसे—सब आत्मियों के हाथ, पंख, आँखें, कान, नाक, मुँह होते हैं, पर इतनी समानता रहने पर भी विभिन्नता भोगूँ रहती है। वही भौतिक सब आत्मियों के चरित्रों में भी बहुत कुछ समानता रहते हुए भी कुछ विभिन्नतायें होती हैं। वही चरित्र सम्बन्धी समानता और विभिन्नता, अभिन्नत्व-भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना—उपन्यास का मुख्य फलान्त्य है।”

प्रेमचन्द जी का चरित्र सामाजिक व्यक्तित्व रखता है। मानव चरित्र के चित्रांकन में प्रेमचन्द जी ने समाज के विराट्ट पट का अपने साहित्य का धरातल बनाया। जीवन के विविध पहलुओं पर सूक्ष्म ढंग से विचार किया। तरकाशील समाज के चित्रण में भारतीय ग्रामीण वर्ग के प्रति उनकी तीव्र ममता थी, उनका जीवन, भाषनाओं एवं विचारों के प्रति विशेष रुचि रखा। ग्रामीण जीवन की विशेषताओं, दुःखों एवं जीवन के लक्ष्यों को ठीक इसी रूप में उपन्यासों में रखा। ग्रामीण मारी-पुरुषों का मनोविज्ञान एवं जीवन

का बड़ा ही सफल विरलेपण किया। 'होरी' उनका समर्थ एवं अमर पात्र है जिसने पूरे कृपक वर्ग का प्रतिनिधित्व किया है।

प्रेमचन्द जी का साहित्य सुचारवादी दृष्टिकोण रखता है—जीवन के कृपयाभों, कुसंस्कारों एवं अन्वधिर्वास के जीवन पर उन्होंने साहित्य के माध्यम से तीव्र आघात किया। इन पर व्यंग और चोट करके उन्होंने जीवन को गौरव प्रदान किया। भारतीय समाज का कोई ऐसा समस्यापूर्ण पक्ष नहीं था जिसपर उन्होंने न खिन्ना हो। साम्प्रदायिकताकी समस्या, ग्रामीण जीवन की समस्या, अछूत वर्ग की समस्या, बेरखा जीवन एवं विधवा विवाह की समस्याओं पर विशिष्ट रूप से विचार किया। प्रत्येक उपन्यास में उनके पात्र कृपयाभों एवं सामाजिक समस्याओं के शिकार हुए पाये जाते हैं।

प्रेमचन्द जी को अस्वस्थ वर्ग का समाजप्रिय नहीं था। स्वस्थ समाज के लिए नैतिकता एवं आदर्श जीवन का मूल्यांकन चाहते थे। जीवन एवं समाज को आदर्श सूत्रों में बाँधना चाहते थे। उनको मानव एवं मानवता दोनों ही में प्रेम तथा विश्वास था। मानवता की हत्या करके समाज को देखना नहीं चाहते थे। फलतः उनका साहित्य मानवता के मूल्यों को सशत्रु स्वीकार करता है।

जीवन एवं साहित्य के संबंध में उन्होंने १९३६ में प्रगतिशील लेखक संघ में भाषण किया था—“हमने जिस युग को पार किया है, उसे जीवन से कोई मतलब नहीं था। हमारे साहित्यकार कल्पना की एक सृष्टि खड़ी करके उसमें मनमाने तिलस्म बाँधा करते थे। कहीं किसानों के अजायब की दास्ताने या कहीं दास्ताने उमाल और यो हमारे अदभुत रस प्रेन की कृति साहित्य से जीवन का लगभग है, यह कल्पनाधीन था। अज्ञानो पहानो है, जीवन जीवन। दोनों परस्पर विरोधी वस्तुएँ समझी जाती थीं। कथियों पर व्यक्तिवाद का रंग चढ़ा हुआ था। प्रेम का आदर्श पासनाओं को छुन करना था और सौन्दर्य का आलों को।”

हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण देन जो प्रेमचन्द जी ने दी यह है जीवन का इमानदारी के साथ चित्रण। जीवन को जिस रूपमें उन्होंने दर्शा ठीक उता रूप में रखने का प्रयास किया। प्रेमचन्द के पूष किसी

क्याकार में जीवन का इतना धमाका और सफ़ल चित्रण नहीं बन सका था।

इसके अतिरिक्त उपन्यास कक्षा की दृष्टि से प्रेमचन्द जी के उपन्यास पूर्ववर्ती उपन्यासों से सघना मिन्न है। क्यावस्तु रचना विधान पर कौरास की दृष्टि से उनका अपना महत्त्व है जो पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से मिन्न है। शिल्पविधान विधरणात्मक न होकर विरलेपणरमक है।

प्रेमचन्द के पूष, उपन्यास घटनाप्रधान, षणम प्रकार एवं निरस अधिक थे इस कारण उसमें जीवन की सजीवता नहीं—कौरास का आनन्द का अयश्य था।

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों में मानव मन एवं व्यवहार दोनों पक्षों का विरलेपण हुआ है। मनोवैज्ञानिक परख होने के कारण, ध्यात्म एवं वर्ग के जीवन का मनोविरलेपण भी प्रस्तुत किया गया। प्रेमचन्द जी ने आन्तरिक मनोभावों का चित्रण कर उपन्यास में मनावैज्ञानिक विरलेपण पर बल दिया।

कल्पनिकता एवं मनोरंजन के स्थान पर वास्तविकता एवं उपयोगिता का मूल्यांकन प्रेमचन्द जी ने अपने उपन्यासों में किया। जीवन की स्वाभाविकता पर विचार किया।

प्रेमचन्द जी को समस्यामूलक उपन्यासकार घोषित करते हुए डॉ० महेंद्र भटनगर 'समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचन्द' में लिखते हैं—प्रेमचन्द समस्यामूलक उपन्यासकार थे। उन्होंने अपने प्रायः सभी उपन्यासों को समस्या-केंद्रित रखा है, इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द के उपन्यासों की सबसे बड़ा विशेषता उसमें पाय छाने वाले ऐसे विषय हैं या विभिन्न समस्याओं की आर सृज हो पाठक का ध्यान आकर्षित कर लत हैं। इस प्रकार उनके एक उपन्यास में यदि एक या दो समस्याएँ प्रमुख होती हैं तो दूसरी और अन्य समस्याओं का प्रासंगिक स्पर्श भी होता है, जो पदान महत्वपूर्ण है। प्रेमचन्द में यह प्रवृत्ति, 'वखान', 'प्रतिज्ञा' से लेकर 'मंगल-सूत्र' तक पाई जाती है।"

जीवन की सामान्य समस्याओं के विरलेपण के अतिरिक्त प्रेमचन्द जी ने राष्ट्रीय संगठनों को दृढ़ करने और राष्ट्रीयता की भावनाओं को जन-मानस में पुष्ट करने का भी महत्वपूर्ण कार्य अपनी रचनाओं द्वारा किया।

हिन्दी उपन्यासों के लिए प्रेमचन्द की महत्वपूर्ण देन है—जीवन एवं समाज के विविध समस्याओं का मनोविरलेपण एवं विवेचन, साहित्य के किये जीवन की यथायथा को स्वीकार करना, राष्ट्रीय आन्दोलनों को सक्रिय बनाने में सहायता करना तथा उपन्यास में कथावस्तु एवं रचना-कौशल पर नये ढंग से विचार करना आदि है।



प्रेमचन्द . साहित्यिक मान्यताएँ

जीवन और साहित्य के संबंध में प्रेमचन्द जी के विचार मौखिक थे। जीवन को छन्दाने नयी दृष्टि से और साहित्य का मूल्यांकन नये ढंग से किया। प्रेमचन्द जी जीवन-साहित्य के समकक्ष थे। साहित्य के आधार के संबंध में प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि—“साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की दीवारें खड़ी होती हैं, पसलियाँ अटारियाँ, मीनारें और गुम्बद बनते हैं लेकिन बुनियाद मिट्टी के नीचे दबी पड़ी है। उसे देखने को जो न पायेगा। (जीवन परमात्मा की सृष्टि है, इसलिये अनन्त है अथाप्य है, अगम्य है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है इसलिये सुषोभ है, सुगम है और मयादाओं से परिमित है। जीवन परमात्मा को अपने कार्यों का जवाब दे है। इसके लिये कर्म है, जिनसे वह इधर उधर नहीं हो सकता।”

साहित्य को प्रेमचन्द जी जीवन की वस्तु मानते हैं। जीवन से अलग होकर साहित्य का कोई मूल्य नहीं है। प्रेमचन्द जी कहते हैं—“साहित्य की बहुतेरी परिभाषाएँ की गई हैं, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा ‘जीवन की आस्त्रोचना’ है। चाहे वह निर्वच के रूप में हो, चाहे कहानियों के, काव्य के—इसे हमारे जीवन की आस्त्रोचना और व्याख्या करनी चाहिये।”

साहित्य का संबंध केवल जीवन-व्याख्या से नहीं है। साहित्य के माध्यम से जीवन को नयी दिशा का बोध भी होना चाहिये। प्रेमचन्द जी ने आगे लिखा कि—“अथ (पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न) साहित्य साहित्य केवल मन वहलाय की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा बसका और जो कुछ उद्देश्य है। अथ वह केवल नायक नायिका के संयोग-नियोग की कहानी नहीं सुनाता, किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है और उन्हें हल करता है।”

“साहित्य का उद्देश्य जीवन के आदर्शों को उपस्थित करना है, जिसे पढ़कर हम जीवन में कदम-कदम पर आनेवाली कठिनाइयों का सामना कर सकें। अगर साहित्य से जीवन का सही रास्ता न मिले, तो ऐसे साहित्य से काम ही क्या ? जीवन की आलोचना कीजिये चाहे चित्र कीजिये, आर्ट के द्विय लिखिये, चाहे इस्वर के द्विये, मनोरहस्य दिखाइये, चाहे धिरयव्यापी स्त्रय की उल्लास कीजिये, अगर उससे हमें जीवन का अच्छा भाग नहीं मिलता तो उस रचना से हमारा कोई फायदा नहीं। साहित्य में पित्रय का नाम है न अच्छे राश्यों को चुनकर सजा देने का, चलंकारों से याकी को रोमांचमान बना देने का। जैसे और पवित्र विचार ही साहित्य की जान है।”

प्रेमचन्द जी साहित्य को समाज समेषु शोकार करते हैं। साहित्य को समाज के साथ बसना चाहिये और समाज को दृष्टि देकर जीवन की आवश्यकताओं का दिशा बोध कराना चाहते हैं। उनका विरवास था कि साहित्य से जातीय विरायताओं का निर्माण होता है। इस संबंध में प्रेमचन्द जी लिखते हैं—“साहित्य से लोगों को बिकास मिलता है। साहित्य से आदमी की भावनाएँ अच्छी और पुरी बनती हैं। इन्ही भावनाओं का लेकर आदमी जीता है आगे लिखते हैं—“किसी राष्ट्र की सबसे मुख्य वस्तु सम्पत्ति उसके साहित्यिक आदरा होता है। व्यास, पान्नीकि ने जिन आदर्शों की सृष्टि की वह आज भी भारत का सिर ऊँचा किये हुए है। राम अगर याम्मोकि के साथे में न चलते, तो राम न रहते, सीता भी, उसी बंधि में चलकर सीता हुई।”

साहित्यकार को ईमानदारी के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का कहना है—

“जो दलित है, पीड़ित है, बंचित है, चाहे वह व्यक्ति हो या समूह उसकी हिमायत और एकत्व करना उसका फर्ज है। उसकी अदालत समाज है, इसा अदालत के सामने वह अपना इन्तगासा पेश करता है, और उसकी न्यायपुति तथा सौन्दर्य पुति को मांगत करके अपना साहित्यकार बल सफल समझता है ... पर साधारण पक्षीजों की तरह साहित्यकार अपने मुबकिफत की धार से उचित अनुचित सब तरह के दावे महां परा करता, अतिरंजना से काम नहीं लेता, अपनी धार मे बाँधे गढ़वा नहीं। वह जस्ता है कि इन व्यक्तियों मे वह समाज की अदालत पर असर नहीं डाल सकता। उस अदालत का रूप परिवर्तन अभी सम्भव है, सब आप सत्य से उनिक भी विमुक्त न हों, नहीं तो अदालत की धारणा आपकी धार से खराब हो जायगी और वह आपका खिलाफ फैसला सुना दगी।”

प्रेमचन्द जी साहित्यकार के गुरुतर दायित्व को समझते थे। बुधबाप जीवन की आशाचना करके हट जाना ही उसका काम नहीं है। समाज के संवाजन में उसका महत्वपूर्ण हाथ है। साहित्यकार को अपने छाप तथा कर्त्तव्य का सर्वैष ध्यान रखना चाहिये। यदि समाज प्रति वह अपने कर्त्तव्य से विमुक्त हुआ तो वह साहित्यकार नहीं रह जायेगा। साहित्यकार को समाज की वास्तविकता एवं गति शीक्षता पर सुस्ती दृष्टि से विचार करना चाहिये ही और साहित्य के उच्चतम भाषरों को कभी नहीं भूलना चाहिये। साहित्यकारों के दायित्व के सम्यन्व प्रेमचन्द जी का कहना है—“साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहसाना नहीं है। वह तो मटों और मदारियों, बिधूपकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है। वह हमारा पथ प्रररक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व का अगाठा है, हममें सद्भावों का संधार करता है, हमारी दृष्टि को फेलाता है—कम से कम उसका धरैरय यही होना चाहिये।

साहित्यकार का जीवन परखन की दृष्टि स्वतंत्र रखनी चाहिये—मतबाद के पीछे नहीं चलना चाहिये—समाज में होनेवाले गतिशीलताओं पर विचार रखना चाहिये—समाज की सच्चाई को ईमानदारी के साथ साहित्य में रचना चाहिये—साहित्यकार को स्वतंत्र दृष्टि का बोध कराते हुए प्रेमचन्द जी शिखरत हैं—

“यदि साहित्यकार ने अपनी रीतों के याचक बनने को आवन का सहारा बना लिया हो और उन आन्दोलनों, हलचलों और क्रान्तियों से बेखबर हो, जो समाज में हो रही हैं—अपनी ही दुनिया बनाकर रोता हँसता हो, तो इस दुनिया में उसके लिए जगह न होने में कोई अन्याय नहीं है।”

साहित्यकार की प्रगतिशीलता के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का कहना है—“साहित्यकार या कलाकार स्पष्टतः प्रगतिशील होता है, अगर वह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता। उसे अपने अन्दर एक कमी महसूस होती है और दाढ़र मी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है। अपनी कल्पना में वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छन्दता की जिस अवस्था में देखना चाहता है, वह उसे दिखाई नहीं देती। इसलिए वर्तमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओं से उसका दिल छूटता रहता है। वह इन अप्रिय अवस्थाओं का अन्त कर डालना चाहता है जिससे दुनिया जीने और मरने के लिए इससे अधिक अच्छा स्थान हो जाये। यही चेष्टा और यही भाव उसके हृदय और मस्तिष्क को सक्रिय बनाये रखता है।”

प्रेमचन्द की दृष्टि में सौंदर्य बोध करना और आनन्द की सृष्टि करना ही कला का उद्देश्य नहीं था। कला कला के लिये न मानकर कला के उपयोगवादी दृष्टि पर अधिक विचार करते थे। इस कला और सौन्दर्य सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का विचार है—“सुमे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं और जोशों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ। निरसदेह कला का उद्देश्य सौन्दर्य की पुष्टि करना है और यह हमारे आध्यात्मिक आनन्द की कुञ्जी है पर ऐसा कोई रुचिगत मानसिक तथा आध्यात्मिक आनन्द नहीं, जो अपनी उपयोगिता का पहलू न रखता हो
... - - - - - मेरा पक्का मत है कि पराध या अपरोध रूप से सभी कला उपयोगिता के सामने पुटना टक देती है।

सौन्दर्य के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—“हमने सुख का उगना और बूझना देखा है तथा और सन्ध्या की साक्षिमा देखी है, सुन्दर सृष्टि भरे हुए पृथ्वी देखे हैं, नाचते हुए मरने बोलते हैं—यह सौन्दर्य

है -- इन टरबों को देखकर हमारा अन्तःकरण क्यों खिन्न बैठता है ? इसलिये कि इनमें रंग या ध्वनि का सामंजस्य है। भावों का स्वर साम्य अथवा मेल हो संगीत की मोहकता का कारण है। हमारी रचना ही तस्वों के समानुपात में सवांग से हुई है। इसलिये हमारी अप्रमा सदा उसी साम्य की, सामञ्जस्य की लोज में रहती है। साहित्य कलाकार के व्याप्यात्मिक सामंजस्य का व्यक्त रूप है और सामंजस्य सौंदर्य की सृष्टि करता है, नाश नहीं। वह हममें बकादारी, सबाई, सहस्रमूर्ति, आत्म प्रियता और समता के भावों की पुष्टि करता है। अहाँ ये भाव हैं, वहीं रङ और जीवन है। अहाँ इनका अभाव है बडाँ कूट, विरोध, स्वाभपरता है—रूप शान्ता और मृत्यु है।”

आगे इसके सामाजिक मूल्य और विस्तार पर चर्चा करते हुए प्रेमचन्द की लिखते हैं कि—“हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरों और विद्वानों के (सामन्ती और पूँजीपतिक) हाथ की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पन्ना पकड़े रहना चाहता था, ऊँची की कढ़ावानी पर उसका अस्तित्व अबाधम्बित था और ऊँचों के सुख दुःख, आशा-निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था। उसको निगाह अन्तःपुर और बैंगलों की ओर उठवो थी। मध्यम और अल्पवृद्ध उसके ध्यान के अधिकारी न थे। ऊँचें वह मनुष्यता की परिधि के बाहर समझता था। कभी इनकी चर्चा करता भी था ता इनका मजाक उड़ाने के लिए -- वह भी मनुष्य है उसके भी हृदय है और उसमें भी आत्माएँ हैं—यह कला की कल्पना के बाहर की बात थी।”

साहित्य के मूल स्वरूप एवं व्यापार पर विचार करते हुए निम्न स्वरूप एक प्रेमचन्द की इन पंक्तियों का उद्धरण देकर समाप्त करना चाहता हूँ—

“साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सफाई प्रगट या गह हो, जिसकी भाषा, प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो जिसमें शिक्षा और शिक्षा पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अपराध में अत्यन्त होता है, जब उसमें जीवन की सबाइर्मा और अनुभूतिर्मा व्यक्त की गई हों।”

भाषा वह माध्यम है जो भाषनाओं को साहित्य रूप में व्यक्त करती है। भाषा का स्वरूप देसा होना चाहिए जो सर्व सामान्य के लिए सरल एवं बोधगम्य हो। प्रेमचन्द जी जनता की आम भाषा चाहते थे जो पिल्कुल उसकी अपनी रूपज हो—भाषा के सम्बन्ध में भी भाषा यह ईमानदारी चाहते थे अर्थात् वह वास्तविक ही जीवन के समीप की सब प्राण भाषा होनी चाहिए। वह हिन्दी शू फं धीध की मिलीजुली भाषा चाहते थे जो दोनों ही स्तरों में सरलता पूर्वक समझी जा सके—इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—“हमारे सूये के देहातों में रहनेवाले मुसलमान प्रायः ब्राह्मणों की भाषा ही बोलते हैं। जो बहुत से मुसलमान देहातों से आकर शहरों में आवाह हो गये हैं, वे भी अपने घरों में देहाती जवान ही बोलते हैं। बोलचाल की हिन्दी समझने में न तो साधारण मुसलमानों को ही कोई कठिनाता होती है और न बोलचाल की उर्दू समझने में साधारण हिन्दुओं को ही। बोलचाल की हिन्दी और उर्दू प्रायः एक ही ही है।

राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का स्पष्ट विचार था—“हमारी राष्ट्रभाषा तो वही हो सकती है, जिसका व्यापन सर्वसामान्य बोधगम्यता हो—जिसे सब लोग सहज में समझ सकें।”

उपन्यास के सम्बन्ध में प्रेमचन्दजी ने नये ढंग से विचार किया। घटनाओं एवं कल्पनिकता के विषय में विचार न करके उन्होंने उपन्यास की संख्या नयी परिभाषा की। उपन्यास के सम्बन्ध उपन्यासमें उनकी परिभाषा मौखिक है। प्रेमचन्द जी लिखते हैं—
 “मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल उद्देश्य है।”

चरित्रों के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—‘उपन्यास के चरित्रों का चित्रण बिलना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा .. उपन्यास चरित्रों के विकास का ही विषय है। अगर इसमें विकास होय है, तो वह उपन्यास कमजोर

है— इन दर्यों को देखकर हमारा अन्तःकरण क्यों खिळ उठता है ? इसलिये कि इनमें रंग या ध्वनि का सामञ्जस्य है। वाद्यों का स्वर साम्य अथवा मेल हो संगीत की मोहकता का कारण है। हमारी रचना ही तबों के समानुपात में संयोग से हुई है। इसलिये हमारी आत्मा सदा उसी साम्य की, सामञ्जस्य की खोज में रहती है। साहित्य कलाकार के आध्यात्मिक सामञ्जस्य का व्यक्त रूप है और सामञ्जस्य सौंदर्य की सृष्टि करता है, नारा नहीं। यह हममें वफादारी, सच्चाई, सहाय्यमूर्ति, आराम प्रियता और समता के भावों की पुष्टि करता है। अहाँ ये भाव हैं, वही रूढ़ और जीवन है। अहाँ इनका अभाव है वशूक, विरोध, स्थाय्यपरता है—द्रेप शत्रुता और मरुपु है।”

आगे इसके सामाजिक मूल्य और विस्तार पर बचा करते हुए प्रेमचन्द भी लिखते हैं कि—“हमें सुन्दरता की कसौटी बखलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरों और धिमासिता के (सामन्ती और पूंजीपतिक) हाथ की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पन्ना पकड़े रहना चाहता था, कहीं की कड़वानी पर उसका अस्तित्व अवलम्बित था और इन्हीं के सुख दुःख, आशा-निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता की ध्यास्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अन्तःपुर और वैगलों की ओर उठती थी। भोपड़े और जण्डहर उसके ध्यान के लक्षिकारी न थे। उन्हें वह मनुष्यता की परिधि के बाहर समझता था। कभी इनकी बचा करता भी था इनका मजाक उड़ाने के लिये वह भी मनुष्य है उसके भी हृदय है और उसमें भी आश्चर्य हैं—यह कला की कल्पना के बाहर की पल थी।”

साहित्य के मूल स्वरूप एवं आचार पर विचार करते हुए निष्कप स्वरूप एक प्रेमचन्द की इन पंक्तियों का उद्धरण इकर समाप्त करना चाहता हूँ—

‘साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रगट की गई हो, जिसकी भाषा, प्रौढ़, परिमार्जित और सुन्दर हो जिसमें दिख और दिमाग पर असर डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीयन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों।’

माया वह माय्यम है जो भावनाओं को साहित्य रूप में व्यक्त करती है। माया का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो सर्व सामान्य के लिए सरल एवं बोधगम्य हो। प्रेमचन्द जी अनन्ता की आत्म माया चाहते थे जो विन्दुमूल उसकी अपनी उपज हो—माया के सम्बन्ध में भी माया यह ईमानदारी चाहते थे अर्थात् यह वास्तविक हा जीवन के समीप की सब प्राण माया होनी चाहिए। यह हिन्दी के वाच की मिलीजुली माया चाहते थे जो दोनों ही स्तरों में सरलता के समझी जा सके—इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—“हमारे

के देहों में रहनेवाले सुसलमान प्रायः देहावियों की भाषा ही बोलते हैं, जो बहुत से सुसलमान प्रायः देहावियों की भाषा ही बोलते हैं, व भी अपने घरों में देहावी जयान हो बोलते हैं। बोलचाल की हिन्दी समझने में न तो साधारण सुसलमानों को ही कोई कठिनाता होती है और न बोलचाल की उर्दू समझने में साधारण हिन्दुओं को ही। बोलचाल में हिन्दी और उर्दू प्रायः एक ही ही है।

राष्ट्रमाया के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी का स्पष्ट विचार था—“हमारी राष्ट्रमाया तो वही हो सकती है, जिसका आधार सर्वमान्य बोधगम्यता हो—जिस सब लोग सहज में समझ सकें।”

उपन्यास के सम्बन्ध में प्रेमचन्दजी ने नये ढंग से विचार किया। परनामों एवं कल्पनिष्ठता के विषय में विचार न करके उन्होंने उपन्यास को सबया नयी परिभाषा की। उपन्यास के सम्बन्ध वक्तव्यमें उनकी परिभाषा मौखिक है। प्रेमचन्द जी लिखते हैं—
 “मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव चित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास का मूल कर्तव्य है।”

चरित्रों के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—“उपन्यास के चरित्रों का चित्रण चिंतना ही स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा छतना ही पढ़ने वालों पर उसके असर पड़ेगा... —उपन्यास चरित्रों के विकास का ही विषय है। अगर उसमें विकास होय है, तो वह उपन्यास कमजोर

हो जायगा। कोई चरित्र अंत में भी वैसी ही रहे जैसा वह पहले था—
उसके वक्त-बुद्धि और भावों का विकास न हो तो वह असफल चरित्र है।

“मिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद अपने अंदर उत्कृष्ट का
अनुभव करे, उसके सर्वभाव जाग उठें, बही सफल उपन्यास है।”

साहित्य का धर्मस्थल जीवन है। जीवन का चित्रण या ता यथार्थ
रूप में हो सकता है—या आदर्श रूप में यथार्थ रूप जीवन का स्वामाबिच्छ,
प्रकृत एवं सुखा रूप है। आदर्श रूप इससे भिन्न नैतिक एवं मर्यादा में घंघा
दृष्टा रूप है। इस प्रकार मानवके चरित्रांकन करनेवाले
आदर्श एवं साहित्य साहित्यकारों का दो धर्म हो गया—यथाथवादी और
आदर्शवादी। यथाथवादी साहित्यकार जीवन का यथा
वस्तु चित्रण करता है—जीवन की स्वामाबिच्छताओं एवं विषमताओं को
उसके ठीक यथार्थ रूप में रखता है।

प्रेमचन्द जी जीवन के आदर्शवादी पक्ष पर अधिक विचार करना
चाहते थे। आदर्शवाद के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—
“साहित्य और कला में केवल मानव जीवन की नकल करने को बहुत
ऊँचा स्थान नहीं दिया जाता। उसमें आदर्शों की रचना करनी पड़ती है।
आदर्शवाद का ध्येय वही है कि वह सुंदर और पवित्र की रचना करके
मानव्य में जो कोमल और ऊँची भावनाएँ हैं, उन्हें पुष्ट करे और जीवन
के संस्कारों से मन और हृदय में जो गह और मैत्र जमा रहा हो उसे
साफ कर दे। किसी साहित्य को महत्ता की जायि पड़ी है उसमें आदर्श
चरित्रों की सृष्टि हो।”

यथार्थवाद के सम्बन्ध आगे चलकर प्रेमचन्द जी का कहना है कि
“यथाथवादी चरित्रों को पाठक के सामन उनके परमार्थ नग्नरूप में रख देना
है। उसे इससे कुछ भयंकर नहीं कि सचचरित्रता का परिष्कार घुरा हाता है
या कुचरित्रता का परिष्कार अशुद्ध। उसके चरित्र अपनी प्रमत्तारियाँ या
सुधियाँ दिखाते हुये अपनी जीवन-स्त्रीला समाप्त करते हैं। संसार में सर्वत्र
नेकी का फल नैक और बुरी का फल बुर नहीं होता, बल्कि इसके विपरीत
दृष्टा करता है। नैक आत्मीयों के दाते हैं, पातानाएँ सहते हैं, मुसीबतें

मेझते हैं, अपमानित होते हैं, उनको नेकी का फल उझटा मिझता है, घुरे आदमी घेन करते हैं, नामवर होते हैं, घरास्त्री बनते हैं—उनको घदी का फल उझटा मिझता है। (प्रहृषि का नियम विधिघ्न है।) यथायथाही अनुभव की बेकियों में सझका होता है और घूँकि संसार में घुरे घग्निों की प्रघानेता है—घहाँ तक कि उझझल से उझझल घरित्र में भी कुड न कुड वग-घग्ने रहते हैं, इसलिये यथायथाद् हमारे घुर्यलताघों, हमारी विघ्नताघों और हमारी घ्नताघा घा नग्न घित्र होता है और इस तरह यथायथाद् हमका निरघावादी घना घेता है, मानव घरित्र पर में हमारा विरघास उठ सता है, हमको अपने घाण तक घुराई ही घुराई नजर आने सगती है।”

आदृष पयं घथाय को सारेणिक महत्व प्रदान करते घुरे प्रेमघन्द आ ने आगे विघार किया कि—“घथार्यबाद् पदि हमारी आँसैं ओख वता है, तो आदृशंघाद् हमें उठकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा घेता है। लेकिन आदृशंघाद् में यह सुख है, यहाँ इस घात की भा संका है कि हम ऐसे घरित्रों को न घित्रित कर घेठें आ सिद्धान्तों की मूर्ति मात्र हा—जिनमें जीवन न हो। किसी बेघता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस घेवता में प्राय प्रविष्ठा करना मुश्किल है।”

फलतः प्रेमघन्द जी ने आदृश पयं घथार्य पर पूरा विघार करके ‘आदृशान्मुख’ यथायथाद् की प्रविष्ठापन किया। ‘आदृशान्मुख यथार्यवाद’ की स्पष्ट व्याख्या प्रेमघन्द जी ने अपने ‘उपन्यास’ नामक निघञ में निम्न शब्दों में किया है—‘इसलिए वही उपन्यास उचघकाटि आदृशान्मुख यथार्यवाद के समझे जाते हैं, वहाँ यथार्य और आदृश का समाघेरा हो गया हा। उसे आप आदृशान्मुख यथायवाद कह सकते हैं। आदृश को सजीव बनाने क लिये हा यथार्य का उपयोग होना चाहिये।’

प्रेमघन्द जी के प्राय सभी उपन्यास ‘आदृशान्मुख यथायवाद’ का ही आदृश सामने रखते हैं—किन्तु गोदान तक आत आते यह पूर्यतमा यथाय यादी हा गये ये। सगता बा कि पर वार और अन्तिम वार वह आवन के यथार्य रूप में ये बेखना चाहते य।

गवन . समीक्षा

कथानक



परसाव के दिन हैं, आकारा में सुनहरी घटाएँ बायो हुई हैं। आसों के धागों में मूला पका हुआ है—खड़कियाँ मूला मूला रही हैं। कोई कजली गाने लगती है, कोई बारहमासा। सपके दिल उर्मगों से भरे हुए हैं। पानी साक्षियों ने प्रकृति की हरियाली से नाटा खोड़ा है।

इसी समय एक बिसाली आकर मूले के पास खड़ा हो गया—खड़कियों का मूला रुक गया। बिसाली ने अपना सन्दूक खोला और चमकती-चमकती बीजे निकालकर दिखाने लगा—उसके पास कई तरह के वाखक-वाखकामों के सामान थे। एक बड़ी आँखोंवाली बालिका—आलपा ने फिरोखी रंग का चन्द्रहार पसन्द किया—मूल्य थे बीस आने। बालिका की माता ने कहा—यह मईगा है। बार दिन में इसकी चमक-चमक जाती रहेगी। बिसाली ने सिर हिलाकर कहा—यह खी, बार दिन में तो बिटिया को असली चन्द्रहार मिल जायगा।

हार ले लिया गया। बालिका के आनन्द की सीमा न थी। उसे पहन कर वह सारे गाँव में नाचती फिरी।



मुशी हीनदयाल प्रयाग के एक गाँव में रहते थे—वह बमीवार के मुख्तार थे। गाँव पर पाक थी। इज्जत से रहने के लिये अपरासी घोड़े, गायें समो हृद्ध उनके पास थी—परन्तु घेतन के नाम पर कुछ पाँच रुपये मिलते थे, जो उनके तम्बाकू के लख के लिये भी पर्याप्त नहीं था। आलपा उनकी को खड़ी थी। आलपा को बहुत मानते थे—उसके रुचि की अनुमूल बलुपे सदैव प्रयाग से झौटते समय ले आते थे। एक दिन खप हीनदयाल बाहर से आये तो आलपा की माँ मानकी के लिये एक चन्द्रहार लाये—मानकी चन्द्रहार पाकर प्रसन्न हो गयी। आलपा ने पिता से उसी प्रकार के चन्द्रहार की माँग की आरपासनपूण प्रसुत्तर न पाकर हार के लिए उसने माँ से माँग पेश की।

मानकी ने कहा—तेरे लिए तो समुद्र से आएगा। आलपा लडाकर मारा गयी। आलपा ने गौर किया, उसकी तीन सहेलियों में, जिनको शादियाँ हो चुकी थी—किसी के भी चन्द्रहार नहीं आया था। इसी प्रकार सात वष बोस गये—शादी के दिन समीप आने लगे।



महाराज दीनदयाल के परिचितों में एक महाराज दयानाय थे—वड़े ही सम्मान और सद्बुद्धि। कचहरी के नौकर थे और पचास रुपये वेतन पाते थे। गण्य वर्गीय परिवार—पाँच मादमियों का पालन पोषण—परिवार पक्षान्ना मुश्किल था। किन्तु वे रिरखत के पक्ष में नहीं थे। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि हराम की कमाई हराम में ही आती है।

रमानाय उनका लड़का था। रुपये के कमी के कारण उन्होंने उसकी पढ़ाई छुड़वा ली—रमानाय को साल से बेकार था, शहरभ्रम खेलता, सैर सपाटे करता, दोस्तों के पक्कीत शौक पूरा करता—जीवन में लगन का अभाव था। दीनदयाल इसी नवयुवक से जालपा की शादी करना चाहते थे। दयानाय इस बोझ के लिए तैयार न थे। किन्तु रमानाय की माँ—आगेरवरी के इठ के कारण यह विषय सम्भव स्वीकार करना पड़ा। आगेरवरी घरों से पुत्र वधू के लिए तड़प रही थी। दयानाय ने आगेरवरी से अपनी आर्थिक लाभारियाँ प्रगट कर ली—किन्तु आगेरवरी ने कहा—महू आ जायेगी तो उसकी भी आँखें खुल आयगी। जूभा पड़ा और मरा हिरन हुआ। निकम्हों को राह पर जाने का इत्तसे बंदकर और कोई उपाय ही नहीं।



दयानाय की सम्जनता के कारण मुशी दीनदयाल प्रभावित हुये और कुल स्वर्ण जो विवाह में एक हजार स्वर्ण करने से हमको टीके में ही वे आये। मानकी ने अब कहा तो दीनदयाल विह्वल बोलने—मगबान्त मालिक है। इधर दयानाय टीमनाम की योजना पर्व शादी को आवश्यकताओं में जुट गये। मगर दयानाय दिय्रावे और नुमाइरा को चाहे अनप्यक समझें, पर रमानाय इसे परमायरक समझता था। रमानाय ने मोटर ठीक किया, आविशपाक्षियाँ बनवाई, नाच ठीक किया। दयानाय उसकी

उच्छ्वस करके देखकर चिंतित हो जाते थे, पर कुछ कह न सकते थे। क्या करते ?



घरात आई, तरह-तरह के समावट एवं आकषण के साथ पटाखे, आधिराबासी, फुलकारियों के तख्ते, मोटर समी कुछ वा। आसपास के क्षिप इन चीजों में क्षेत्रमात्र भी आकषण न था। हाँ वह वर को एक आँसु दखना चाहती थी। द्वारचार के समय उसकी सखियाँ उसे द्रष्ट पर खीच कर ले गयीं और उसने रमानाथ को दखा। उसका सारा विरसा, सारी स्वासीनता मानों डूमन्तर हो गयी थी। द्वारचार समाप्त हुआ। रात को फिर बाजे बजने लगे। समी लोग मरडप में डूकट्टे हो गये। मानकी प्यास से पेहाल हो रही थी, कंठ सूख जाता था, चढ़ाव आते ही प्यास भग गयी। गड़ने देखे जाने लगे, समी ने ठारीफ की। सहसा किसी ने कहा—चन्द्रहार नहीं है क्या ? मानकी ने कहा नहीं, चन्द्रहार नहीं आया। वेचारी के मातय में चन्द्रहार लिखा ही नहीं है। समपट के पीछे आसपास खड़ी थी। अब मातूम हो गया चन्द्रहार नहीं है, तो उसके कलेजे पर चोट सी लग गयी। वह आसपास जो सत बप हुए उसके हृदय में अकुरित हुई थी, जो इस समय पुष्प और पम्सव से लदी लकी थी, उस पर बसपाठ हो गया। उसने निरचय किया कि मैं कोई आमूपख न पहनूँगी। वह उसी क्रोध में मरी बैठी थी कि उसकी तीन सखियाँ आकर लकी हो गयीं। एक ने कहा—बढ़ाब पेसा ही होना चाहिये कि देखनवाले फड़क पठें। दूसरे ने कहा—धीर तो सब कुछ है केवल चन्द्रहार नहीं है। पुन एक सखी ने कहा—एक चन्द्रहार के न होने से क्या होता है बहन उसकी बगह गुलपेद तो है।

आसपास ने वक्रोक्ति भाव से कहा—हाँ दह में एक आँसु क न हाने से क्या होता है। और सब भग होते ही हैं, आँसुं हुई तो क्या, न हुई वा क्या !

तब तब घरातियों के मोजन पर आने का सन्धरा लेकर मानकी भा गई। तीनों युवतियाँ पत्नी गयीं। आसपास माता के गले में चन्द्रहार की

शोभा देखकर मन ही मन सोचने लगी—गहनों से इनका जी अथवक नहीं मरा।



दीनदयाल ने खूब दिया—फिर भी दयानाथ हठारसाह ही थे। जो कुछ मिला—सारा नाश-समाप्तो, नेग में स्रर्ष हो गई। सराफे का लफामा शुरू हो गया। फिस्त पाँच कर सय रुपये द्य मर्हाने में अदा कर देने का वादा किया। तीसरे दिन बीस लौटा देने का वादा कराक सराफ लौटा। दयानाथ चुन्ही और पिन्तित हो गये। आगेरवरी ने जब खाने के लिए कहा तो दयानाथ ने कहा—तुम खोग खाकर ग्रा लो, मुझे मूख नहीं है। गहने सौटाने की बात हो रही थी कि वहू की ओर से बन्तहार की मांग हो गई। दयानाथ ने खिन्दगी में बहुत कुछ किया था। अमीदारी लखी की थी, बेटी का व्याह किया था, किन्तु लखके के व्याह ने इनको पित्तुल लोड दिया था। सारे ध्यर्य के स्रर्षे का खिम्भेशर रमानाथ ने दयानाथ को पताया और दयानाथ ने रमा को। दयानाथ ने कहा—वहू से पदा रखने की जरूरत नहीं और पदा कितने दिन रह सकता है ?

आगेरवरी बोली—उससे तुम्ही कहो, मुझसे तो न कहा जायगा। आक्षपा से गहने माँगने की बात आई मगर वहू से गहने माँगें कीन ? रमानाथ के सामने कठिनाई थी। उसने आक्षपा के सामने मूठी और पदाइ फ पुस बांधे थे। रमा सोच रहा था कि इससे वह क्या समझेगी। पामयिकता का प्रकट करना रमानाथ के लिये स्वाभिमान का प्रश्न था। वहूत से उपाय साधे गये फाह रास्ता न निकला। रमानाथ घुरी तरह फँसे थे। वह पददा रहा था कि मैंने क्यों आक्षपा ने लीगें मारी। अब अपने मुँह का सारा मार उसी पर था, उसे इसको सरा भी शंका न थी कि एक दिन सारा भंडा फूट जायगा। इस समय वह अपने ही बनाये जाळ म फँस गया था। फँस निम्ने ? दयानाथ ने गहना माँगने पर ही जोर दिया। रमानाथ ने कहा—मैं माँग तो नहीं सकता कहिय उठा लाऊ ? दयानाथ ने कहा—नहीं मैं ऐसा न करने दूँगा। मैंने जाळ कमी नहीं किया और न कमी करूँगा। रमानाथ ने आपेरा में दयानाथ को लूप ररी-ररी सुनायी और वह पुप-

पसुनते रहे। रमानाथ शांति पाने के लिये पुस्तकालय चले गये और
नाथ अपने कमरे में पहुँचा। बहुत ही लड़िगन था।

रात के दस बज गये थे झुली चाँदनी में, छत पर आसपा लेटी हुयी
। चाँद को एक टफ देखकर, स्वप्न लोक में बिचरण करती हुयी बीषन
पुरानी स्मृतियों को दुहरा रही थी। सहसा रमानाथ मुस्कराता हुआ
था और चारपाई पर बैठ गया। रमानाथ ने अनुराग से उसे फूँकों से
गाया, फूँकों के शीतल क्षोमल स्पर्श से आसपा के कामल शरीर में गुदगुही
होने लगा। रमा को इस समय अपने कपट व्यवहार के लिये खानि
रही थी। बसने सोचा—क्या आसपा से घर की दशा साफ-साफ कह
। मेरा कृतव्य न था। उसे अपने ऊपर इतनी घृणा हुई की एक पार
में आमा कि सारा कपट व्यवहार खोल दूँ। इस बीष आसपा रमानाथ
सौन्दर्य की वक्षान कर रही थी। आसपा ने आसरा जाने की बात पूछी
रमानाथ ने 'नहीं' का उत्तर दिया। आसपा ने अन्तहार न खान की
दा पर आरोप करती हुयी बोली कि—यदि तुम नहीं खान तो तुमसे
न पाँछेंगी।

रात आधी बीत चुकी थी आसपा निद्रा में मग्न थी रमानाथ चिन्ता
न। थोड़े देर बाद वह उठा। कमरे में जाकर आसपा की से
ने की संदूक लेकर पिता के पास नीचे बरामदे में पहुँचा।
पबड़ा उठे। उन्हें उससे ऐसी चम्की न थी। उन्होंने डाँटा
रमानाथ ने कहा—आप ही का तो हुक्म था। दयानाथ न इसका
कार किया, और पबड़ाहट में उस संदूक की ओ बड़े संदूक में
। आने का आदेश दिया। पुन रमानाथ आसपा की चारपाई तक लौट
। चारपाई पर रमा के बैठते ही चाँक पड़ी। आसपा पबड़ा कर उठी
र कहा—मैं एक हुन्सपन देख रही थी जैसे कोई चोर गहने की संदूक की
लिये खिये जाता है। रमानाथ पबड़ा उठा और चोर। चोर। बिस्का
। दयानाथ भी बिस्काये। आसपा कमरे में गयी। आसपा की से
कभी न थी। वह मूर्छित होकर गिर पड़ी।

सबेरे दयानाथ गहने लेकर सराफ के यहाँ पहुँचे। सराफ के (१००)
ते थ, मगर वह केवल (१२००) के गहने लेकर संतुष्ट न हुआ। (५०)

बाकी रह गया। बोरी का हास गुप्त रहा। पुलिस में खबर खाने पर मजा फूटने का भय था। बालूपा से यही कहा गया कि मास तो मिलेगा नहीं, ब्यर्थ का संकट मले ही जाया।

बालूपा का आत्मपक्ष-मेस स्वाभाविक था। आत्मपक्ष की आकांक्षा बचपन की आकांक्षा थी। गाँव और घर में इसके महत्व को इसने खूब सुना था। यही कारण था कि जिसाती से खरीदा गया बचपन का चन्द्रहार इसके पास अथ तक सुरक्षित था। महीनों गहने की चिन्ता में चारपाई पर पड़ी रही। पास पड़ोस की पड़ोसिने समझ कर द्वार गयीं, बीन ब्यास आके समझ गये पर बालूपा ने रोग शय्या न छोड़ी। वह रमानाय की ओर से विरोध बढ़ास थी, बालूपा समझती थी कि यह घर मेरी उपेक्षा कर रहा है जब इनके पास इतना धन है, तो फिर मेरे गहने क्यों नहीं बनवाते ? यह रमा से खींची रहती और कभी-कभी दो चार बखी-कटो भी सुना देती रमानाय अपने में बलम परेशान था। सैर-सपाटे बन्द, सारी मस्ती गायब थी और बच नौकरी को तलाश में ठोकरे म्नाया करता था। इसी बीच बालूपा ने अपने सैके जाने की ठान ली और न पहुँचाने पर खुद चले जाने की धमकी दी। बालूपा ने कहा—मुझे घर पहुँचा दो अन्धी खीट आऊँगी। बच सुन्हरी नौकरी छग जाय तो, मुझे पुला लेना। "मद पड़े टोन्हे होते हैं"—कह कर बालूपा ने अपना जाना स्पगित कर दिया। रमानाय बठकर कमरे में पत्र लिखने के लिये गया फिर भी वहाँ मन न छगा और किसी ओर बाहर चला गया।

०

रमा के परिचितों में एक रमेरा बानू थे। म्युनिसिपल बोर्ड में क्लर्क थे। बचपना बालीस के छमर थी, बड़े रसिक, यिनोद् प्रिय ब्यक्ति थे। पहली त्रा मर जाने पर, दूसरा विवाह न किया। शतरंज की बाजी पर जमाने में उसे बड़ा आसन्द आता था। यह सिनेमा जाने की तैयारी में थे कि रमानाय था पहुँचा। शतरंज की बाजी जम गई तब शरम्भ हुआ। नौकरा थी भी बात बीच में होने लगी। रमेरा बानू ने रमानाय का म्युनि सिपैलिटी में एक नौकरी पाने का जिह्न किया। रमानाय विपार हो गये। रमानाय मरत पर मरत थाये आ रहा था और रत दो बने वासरी बाजी

सख्तम हुई। रात को रमानाथ घर न छोटा और रमेरा यावू के ही पहाँ सो गया। प्रातः नौ बजे छठा और तैयार हाकर रमेरा यावू के साथ आफिस पहुँचा। बातें करते हुए वे लोग आफिस पहुँच गये।

०

रमानाथ को नौकरी मिल गई। आफिस से जब बाहर निकला तो चार बम गये थे। बादल धिर धाये थे। रमानाथ के बाहर निकलते ही वषा होने लगी। किन्तु पानी में वह टकना नहीं चाहता था। नौकरी का शुभ समाचार घर देने के लिये लाखापित हो छठा। मन में रुपये और वषत की योजनायें बनाना हुआ पर पर पहुँचा। जाखपा नौकरी पाने की खबर ही। वह सुन कर वड़ी झुरा हुयी किन्तु बतन सुन कर उसकी प्रसन्नता में थोड़ी टकाबट सी जल पड़ी। रमा ने तीस की जगह बेतम आलीस बतया था। रमानाथ ने ऊपरी आम्दनी का भी चिक्र किया। जाखपा ने गरीबों से पैसा न लेने और उनका काम यों ही कर देने की सलाह दी। रमानाथ ने कहा—यह पैसा गरीबों से नहीं अमीरों से प्राप्त होगा। जब रमानाथ अपनी माँ को यह शुभ समाचार सुनाने जा रहा था तो जाखपा ने कहा कि बेतन केवल पन्द्रह कहना, ऊपरी आम्दनी की वषा न करना। सपसे पहले चन्द्रहार बनवाओगे। इतने में डाकिया एक पारसल लेकर आया। इसमें दोन वषल द्वारा भेजा हुआ चन्द्रहार था। रमा झुरा हुआ और हँस कर बोला—ईश्वर ने तुम्हारी सुन ली, खोज तो बहुत अख्की माखम होती है। जाखपा के ऊपर इसकी प्रतिक्रिया भिन्न हुयी। मासा पिता का यह अहसान उसके मन को खीकार न हुआ। वह किसी मून्य पर चन्द्रहार रखने को तैयार न थी और रमानाथ का इसे छोटा देने का आग्रह किया। माँ के शौक तथा विदाई के समय ही उसे न पाने का उसके मन में रोप था। रमानाथ खुप रहा। झुला हुआ पारसल फिर सिख गया और रमानाथ उसे लिये हुये चिन्तित माव से नीचे चला।

०

रमानाथ को नौकरी मिलने पर रयानाथ अधिक प्रसन्न हुये। बोले—जगह तो अख्की है। इमानदारी से काम करोग, तो किसी अख्के पपर पहुँच आओगे। रमा ने अपनी बेरामूपा में परिवर्तन किया। नया सूट

चनवाया और दूसरे दिन पहन कर आफिस पहुँचा। चपरासियों ने फुफ्फुर सलाम किये। रमा ने देखा घरामदे में फटी हुई मैली दरी पर एक मिर्या साह्य सन्दूक पर रबिस्टर फैलाये बैठे हैं। शोरगुल, सारा काम अव्यवस्थित रूप से हो रहा था। रमा, रमेरा बाबू के यहाँ पहुँचा और टबुल कुर्सी की व्यवस्था करने के लिये कहा। और चपरासियों से कहा कि एक-एक आदमी भेजें। बूढ़े मिर्या एक धाने प्रति बिल्टी की बसुली की राय दते हुये चले गये। धाँ साह्य के जाने के बाद रमानाय ने सभी काम सँभाल लिया। उसके कार्य की चारो ओर आलोचना व प्रशंसा होने लगा। रमेरा बाबू भी रमा के काम पर मुग्ध हो गये। रमा का प्रभाव और आमदनी बढ़ने लगी। सार वपुत्र में काम की सराहना होने लगी। जासपा के हृदय में दुःख बना रहा। उसकी अभिलाषा पूरी न हुई। त्यौहार के दिन आते और निकल जाते सासपा खरी न सको। इधर तीन महीनों में छठन रमा से एक बार भी आभूषणों की चचा न की। गहन की यातें होती व रमानाय का मन भय और उद्विग्नता से भर बठठा। जासपा उसकी भीतरा कमजारी को समझती थी। जासपा ने कहा—मैं उन स्त्रियों में नहीं हूँ, जो गहनों पर जान देती है। हौं इस तरह किसी के घर आते जाते शर्म आती है। रमानाय ने सराफ से सवार गहने लेने के लिय रास्ता निकाला। जासपा ने कहा—मेरे लिय कज को जरूरत नहीं। मैं बेरवा नहीं कि तुम्हें नोख खसोट कर अपना रास्ता लूँ। बात ही बात में रमानाय ने बंगन बनवाने का निणय किया। और सोचने लगा कि, अक्काऊ कगन इन गोरी-गोरी बच्चाइयों पर चितने लियेगें।



दूसरे दिन रमानाय रमेरा बाबू के घर पहुँचा। रमेरा बाबू ने खनाटमी के संसर्ग का प्रशाहना देते हुये घर का समाचार पूछा। रमानाय ने कहा आप को मेरे साथ सराफे की ओर चलना होगा। रमेरा ने गहनों के बारे में अपनी अनभिज्ञता प्रकट की। आभूषण खरीदने के बारे में रमानाय ने कज की बात की। रमेरा ने कहा—कज की बात सुरी है। अब तक रुपये हाथ में न हों चामार की सरफ जाओ ही मत। कज से बड़ा पाप दूसरा नहीं है। भविष्य के भरोसे पर और आ चाहे काम करा लेकिन कज

कमी मत लो। हम गरीबों क्या हमारे गरीब हिन्दुस्तान की समस्या की कठिनाई भी इन्हीं फैरानों के कारण है। गहने बनवाना बुरी चीज है। बच्चों के पाठन पोषण और शिक्षा पर होने वाले व्यय गहना में खर्च होता है। इस प्रथा से हमारा सर्वनाश हुआ था रहा है।

रमानाय ने निश्चय किया कि कल नहीं लेगा। रात को १ बजे पर झौंटा। दयानाथ ने देर तक बाहर न रहने और कुछ पढ़ने लिखने की प्रार्थना की। उन्होंने रिरवत की भी शिकायत की। रमानाथ ने साफ इन्कार कर दिया। दस्तूरी को यह रिरवत नहीं मानता था। यह कहकर दयानाथ पत्तर चले गये। दस्तूरी की बात जब रमानाथ ने माँ से कही तो माँ ने इसका समयन किया। जब रमा पत्तर की तैयारी करने लगा तो आसपास ने उसे तीन लिफाफे डाक से छोड़ने के लिये दिये। रास्ते में रमानाथ उन्हें खोलकर पढ़ने लगा। वे पत्र सहेलियों के नाम थे। जिसमें आसपास ने अपने हृदय की वेदना प्रगट की थी। और आमूषण के अभाव में होने वाले मानसिक प्रतिक्रियाओं को समझाया था। रमा ने इन पत्रों को छोड़ा नहीं। उसे आसपास पर क्रोध आ रहा था कि आसपास ने सहेलियों से क्यों दुखड़ा रोया। घर झोटन पर जब आसपास ने पत्र न छोड़ने की बात सुनी तो उसने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। आसपास ने कहा —अब मुझे पत्र नहीं भेजना है। कुछ ऐसी बातें लिख गई थी जिसे नहीं लिखना चाहिये था। आसपास ने रमा से जमा माँगी और कहा मुझसे बड़ा भारी अपराध हुआ मेरी कलम से नैदान कैसे ऐसी बातें निकल गई। रमा ने आज गहने बनवाने का निश्चय कर लिया। सराफे की ओर चला। वह इस मामले को गुप्त रखना चाहता था।



सराफे में गंगू की दुकान मराहुर थी। उसकी दुकान पर नित्य ग्राहकों का मेला खगा रहता था। गंगू ने रमा को बहुत ही कमी न आने की शिकायत की। रमा ने द्वार की माँग पेश की। रमा ने तीन सौ नकद गिन कर शेष बचाकर एक कीमती द्वार ले लिया। गंगू न बातें पना कर डाइ सौ रुपये का एक शीश फूल भी रमा के सिर मढ़ दिया। साढ़े छ सौ रुपये का थोड़ा था। किसी प्रकार पर पहुँचा। जिस काँप रहा था कि बाबू जो सुनगे

तो नाराज होंगे। भर पहुँच कर रमा ने कपड़े बदले, खाना खाया। जब आसपास ऊपर पहुँची तो रमा चारपाई पर लेटा हुआ था। रमा ने कहा आज सराफे का यहाँ जाना व्यर्थ हो गया। हार कहीं वीरार न था। किन्तु आसपास मरिप गई। रमा ने उसे हार और शीशफूल सौंप दिये।

आसपास दोनों आसूयकों को देखकर निहाल हो गईं। उसने हार गले में पहना और शीशफूल जूड़े में सजाया और हर्षोन्मत्त हो उठी और बोली— तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ, ईश्वर तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी करे। आसपास को आज पहली बार अपना जीवन सफल आन पड़ा। रमा को आसपास लेकर आसपास मरिप को हार दिखाने चली गई। उसने रात को सन्दूक भी खोली और पुराने नकखी हार की तोड़ खासा और उसके हानों को नीचे गली में फेंक दिया।



उस दिन से आसपास के पवि-स्नेह में सेवा भाव का उदय हुआ। प्रतिभार उसकी सेवा में उत्तर रहने लगे। सराफे में रमानाथ की धाक अम गइ थी। यहाँ तक की इसका एक दिन उसके घर भी था पहुँचा। इसका ने सन्दूकभी से दो बीजे निकाली। नये फैशन का जड़ाब कंगन और दूसरा कानों का रिंग। रमा को मरिप ने कंगन खरीद लिया यद्यपि रमा न चाहता था फिर भी मरिप की साव पूरी करने के लिये उसे कंगन खपार लेना पड़ा। किन्तु मरिप ने उसे वह को मेट करते हुये कहा कि मुझे जो पहिनना था पहिन चुकी। बहुर आकर जब रमा ने दाम पूजा तो मरिपम हुआ कि बह सादे घाठ सों का था रमा इसना बहा बोम लेन को वीरार न था। परन्तु परिस्थिति ने विपश किया। आसपास मुरा थी। रमा चितित था। जब आसपास को यह पता चला कि गहने के रुपये रमानाय का देने हैं ता उसने गहने छतार कर वापस करने को कहा। रमा को बकाजे सहना, सम्बिध होना, मुँह धिपाये रहना, चिन्ता की भाग में असना सब कुछ सहन करना मंजूर था। ऐसा काम करना न मंजूर था जिससे आसपास का दिष्ट टूट जाय। प्रेम और परिस्थितियों के संघर्ष में प्रेम ने विजय पाई।

रमा दपवर की और चला यह इस तरह आ रहा था जैसे कोई अपने प्रिय पन्थु को बाइ करके छोड रहा है।

अप्य आलपा एकान्तवासिनी न थी। उसे घर बैठना अच्छा न लगता। अप्य ईरवर की दया से उसके पास रहने हो गये थे। सोचने लगी गहना को सन्तुष्टि में रखने से क्या फायदा। मुहल्ले या विरादरी में कहीं मे तुझापा आता तो वह सास के साथ अवरय जाती। कुछ दिनों बाद वह अकसो भी आने-जाने लगी। उसके रूप-कावच, वस्त्रामूषण और शोभ विनय ने मुहल्ले की स्त्रियों में उसे शीघ्र ही सम्मान के पद पर पहुँचा दिया। मुहल्ले की स्त्रियों का नित्य कहीं न कहीं समाज होता। वह मरबडकी की रानी होती-उसके आने से मुहल्ले के नारो-झीवन में खान-सी आ गयी। आलपा का स्त्रियों के बीच मसखान, पान पत्ते का खर्च बढ़ गया। रमा आदरा पति था, आलपा को हर मुराद पूरी करता। आलपा उससे इन जमघटों की रोज खचा करती। उसकी स्त्री समाज में कितना आदर-सम्मान है, यह देखकर वह फूला न समाता था। एक दिन आलपा की मंडली ने सिनेमा देखा तो आये दिन सिनेमा की सैर होने लगी। घर क बाहर आने जाने से पदा भी खतम हो गया। जो रमा अपनी माँ को दूसरों के साथ सुझकर पाठ करने पर विगड़ता था वही रमा आर्य आलपा के सम्मुख नठमठक था। आलपा रमा के साथ सिनेमा गई। अक्सर सिनेमा और पार्क में आलपा रमा के साथ-साथ घूमने लगी।

दस ही पाँच दिन में आलपा ने नये महिजा समाज में रग जमा लिया। एक महिला का साथ का निमन्त्रण भी मिल गया और आलपा ने इच्छा न रहने पर भी उसे अस्वीकार न कर सकी। आलपा ने निमन्त्रण का स्वीकार कर क्षिपा पर एक अच्छी साड़ी की आवरयकटा अनुभव हा गई। आलपा के लिये एक पड़ी और जूते की अस्त्र थी। गहनें बाले को अभी एक पैसा भी नहीं दिया गया था। पार्टी में जाना भी आवरयक था और उन लोगों को घर पर पार्टी देना। भी रमा समस्वार्थों के आल में फँस गया। रमा साचने लगा वही तो खाने-पहनने और जीवन में ध्यानन्द पठाने के दिन हैं। समय भीत जाने पर व सब चीजें किस काम की। दूसरे दिन दानों चीजें ले आया। आलपा ने मुँहझा कर कहा—धने तो तुमसे कहा था, इन चीजों का काम नहीं—सब बताया कितने रुपये खर्च हुए ? रमा ने कहा—एक सौ पचास। आलपा न कहा ये सब जिजूझ खर्च कैसे अरु होंगे। रमा ने कहा—इन चीजों को रख लो फिर बिना तुमसे पूछे कुछ न खार्डंगा।

सन्ध्या समय साक्षपा ने नयी साड़ी, नये जूते पहना और बड़ी कलाई पर बाँधी—भाइन में अपनी सूरत देखी मारे गब और वरसास से 'घसका मुखमण्डल प्रकृष्ट हो उठा। भाऊ सुयह कारी के सबसे बड़े बकील परिवर्त इन्द्रमूप्य एडवोकेट के पत्नी के मेहमान थी। रमा और आलपा धावनी की ओर चले। रमा ने वह कमो न सोचा था कि वह इतने बड़े भावनी का मेहमान हो सकता है। रमा ने सोचा था कि बकी मीढ़-माड़ होगी पर वहाँ बकील साहब और उनकी पत्नी रतन के अलावा कोई न था। दोनों को देखते ही रतन परामर्श में निकल आई और उनसे हाथ मिलाकर अन्दर ले गई, और अपनी पति से उनका परिचय कराया। रमा ने योका पद पढ़कर अपने को सँभालते हुये अपना परिचय दिया और महत्व बढ़ाने के लिये अरत-सा मूठ बोक्षना अनुचित न समझा।

साक्षपा को सन्देह ही रहा था कि रतन बकील साहब की बेटाई है या पत्नी। बकील साहब साठ के लगभग मस्खल होते थे। इसके प्रतिकूल रतन साँवली, सुन्दर युवती, बकी मिन्ननसार बिसे गय ने छुआ न था। सौन्दर्य के विशेष लक्षण से वह रानी लगती थी। चाय पार्टी शुरू हुई लोगों ने चाय पीये फल लाये—बकील साहब बहुत आप्रह करने पर दो पूँट चाय पीये। आलपा कुछ भी न आ सकी और चाय भी दो ही पूँट पीकर रह गई। जब रतन आलपा को क्षेत्र बगीचे में आ गई तो उसके आन में आन आ गयी। इधर कमरे में रमा और बकील साहब में व्यक्तिगत बात होने लगी। बकील साहब ने अपने स्वास्थ्य की चर्चा की।

इधर रतन ने आलपा से अपने पतिदेव की चर्चा की। रतन ने कहा—इसकी पहली स्त्री को मरे ३५ वय हो गय। भाऊ ५ वय हुए बेटे का वैहान्त हो गया। बकील साहब ने बड़े बेटे की मृत्यु से दुःखित होकर सन्तान के लिए शादी की, उन्होंने दबा बहुत की किन्तु उनकी महत्याकांक्षा पूरी न हो सकी। डाक्टर का कहना है कि तुम्हें सन्तान नहीं हो सकती बहिन मुझे सन्तान की आशा नहीं है किन्तु मेरे पतिदेव मेरी दशा देखकर बहुत दुखी रहते हैं। रतन ने कहा कि सचमुच बड़े ही उदार और देवता हैं। रतन ने कहा—भाऊ तुम्हारे आने से जी बहुत खुश हुआ तुम बकी या आपपदी के लिए रोख पक्षी आया करो पहन। कही तो मोटर में दिया करेगी। न

जाने तुम्हें धोड़ने का जी नहीं चाहता। रतन ने रमानाथ के माग्य को सराहना की। इतने में रतन की दृष्टि आसपास के कमरे पर गई रतन ने पूछा—कितने में बने क्या उसके लिए बन सकता है? रमा ने कहा—बन सकता है बनवा दूंगा। रुपये के सम्यन्ध में रमा ने कहा कोई बस्त नहीं अब बाहों लप दे दीक्षिण्या। पन्द्रह दिन का वादा तय हुआ बनवाने के लिए। आसपास ने अगले रविवार का निमन्त्रण अपने घर चाय के लिए दिया। रतन ने स्वीकार कर लिया।

रमानाथ अब घर झोटा तो रमेश बालू बैठे उसका इन्तजार कर रहे थे। रमा ने रमेश से अगले रविवार की पार्टी के सम्यन्ध में बताया। रमेश ने कहा—पार्टी का इन्तजाम ईश्वर ने बाधा तो ऐसा होगा कि मंम साइज सुरा हो आयगी। दोनों मित्रों ने पार्टी के लिए आवश्यक सामानों की सूची बनाई और आधुनिकतम सजावट की आवश्यकताओं को पूरा करने की कोशिश की। रमेश की पहुँच अच्छे घरों में थी। सजावट की अच्छी २ पीछें जुट गयीं। सारा घर लगभग ठंडा। दयानाथ ने अंधेजों के सेकड़ों झाड़ू तम देखे थे। ये भी अपनी राय देने में नहीं चुके। उन्होंने न कहा—हम हिन्दुस्तानी हैं और इसमें हिन्दुस्तानी मत का होना आवश्यक है। वह अंधेजों को बड़ा सुरा समझते थे। चाय पार्टी उन्हें बुरी मालूम पड़ती थी किन्तु मये परिचय होंगे उन्हें इस बात का संशोध था।

माटर दरवाजे पर आसगी रतन बाहर निकली। रमा बाहर पहुँचकर वहाँ खिवा लाया और सबसे परिचय कराया। रतन ने सबको समस्कार किया। रमा भीतर चलने के लिये कह रहा था कि रतन कमरे के आठ सी रुपये देने लगी। रमा ने उसकी इमानदारी पर प्रसन्न होकर ६०० रुपये ही लिये। वह फिर कार पर बैठी चली गई। दयानाथ को इस प्रकार रतन का आना, रुपया देना—अच्छा नहीं लगा। दयानाथ के मन में रमा के बारे में भ्रम उत्पन्न हुआ। कमरे में झोंककर रमा आसपास से बोला—अभी तुम्हारी सहेली रतन आयी थी। अच्छा हुआ कमरे के भीतर नहीं आयी। अभी तक तो सेयन्टी भी नहीं थी। तुमने शायद ८०० रुपये बताया थे मैंने ६०० रुपये लिये। ६०० रुपये त्योहार घर देने से आसपास के मन पर आसपास पहुँचा। क्योंकि वह फूटी सिद्ध हुई थी। ✓

बाय पार्टी में कोई खास बात न हुई, रत्न के साथ उसको एक नाते की बहन और थी। बकास साहब न आये थे उस समय दयानाय जी अनुपस्थित थे। आपसी परिचय हुआ। रमेरा बाहर खड़े रहे। पार्टी में शरीक न हुये। बालपा ने दोनों युवतियों को अपनी सास से मिलाया। ये युवतियाँ माँ को कुछ खोड़ी खान पड़ी। उनकी नोवि में बहू-बेटियों को भारी व लग्जा शील होना था। दूमरे दिन रमानाय गंगू के यहाँ गया (६०) पिछले हिसाब में जमाकर दिया और कहा एक अच्छा कंगन तैयार कर दो। गंगू ने कह दिया—'हाँ वन आयगा'। गंगू को खलना रुपया बसूल होने की आशा न थी। कंगन के लिये रमा तगावे करता और गंगू रात्र दासता रहा। एक महीना गुजर गये कंगन न बने रत्न ने कहा कि सब वह नहीं बनाता तो किसी दूसरे कारीगर को क्यों नहीं देते? बालपा ने इसका समर्थन किया। रमा ने कहा—'दस दिन ठकिये सय ठीक हो आयगा, रमा असमन्वस में था उसी दिन शाम को गंगू ने साफ जवाब दिया—'यिना आये रुपये लिए कंगन न बन सकेंगे। पिछला हिसाब भी बेबाक हो जाना चाहिए।

रमा निराश होकर घर लौट आया रमा का बालपा से सारा घुसान्त सही सही कह देने का साहस न हुआ रमा ने यदि चाहा होता था सराफों का बापा कज बुका दिया जाता। किन्तु ऐसे सैर सपाटे में खर्च हा गये थे, रमा को रात भर नींद न आयी वह परभाताप कर रहा था कि नाहक गंगू को रुपये दिये। यह इन्ही चिन्ताओं में करपट बढ़ रहा था। बालपा जग गयी बालपा ने पूछा—'अभी तक जाग रहे हो। रमा ने कहा—'सोचता हूँ कुछ दिनों के लिए बाहर चला जाऊँ बालपा ने भी साथ चलने के लिए कहा—'रमा ने कहा—'अभी कुछ निरचय नहीं कर सका हूँ। तुम्हारे प्रेमपारा हाँ ने मुझ बाँध रखा है नहीं वो ब्य तक कही खला गया होता। बालपा ने उदासी का का कारण प्रेम और विरयास की बातें करके जाननी चाही पर असफज रहा। रमा ने कहा कोई बात नहीं आपानक सराफों के रुपये देने के लिए बालपा के मन में आया रमा ने कहा कि आये रुपये दिये जा चुके हैं। बालपा ने कहा—'तुमने कही रत्न के रुपये तो नहीं दे दिये ?

रमानाय ने सारी बातों को खिपा लिया और किसी भी यान्त्रिकता का राश्टीकरण बालपा के सम्मुख नहीं की। बालपा को योड़ी देर में नींद आ

माने तुम्हें छोड़ने का खी नहीं चाहता। रतन ने रमानाय के भाग्य की सराहना की। इतने में रतन की दृष्टि जासपा के कंगन पर गई रतन ने पूछा—कितने में बने क्या उसके लिए बन सकता है? रमा ने कहा—बन सकता है बनवा दूंगा। रुपये के सम्यन्ध में रमा ने कहा कोई बात नहीं अब चारों तब से ही जिया। पन्द्रह दिन का वादा अब हुआ बनवाने के लिए। जासपा ने अगले रविवार का निमंत्रण अपने घर चाय के लिए दिया। रतन ने स्वीकार कर लिया।

रमानाय जब घर लौटा तो रमेशा वापू बैठे बसका इन्तजार कर रहे थे। रमा ने रमेशा से अगले रविवार की पार्टी के सम्यन्ध में बताया। रमेशा ने कहा—पार्टी का इन्तजाम इरब ने चाहा तो ऐसा होगा कि मेम साहब सुरा हो जायगी। दोनों मित्रों ने पार्टी के लिए आवश्यक सामानों की सूची बनाई और आपुनिकसम सजावट की आवश्यकताओं को पूरा करने की कोशिश की। रमेशा की पहुँच अच्छे घरों में थी। सजावट की अच्छी २ थोड़ी बुट गयी। सारा घर जगमगा उठा। दयानाय ने अमेमों के सेकड़ों ड्राईंग रूम देखे थे। ये भी अपनी राय देने में नहीं चुके। उन्होंने ने कहा—हम हिन्दुस्तानी हैं और इसमें हिन्दुस्तानी मत का होना आवश्यक है। वह अमेमों को बड़ा घुरा समझते थे। चाय पार्टी उन्हें घुरी माखम पकठी को चिन्तु नभे परिचय होंगे उन्हें इस बात का सन्तोष था।

माटर दरबाजे पर आ लगी रतन बाहर निकली। रमा बाहर पहुँचकर उन्हें खिवा लाया और सबसे परिचय कराया। रतन ने सबको नमस्कार किया। रमा भीतर चलने के लिये कह रहा था कि रतन कंगन के आठ सौ रुपये देने लगी। रमा ने बसकी ईमानदारी पर प्रसन्न होकर ६०० रुपये ही लिये। वह फिर फार पर बैठी चली गई। दयानाय को इस प्रकार रतन का जाना, रुपया देना—अच्छा नहीं लगा। दयानाय के मन में रमा के घारे में भ्रम उत्पन्न हुआ। कमरे में लौटकर रमा जासपा से बोला—अभी तुम्हारी सहेली रतन आयी थी। अच्छा हुआ कमरे के भीतर नहीं आयी। अभी तक तो सैयारी भी नहीं थी। तुमने शायद ५०० रुपये यथापे थे मैंने ६०० रुपये लिये। ६०० रुपये स्वीकार कर लेने से जासपा के मन पर आपास पहुँचा। क्योंकि वह मूठी सिद्ध हुई थी। ✓

बाप पार्टी में कोई सास बात न हुई, रतन के साथ उसकी एक नाते की बहन और थी। बकील साहब न आये थे उस समय क्यानाथ की अनुपस्थिति थे। आपसी परिचय हुआ। रमेश बाहर खड़े रहे। पार्टी में शरीक न हुये जालपा ने दोनों युवतियों को अपनी सास से मिलाया। ये युवतियाँ माँ को कुछ आँखी जान पड़ी। उनकी नीति में यह-वेदियों को भारी व लज्जा शोक होना था। दूसरे दिन रमानाथ गंगू के यहाँ गया (६००) पिछले हिसाब में खमाफ्त दिया और कहा एक अच्छा कंगन तैयार कर दो। गंगू ने कह दिया—'हाँ बत आयगा'। गंगू को मल्ला रूपया बसूल होने की आशा न थी। कंगन के लिये रमा तगादे करता और गंगू रोज टाकता रहा। एक महीना गुजर गया कंगन न बने रतन न कहा कि अब वह नहीं बनाता तो किसी दूसरे कारीगर को क्यों नहीं देते? जालपा ने इसका समर्थन किया। रमा ने कहा—दस दिन रुकिये सब ठीक हो आयगा, रमा असमन्वय में था उसी दिन शाम को गंगू ने साफ जयाव दिया—बिना आबे रुपये लिए कंगन न बन सकेंगे। पिछला हिसाब भी बेचा हुआ जाना चाहिए।

रमा निराश होकर घर छोड़ आया रमा का जालपा से सारा पृथान्त सही सही कह देने का साहस न हुआ रमा ने यदि चाहा होता तो सराफों का बापा बख चुका दिया होता। किन्तु जैसे सैर सपाटे में खच हो गया थे, रमा को रात भर नींद न आयी वह परचाताप कर रहा था कि नाहक गंगू को रुपये दिये। वह इन्हीं चिन्ताओं में करवट बसल रहा था। जालपा अब गयो जालपा ने पूछा—अमी तक आग रहे हो। रमा ने कहा—सोचता हूँ कुछ दिनों के लिए बाहर चला जाऊँ जालपा ने भी साथ चलने के लिए कहा—रमा ने कहा—अमी कुछ निरपय नहीं कर सका हूँ। तुम्हारे प्रेमपारा हो ने मुझे बाँध रखा है नहीं तो अब तक कहीं चला गया होता। जालपा ने उदासी का कारण प्रेम और विश्वास की बातें करके जाननी चाही पर असफल रहा। रमा ने कहा फोड़ बात नहीं अघानक सराफों के रुपये देने के लिए जालपा के मन में आया रमा ने कहा कि आबे रुपये दिये जा चुके हैं। जालपा ने कहा—मुमने कही रतन के रुपये तो नहीं दे दिये?

रमानाथ ने सारी बातों को धिया लिया और किसी भी वास्तविकता का स्पष्टोकरण जालपा के सम्मुख नहीं की। जालपा को थोड़ी बेर में मीढ़ आ

गयी, पर रमा उसी एनेइयुन में पड़ा रहा। प्रातःकाल नास्ता करके दफ्तर पहुँचा। कई दिनों से मिशान नहीं मिलाया था पर बाबू के हस्ताक्षर मँजूर थे। अब मिशान मिलाया तो रक्तम बाई हजार निकली। कुछ इधर-उधर करने के बाद सोचा पर साहस न हुआ आख़ उसे आमदनी अच्छी हो गई थी। आज वह इतना व्यस्त था कि बिराग अकलने पर घर गया।



नौ दिन गुजर गये रोज़ दफ्तर से देर से झौटता फ़िन्नु रमा को पहले दिन घेसी आय न हुयी। इन नौ दिनों में उसने सौ रुपये जमा कर लिये। आजपा फही घूमने के छिप कइतो तो अवकारा नहीं है कह कर टाक जाता आज सोच रहा था कि रतन को कैसे टाकेंगा कि रतन यत् दिखाने के छिप था पहुँची रमा ने समझाया अभी कारीगरों का काम है, अभी एक महीने खोंगे। रतन ने कहा कि मुझे रुपये ज़ाटा दीजिये, मैं ऐसी घोंपली में नहीं पड़ता चाहती। रतन ने कहा—मुझे कुछ बंगन छा दीजिये या रुपये नहीं तो उसका नाम बता दीजिये मैं उसका पता लगा लूँगी और जेल भिजवा दूँगी।

रमा व्यग्रता से खमीन की ओर टाकने लगा। वह कितनी मनहूस धड़ी थी, जब वह रतन से रुपये छिप और बिपत्ति मोल ला। रमा ने कहा—कुछ रुपये शाम तक मिल आयेंगे कुछ आप अपने सब रुपये लें जायेंगा। रमा ने दोस्तों से लिखकर रुपये माँगने का आग्रह किया रमा ने जीवन में पहिली बार रुपये माँगे थे। दोस्तों के दो दूक वचर मिले मायिक ने लंगी का पहना किया था और रमरा ने दोस्तों से जेन-जेन न करने का नियम बनाये बैठा था। रमा ने पत्र पाइपर फेंक दिया। एकटक उनकी ओर दृष्ट रहता था। मन की एक दशा यह भी होना है जब आँखें सुझी जाती है तब कुछ नहीं सुझता कान सुझे रहत है पर कुछ नहीं सुमाई देता।



संध्या हो गयी था, मुनिसिपैलटी के कमचारों एक एक करके जा रहे थे। रमानाथ अपनी कुर्सी पर बैठा रजिस्टर लिख रहा था। उसने आज खानपानपर देर की थी। आज की आमदनी के भाठ सौ रुपये उसके पास थे। इसे वह अपने पर ले जाकर रतन को देकर उसे आरपस्त करना चाहता था। खर्जाभी ठीक पार बजे चठा और चला गया। रमा ने पपरासी से

कम

रुपया खाने व जमा करने के लिये कहा। अपरासी तैयार न हुआ। रमा रुपया अपने साथ लेता आया। घर आकर रतन की प्रतीक्षा करता रहा। रतन न आई। वह अप्रसन्न होकर भूमने चला गया। उसके जाते ही रतन आ पहुँची। रतन ने क्रोध आवेश में आकर कगन की बात बलात्की। बालपा ने नाराजगी प्रगट करते हुए तथा रुपये खर्च हो आने का मम दिखाकर रुपये रतन को वापस कर दिये। लौटकर रमा ने जब सारी बातें सुनी तो निस्तेज हो गया। बालपा पर विगड़ने की भी शक्ति उसमें न रही। उर्ध्वास होकर अन्याय या। सब रमा ने साफ कह दिया कि ये रुपये रतन के हैं, और इसका संकेत तक न किया कि मुझसे पूछे बगैर रतन को रुपये मत देना वो बालपा का कोई अपराध नहीं। उसने सोचा—इस मिनट की अनुपस्थिति ने सारा खेल विगाड़ दिया। समस्या है रतन से रुपये कैसे वापस लिए जायें। उस समय सड़े आठ बज रहे थे। रमा ने सायकिल उठायी और रतन से मिलने चला।



रतन के वंगलेपर आज यही बहार थी। विजली की पत्तियाँ मल रही थी, पन्धे मूत्रा मूत्र रहे थे और यकील साहब सिगरेट पी रहे थे। रमा के देखते ही वे सबसे बातें करने को छसुक हुये। संकोच एवं शिष्टता को कारण रमा रतन की ओर न आ सका। रमा छुर्सी पर बैठ गया। यकील साहब ने अनिवार्य शिष्टा का प्रश्न ट्रेड दिया। पारब्रह्म शिष्टा और स्त्री पुरुषों के संबंधों की चिन्तना की। बिघया—विवाह के संबंध में प्रचार करने की सलाह दी। फिन्तु रमा का ध्यान और मन इन बातों की ओर न था यद् रतन से मिलने के लिए व्यग्र हो रहा था। बकील साहब ने कहा कि यदि आपकी भी पट्टों से स्नेह हो तो आप भी वहाँ जाइए। रमा तो इन पट्टों को मुझाते मुझाते थक गयी। रमा स्त्रों देने लगा। इस थक गये। रमा बातें न कर सका। रमा को पट्टों से नाममात्र की प्रेम न था, केवल इस समय यह फँस गया था। पट्टों में सड़े नी बज रहे थे।

रमा हथ कर बिना बात किये वापस लौटा। सोचने लगा कि संकोच में पड़ कर कैसी बाजी खोयी। अपनाक सोचने लगा रुपये अधिक ये कम से कम बेसी रुपये ही वापस मारा साईं। फिर सोचा सुयह जाकर ले आऊँगा, लेकिन इतने रुपये से ही क्या होगा। यह सराफे जा पहुँचा अपनाक रास्ते में चरनदास आता हुआ दिखायी दिया रमा को देखते ही बोला— रुपये कम तब मिलेंगे। काफ़ी तकल्लफ़ हुई। उसकी परवाह किये बिना ही वह पर लौट आया उसने रुपये न देने पर बड़ पावुशी से कहने की धमकी दी। पावु शी और जासपा दोनों ही के सामने बात सुनान पर रमा के आत्म गौरव का प्रश्न था। उसकी आँसुओं से आँसु तो न निकलते थे पर उसका एक एक रोआँ रो रहा था। परजाताप कर रहा था कि जासपा से अपनी जसखी हासलत छिपा कर उसने छिपनी भारी मुँह से अप उसे अपने द्वारा किये गए व्यर्थ के खर्च याद आ रहे थे। आत्मनी सब तक स्वस्थ रहता है उसे यह क्या नशों रहता कि वह क्या खा रहा है। लेकिन जब विकार उत्पन्न होता है तो उसे याद आती है कि कब मैंने पछीकियों खायी थी। विजय बहिर्मुखी होती है, पराजय अन्तर्मुखी।

जासपा ने घेर से लौटने का कारण पूछा तो उसने रतन से अधिक रुपये मांग जाने की बात कही। जासपा ने कहा मुझसे ले लिये जाते। जासपा ने कहा मैं दाँ सौ रुपये देने का कहती हूँ। रमा का चेहरा खिन्न पड़ा। कुछ-कुछ आशा बँधी। दाँ सौ रुपये व दे, दो सौ रतन से ले लेगा, सौ मेरे पास है—कुछ तीन सौ की कमी रह जायगी। बापू रुपये कही से मिलने की आशा न थी। सोच रहा था कि यदि रतन सब रुपये दे दे तो काम बन जाय। जब वह मोहन घर के ज़ंदा वो जासपा ने ब्यासी का कारण पूछा, वह टाल गया। रमा जासपा से इपर धर की बातें करके वास्तविकता को छिपा ले गया। वे दोनों सो गये। रतन का जासपा ने एक बरबदर स्वप्न देखा, यह चिन्ता पड़े। जासपा ने कहा स्वप्न देख रही थी कि मुझे सिपानी पकड़ लिए जा रहा है। रमा ने भी नींद में पकना शुरु किया। जासपा को अभी तक नींद न आयी थी दोनों की नींद खुल गई। दोनों में प्रेम पूरा पाता होने लगी जासपा रतन की कि कसब पति ही उसकी सहोदरियों की पतियों की अपेक्षा सबसे अच्छा है।

कमल

रमा का हृदय गद्गद् हो उठा। रमा सोचने लगा कि उसने कितना यद्दा बिरासपास किया इतना दुरास रखने पर भी अब इसे मुझसे इतना प्रेम है, वो अगर निष्कपट होकर खड़ा वो मेरा जीवन कितना आनन्द में रखा।

आज प्रातः काल रमा ने खत लिखकर रतन के पास अपना आदमी भेजा पत्र का पहेल्य था कि रतन रुपये वापस कर दे। उसकी सारी आशा रतन के रुपये पर थी, अब आदमी लौटा तो रतन ने दो सौ रुपये दे दिये थे, मगर खत का लयाव न दिया था। रमानाय घर था कि नीचे से आवाज आयी—'बाबूजी, सेठ ने रुपये के लिए भेजा है' दयानाय ने उसे डाँट दिया पर अब उन्हें माझम हुआ कि रमानाय पर रमानाय ने उसे गहने सबसे लिये हैं तो ये रमानाय पर विगड़ पड़े। रमानाय पिता से क्षिपाना चारवा था, रमा सारी दुनियाँ के सामने जलील बन सकता था किन्तु पिता के सामने इसके लिए मौत से कम न था। रमानाय ने कहा—'वय गिरह में रुपये न थे वो चीजे लाये ही क्यों? नाकिश कर देगा वो कितनी इज्जत रह जायगी कोई शायद व्याह का का अवसर होता तो एक पाठ भी थी रमा को पिता को यह फटकार बहुत पुरी लगी नि संकोच होकर कहा—'आप से रुपये माँगने जाऊँ तो कहिएगा। अपने मन में उसने कहा यह वो आप की ही करनी का फल है आप ही के पाप का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ, रमा ऊपर चला गया "कैसे क्या होगा? यह प्रश्न उस के सामने पिराव की भाँति पूसता दिखाई देता था। जाझपा ने पूछा कि तुम सो कुछ रुपये दिये जाने की पास कहते थे, रमा व्याधे की कूठ बोलने की बात कर टाल दिया।

जाझपा ने कहा—'आदमी सारी दुनियाँ से पर्दा रखता है लेकिन अपनी स्त्री से पर्दा नहीं रखता तुम मुझसे पर्दा रखते हो। मैं तो मझे पुरे दोनों की ही साथी हूँ। मझे तुम चाहे मेरी बात मत पूछो, लेकिन पुरे तो मैं तुम्हारे गले पहुँगी ही।

रमा इफ्तर खाने लगा जाझपा ने सराफे को देने के लिए दो सौ रुपये दिये। तीन सौ रुपये की फमी थी यह रतन के बंगने तक पहुँचा, य यरामदे में बैठी थी रमा ने उसे देख कर हाय उठाया। उसने भी

छटाया। पर उसका सारा संयम टूट गया, तौंगा सामने से निकल गया वह सीधे दफ्तर छोट आया उसका बेहरा छतरा हुआ था। वह किसी तरफ न न जाकर सीधे रमेश के कमरे में पहुँचा, रमेश घायू ने पूछा—तुम क्यों थे, खदानभी साहब तुम्हें खोज रहे थे। रमा ने एक टक ठाकते हुए कहा—एक बड़ी मुसीबत में फँस गया हूँ उसने थाल घना कर रमेश से कहा कि वह रुपये लेकर घर चला गया और जेब से किसी ने तीन सौ रुपये निकाल लिये, रमेश ने कहा—मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं आता, सब-सब बतलावा कहीं अनाप शनाप तो नहीं खप कर जाले। रमा ने शाम तक रुपये ब्यवस्था करने की बात की। रमेश ने उस दिन का समय देकर छोड़ दिया। रमेश ने कहा—तुम्हें मैं आज छोड़ दे रहा हूँ वरना इस बख्त तुम्हारे हाथों में हथकड़ियाँ हावी कल वस वजे एक रुपये का इन्तजाम हो जाना चाहिए।

“हथकड़ियाँ” यह शब्द तौर की भाँति रमा की छाती में लगा सिर से पाव तक काँप उठा।



रमा शाम को दफ्तर से चला उसे रमेश बालू पर काफी मुँहलाहट आ रही थी। वह पुनः रुपये की आशा में रतन के बगले पर पहुँचा रतन बैठी एक औइरी से गहने देख रही थी। रमा को देखकर वह चुरा हुई। रमा ने रतन द्वारा पर्सव किये गये हार की तारीफ तो की पर कहा कि वाम १२०० सौ ब्यादा है। रतन ने रमा से कहा कि बकील साहब नहीं है मैं हार नहीं चाहती हूँ। मेरे पास केवल ६०० रुपये हैं यदि बाकी रुपये मुझे वं तो मैं सुबह दे दूँगी औइरी मानता नहीं आज ही चला आयगा रमा ने अकेले खाली हाथ होने की बात प्रकट की और संकेत भी कर दिया कि मैं आप से कुछ रुपये प्राप्त करने की आशा से आया था। औइरी को मनामा चाहा पर उसने लाचारी प्रकट की तब तक बकील साहब आ गये। और उन्होंने बाकी रुपये दे दिये बकील साहब को बृद्धावस्था में एक सहारे की अल्पवृत्त थी। रतन उनका सहारा थी वह टूट न जाये इसका वह धरावर स्यादा रखते थे।

रतन का मुख इस समय वसन्त की प्राकृतिक शोभा की भाँति लग रहा

था। पंसा गर्भ, मानों में इस समय संसार की सम्पत्ति मिश्र गई है। हार को गले में लटकाये वह चली गई। रमा कुछ देर तक बैठा पकील सहाय से यूरोप के सम्बन्ध में बातें सुनता रहा अन्त में निराश होकर चल दिया।



इस समय संसार में सबसे दुखी और जीवन से निराश कोई युवक था तो वह था रमा यदि इस समय मासुपा से सारी बातें कह बाकता तो वह अपने गहने बेचकर उसे पचा सफ़्टी थी। शाम को जब वह घर झौटा तो गप राप करते हुए सोचने लगा कि एक बार जैसे सम्मान की रक्षा कर सका है, वैसे ही भाव भी कर सकता है। उसने धीरे से आलपा का हाथ अपनी छाती पर से हटाया उसे भाव सलूके में से ताश्री का गुच्छा निकालना था अब वह मुन्का, सब मासुम हुआ कि यह मुस्कुरा रही है। उसके स्वप्निल संसार की मुस्कुराहट लुटने का साहस रमा को न हुआ। उसने सोचा कि यदि पुनः चोरी का पक्का उसे लगा तो वह किसनी खिन होगी। मैं भी तो इसे कोई भाराम न दे पाया वह चारपाई पर लेट गया आलपा की नींद टूटी तो उसने स्वप्नों की याद कहते पूछा कि तुम कहाँ गये थे। सपने में ही बूढ़से-बूढ़ते अपमानक उनकी नींद खुल गयी थी। देवी की बरदान वाली याद याद आ गयी जिसके लिये वह इतनी परेशान थी। रमा ने पूछा तुम क्या बरदान माँगी। तो आलपा ने कहा—कि मैं तो माँगी कि मेरा स्यामी सदा मुझसे प्रेम करता है उसका मन मुझसे कमी न फिरे।

आलपा इतनी विचार शील है रमा ने धनुमान ही न किया था वह उसे वास्तव में रमणी ही समझता था। विचारों में पढ़ा-पढ़ा वह सो गया सदैरे जन्दी सोफर एठा रमेरा से मिसने की पुन में वह शीघ्र तैयार भी हा गया। आलपा आते हुये रमा के चेहरे पर चिन्ता भव बंधलता और हिंसा को देखकर एक क्षण के लिये बेसुध सो हा गई।

रमा रमेरा के घर पहुँचा तो आठ बज गया था सन्ध्या से आली होकर रमेरा ने पूछा—क्या हुआ, रुपये का कुछ प्रपंच हुआ ? रमेरा बापू ने पिता से कहने को कहा। रमा इस लिये तैयार न हुआ रमा झौट आया और आलपा से पत्र द्वारा समाचार देकर रुपया माँगना चाहा। पत्र लिखकर वह आलपा के पास जाना ही चाहता था कि रमेरा बापू आ पहुँचे। रमेरा बापू

गया। पर उसका सारा संयम टूट गया, चाँगा
चे वस्त्र लौट आया उसका चेहरा छत्रा हुए
आकर सीधे रमेरा के कमरे में पहुँचा, रमेरा य
आनधी साहब तुम्हें खोज रहे थे। रमा ने एक
ही मुसोबत में फँस गया हूँ उसने बात बना कर
पछर घर बजा गया और जेब से किसी ने छीन
मेरा ने कहा—मुझे तुम्हारी बात पर विश्वास नई
रा कहीं धनाप-शानाप तो नहीं खर्च कर डाले।
व्यवस्था करने की बात की। रमेरा ने उस दिन क
रमेरा ने कहा—तुम्हें मैं आज छाड़ दे रहा हूँ ब
में हथकड़ियाँ होती कल उस बजे तक रुपये
बाहिर।

“हथकड़ियाँ” यह शब्द तौर की मति
सिर से पाव तक काँप उठा।

रमा राम को वस्त्र से बचा उसे रमेरा बा
आ रही थी। वह पुन रुपये की आशा में रतन
बैठी एक जोड़ी से गहने देख रही थी। रमा को
रमा ने रतन द्वारा पर्सव किये गये हार की तारी
वाम १२०० सौ ब्यादा है। रतन ने रमा से कहा कि
मैं हार नहीं चाहती हूँ। मेरे पास केवल ६०० रुप
मुझे हैं तो मैं सुवह दे वूगी जोड़ी मानवा नहीं
रमा ने अपनेले खाली हाथ होने की बात प्रकट
विया कि मैं आप से कुछ रुपये प्राप्त करने की आशा
को मनाना चाहा पर उसने ख़ापाटी म्माट की उप
गये। और उन्होंने वाकी रुपये दे दिये बकील साहब
सहारे की बहुरत थी। रतन उनका सहारा थी यह
बराबर ख्याल रखते थे।

रतन का मुख इस समय बसन्त की प्राकृतिक शो

बल दिये। उसकी स्त्री अभी तक जीवित थी। अचानक उस बूढ़े खटीक ने मुझिया के गहने की शौक की चर्चा की खटीक ने पूछा कलकत्ते में क्या काम करते हो मैया ? रमा नाथ ने कहा कि अभी मैं घूमने जा रहा हूँ। मुझे ने उसे अपने ही पहाँ रहने को कहा अपने घारे में सोचने लगा जब तक बीते हैं सप कुछ है मरने पर न जाने कौन सब सेगा ? फिर हँस पड़ा। यह बहुत ही प्रसन्नचित था। किसी जवान को यों रमा ने हँसते न देखा था। अचानक मुझे ने रमा नाथ के घर से भाग जाने की घाँटों की और कारण बताया कि घर में वह से गहने के लिये मलाया हुआ होगा। रमा देवीदीन की बातों पर "हम्मो" भरता जाता था। रमा तीन दिन से सो नहीं पाया था उसे नींद आ रही थी मुझे ने विस्तर लगाकर उसे सुला दिया, रमा झेद रहा। देवीदीन बार बार उसे स्नेह मरी आँसुओं से देखता था। माला उसका पुत्र कहीं परवेश से छीटा हो।

०

जब रमा कोठे से नीचे उतर रहा था। उस समय जासपा को जरा मो शंका न हुयी कि यह घर से भागा जा रहा था। उसे इसपर कांफ आरहा था कि उसने पर्दा क्यों किया ? क्यों मुझसे बढ़-बढ़ कर घाँटों की अचानक गहनों के लिये सरकारी रुपये खर्च होने का ख्याल आते ही उसका हृदय प्रवित हो उठा। यह उसके कमरे में गयी बाहर देखा, कहीं भी रमानाथ के दरान न हुये। उसके हृदय में एक अज्ञात संशय अंकुरित हुआ। गले का हार और हाथ का कंगन स्माल में बाँध कर चुगी कचहरी चल पड़ी। वफर में पहुँची वहाँ बहुत से आदमी थे। किससे पूछे ? एक अपराधी का सहायता से रमेश बापू से मिल सकी। सारी बात सुनकर जासपा रुपये पहुँचाने का वादा करके सर्राफे में आयी। आठ सौ का हार चार सौ में बेचना पड़ा। जिस हार को उसने इतने प्रेम से धनवाया था उसे आज भाये शामपर बेचकर उसे धनिक भी दुख न हुआ। रुपये लेकर वह वफर पहुँची रमेश बापू की ओर नोटों का पुलिन्दा थड़ा दिया। वे गिनकर बोले कि ठीक है। जासपा की सोच देखकर वे झुरा हो गये। प्रसन्न मन जासपा इस आशा में घर पहुँची ही रमानाथ का पता न था। शाम आयी। रात आयी। पर रमानाथ का पता न चला। शाम को जासपा का जी घपड़ाने लगा था। वह फिर

ने रुपये की चेतावनी देकर बाली हाथ मथाने को कहा। रमा बालपा को पत्र देने पर में गया बालपा वहीं जाने के लिये सिंगार कर रही थी। रमा को पत्र देने का सख्त न हुआ बालपा नीचे जाने लगी तो रमा ने फातर होकर छे गले लग लिया। सहसा बालपा बोली कुछ रुपये दे दो। रमा ने कहा इस वक्त तो नहीं है। बालपा ने मूठ धोखने का आरोप लगाते हुये उसकी जेब में हाथ डिया और कुछ पैसे के साथ वही पत्र हाथ लगा। रमा ने धीनमा चाहा सरकारी कागज होने का पहाना किया पर बालपा ने बिना पत्र वापस करने से इनकार कर दिया। फिर रमा ने कागज धीनने की कारिशा न की। सारा भेद खुलने से आर्तबिद्य होकर वह नीचे भागा। वह साब रहा था कि दुनिया मेरे घारे में क्या सावेगो ? बालपा उसे कितना नीच कपटी घूत या गपोकिया समझेगी। गिरफ्तारो, दण्डकियाँ, और बकियाँ तथा सिपाहियों के मय ने उसे दया लिया। आत्महत्या करने को सोचा कि अमानक बालपा के अनात्म होने का विचार उसके मन में आया। अज्ञात बास करने भाव प्रवण हो पठा। इन सब बातों को साबसे पर से फाफ्री दूर निकल आया था। रेश की सीटी सुनकर वह चौंक पड़ा। रेशगाड़ी सामने खड़ी थी। सोचा उसमें बैठते ही सारो याबाबों से मुक्त हो जायगा। जेब खलाकर खँगूठी बेचने की बात कही उस मिनट वीस गये अमादार वापस न आया। गाड़ी छूट रही थी। बिना टिकट लिये ही गाड़ी में जा पहुँचा। गाड़ी चल दो अगले स्टेशन पर पर टिकट का वायू डिब्बे में आया रमा क चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। टिकट मारिने पर उसने कहा कि अल्पी में मैंने अमादार को टिकट खाने को कहा पर यह खीटा नहीं मेरे पास और पसे नहीं हैं। डब्बे में बैठे देहाली मजदूर समाज रमा को इस दुबशा पर मन ही मन मुरा हो रहा था। टिकट वायू ने किसी प्रकार की सहायता करने से इनकार कर दिया और कहा कि अगले स्टेशन पर उतरना पड़ेगा। डब्बे में बैठे एक बुद्धे को दया आ गयी उस बुद्धे ने उस रुपये ब दिये।

उसका नाम देवीधीन था। और जाति का खटक था। वप्रीनाय की यात्रा करके वह कलकत्ता लौट रहा था। रहने वाला विहार का था डेकिन उसकी दूकान कलकत्ते में थी। उसके चार बेट थे जो का ध्याह हो गया था, सब

बल दिये। उसकी स्त्री अभी तक जीवित थी। अचानक उस बूढ़े खटीक ने सुकिया के गहने को शीक की चर्चा की खटीक ने पूछा कलकत्ते में क्या काम करते हो मैया ? रमा नाथ ने कहा कि अभी मैं घूमने आ रहा हूँ। युद्ध ने उसे अपने ही यहाँ रहने को कहा अपने बारे में सोचने लगा अब तक जीते हैं हम कुछ है मरने पर न जाने कौन सय लेगा ? फिर हँस पड़ा। यह बहुत ही प्रसन्न चित था। किसी अज्ञान को यों रमा ने हँसते न देखा था। अचानक युद्ध ने रमा नाथ के घर से भाग आने की बातें की और कारण बताया कि घर में बहु से गहने के लिये मनाया हुआ होगा। रमा देवीदीन की पल्लों पर "हामी" भरवा जाता था। रमा तीन दिन से सो नहीं पाया था उसे नींद आ रही थी युद्ध ने विस्तर लगाकर उसे सुला दिया, रमा सोट रहा। देवीदीन बार बार उसे स्नेह भरी आँखों से देखता था। मालो उसका पुत्र कहीं परदेश से छोटा हो।

०

अब रमा कोठे से नीचे उतर रहा था। उस समय आलपा को जरा भी शंका न हुयी कि वह घर से भागा आ रहा था। उसे इसपर काय आ रहा था कि उसने पदा क्यों किया ? क्यों मुझसे थड़-थड़ कर बातें की अचानक गहनों के लिये सरकारी रुपये खर्च होने का उयाल आते ही उसका हृदय द्रवित हो उठा। वह उसके कमरे में गभी बहुर देखा, कहीं भी रमानाथ के वरान न हुये। उसके हृदय में एक अज्ञात संशय अंकुरित हुआ। गने का द्वार और द्वार का कंगन रुमाल में बाँध कर खु गी कचहरी चढ पड़ी। इपतर में पहुँची वहाँ बहुत से आदमी थे। किससे पूछे ? एक अपराधी की सहायता से रमेरा पाप से मिल सकी। सारी बात सुनकर आलपा रुपये पहुँचाने का वादा करके सराफे में आयी। आठ सौ का द्वार घर सी में बेषना पड़ा। जिस द्वार को उसने इतने प्रेम से बनवाया था उसे आज आधे दामपर बेषकर उसे ठनिक भी दुख न हुआ। रुपये लेकर वह इपतर पहुँची रमेरा पाप की ओर नोटों का पुलिन्दा पड़ा दिया। वे गिनकर वाले कि ठीक है। आलपा की सोच देखकर ये मुग्न हो गये। प्रसन्न मन आलपा इस आशा में पर पहुँचा तो रमानाथ का पठा न था। शाम आयी। रात आयी। पर रमानाथ का पता न चला। शाम को आलपा का भी पपड़ाने उगा था। वह फिर

जाने लगी कि उसका पत्र पढ़ते ही उसने क्यों न हार निकाल कर दे दिया ?
 रे राम के मारे घर न आते हों। जालपा ने उन सभी पाकों को ध्यान
 में, जहाँ रमा के साथ बहुधा घूमने जाया करती थी। नौ बजते-बजते वह
 आ होकर झूट आयी। उसने सोचा उसी की सप करनी का फल है।
 और जालपा ने रात को खाना नहीं खाया। नॉ स्लेट गयी पर जालपा
 भी तरह घेटी रही। सारी रात गुजर गई—पहाड़ सी रात जिसका एक-एक
 न एक एक बर्ष के समान कट रहा था।

एक सप्ताह बीत गया पर रमानाथ का पता न लगा। कोई कुछ करता
 कोई कुछ। केवल इतना ही पता चला कि ग्यारह बजे वह रेसबे स्टेशन की
 ओर गये थे। मुन्शी दयानाथ ने सोचा कि रमा ने भारत हत्या करली।
 वे साथ ही जालपा के सिर मड़ते। जालपा पर किसी को क्या न आती।
 कोई उसके भाँसू न पूछता। केवल रमेरा बाबू उसके सम्बन्धि की प्रशंसा
 करते। लकाओं से दयानाथ परीशान हो छठे। वहासी का कारण पूछनेपर
 पिगड़ छठे। जालपा ने कहा कि आप महाजनों का मेरे पास भेज दोजिये।
 या तो मैं उन्हें मना लूँगी या उन्हें रुपये दे लूँगी। वह कंगन निकालकर
 आपस देने धारही थी कि रतन आ पहुँची। उसने बैसली कंगन खरीदने की
 इच्छा पुनः पेश की। जालपा उसे ही बेचने को राजी हो गयी।
 जालपा ने कंगन की बिक्रिया उसे देने के लिये निकाली था उसका दिन
 मसोस छठा। रतन ने चार सौ रुपये तुरन्त दे दिये। रतन जालपा को टहलने
 के लिये लिया आना चाहती थी पर जालपा ने इकार कर दिया। रतन बसती
 गई। कंगन भी छोड़ कर गयी थी। जालपा ने महाजन को भिजवाने के
 लिये पाँच सौ रुपये दयानाथ को दिये। अब उन्होंने पूछा कि रुपये कहाँ से
 आये सो उसने कहा कि मैंने कंगन रतन के हाथ बेच दिये। यह सुनकर
 वे थकाक हो गये। रतन ने रमा के चरित्रपर सन्देह प्रकट किया—जालपा
 ने इसे स्वीकार नहीं किया। जालपा ने भी वकील साहब के संबंध में बहुत
 से प्रश्न किये।

एक महीना गुजर गया। प्रयाग के मान्य वैदिक पत्र में, रमानाथ को
 झूट माने की नोटिस निकल रही है। पता लगाने वाले को पाँच सौ का

इनाम मी है, पर रमा का अभी तक पता न चला। जालपा विनोदिन पिता और दुःख से घुली जाती। वीनदयालु की बेटी को खिचाने आये। जालपा ने जाने से इन्कार कर दिया। वीनदयालु ने सुनी अपत्याहों के बारे में पूछा तो जालपा ने कहा कि सब मूठ है। दयानाथ और लागेरबरी ने जाने के लिये जालपा को बहुत समझाया पर वह किसी तरह से राखी न हुई। जालपा ने कहा - क्या वहाँ कोई दूसरी दुनिया है? और फिर मैं रोने से क्यों बूझूँ? अब हँसना था, सब हँसती थी, अब रोना है अब रोऊँगी। वीनदयालु समझ गये कि वह अभिमानिनी है और अपना टेक न छोड़ेगी। चलते समय वीनदयालु ने उसे पचास रुपये का नोट देना कहा पर वह न ली। ये चारपाई पर रखकर बाहर चले गये। उसकी आँखों में आँसू थे।

द्वार का महीना लग चुका था। मेघ के जलशून्य दुकड़े कमी-कमी आकाश में वीरते नजर आ जाते थे। जालपा छत पर बैठे उन मेघ खरबों को देख रही थी। जालपा सोचती रमानाथ भी कहीं बैठे यही मेघ क्रीड़ा देखते होंगे। इस कल्पना में उसे विचित्र आनन्द मिळता। जालपा का अब यह शंका होती थी, ईरपर ने मेरे पापों का दण्ड दिया है। रमानाथ दूसरों का गला घसा कर ही तो रुपये लेते थे। शृंगार को बेसकर भय घसका जी चलता था। यही सारे दुःखों का मूल है। इन्हीं के लिये तो उसके पति को बिप्रेरा आना पड़ा।

आखिर एक दिन उसने इन सब चीखों को अमा किया। मन्मथो रत्नोपरे रेसामी भोजे तरह-तरह की चने, फलें, कर्पी आदि। सब को इकट्ठा करके बाँधी। यह सोच रही थी की इसको गंगा ती में डूबा देगी और एक नये जीवन का सूत्रपाठ करेगी। वह सोच रही थी यदि वह झूठ आये तो कमी भी मिथ्या सत्य की उपासना न करेगी। थोड़े में निबाह करूँगा, एक पैसा व्यय न रूप करूँगा, मजबूरी के अविरिक एक कीड़ी भी घर में न आने देंगी। सुबह चार बजे उठकर गंगा स्नान करने चली। पैदा ही चल पड़ी। यह भी भय लगा हुआ था कि कोई पैदा न ले सम्बा घूँपट निकाल लिया था कि कोई पहचान न सके। घर तक पहुँचते-पहुँचते सपेरा हो चला था। सहसा गंगा स्नान करके मोटर से झीरती हुई रवन दिखाई दी। उसन मुँह फेरकर अपने को खिपाना

बाह्य पर रतन ने पहचान लिया मोटर रोक कर साथ चलने को कहा। जब आसपास न मानी तो रतन ने उसका बेग छे लिया और मोटर में आ बैठी। बेग में लकड़ा न खगा था। रतन ने लौटकर देखा, तो विस्मित हो उठी। रतन ने इनके खाने का कारण पूछा। आसपास ने टपटा से कहा—मैं इन चीजों को रंगों में बहा दूँगी। यह रतन का कसूर्य न बताना चाहती थी किन्तु रतन के दबाव के कारण उसने बहा यं चीजें उसके भवनाय का कारण हैं। उन्हें वेला-देलापर मुझे दुःख होता है। जब देखने बस्ता ही न रहा तो इन्हें रोककर क्या करूँगी। जब तक यं चाजे मेरी भाँतों से दूर न हो जायेंगे मेरा पित शान्त न होगा। यह मेरी विपत्ति की गठरी है, प्रेम की स्मृति नहीं। प्रेम का मेरे हृदय पर अंकित है। रतन ने आसपास की कठोरता की निन्दा करते हुये बहुत सम्झाया पर आसपास न मानी। इस बीच की बातों से आसपास को यह साहिर हुआ कि कपट पहने उसकी आर से हुआ। रंगों लट आ पहुँचा। कर रुक गई। आसपास जब बेग को छे खाने खर्गी तो रतन ने रोका, पर आसपास न मानी। आसपास ने बेग उठा लिया और घाट के नीचे पहुँच कर उसे पानी में फेंक दिया। आसपास बितना गप और आनन्द हुआ इतना इन चीजों को पकड़ भी न हुआ था। छोटने पर रतन ने कहा तुम वही निपटुर हो। आसपास ने कहा—वही निपटुरता मनपर विभय पत्नी है। अगर कुछ किस पहल निपटुर हो जाती तो यह दिन क्यों आता।



रमानाय को बलबरो आये दो महीने से ऊपर हो गये हैं। हमारा उसे रुपये की चिन्ता घेरे रहती। भाँति भाँति की बचनार्य करता पर पर के बाहर नहीं निकलता। खेपरा हाने पर मुद्रण के वाचनालय में जस्य जाता। पत्र में उसने नोटिस देखी आ बयानाय ने पत्र में छपवाया था पर उसको विश्वास न हुआ। उसी पत्र में रमानाय का आसपास का एक छपा पत्र मिला। रमानाय का मन अचञ्चल हो उठा। लेकिन तुरन्त ही क्याल आया कि यह पुस्तिस की शरारत होगी। आसपास का ही पत्र है इसका कोई प्रमाण उसके पास न था। छोटने पर उसे अनामी का भय था। यह कम से कम पाँच हजार रुपये लेकर पर सौटना चाहता था। देवीदीन के मफलन में दो फोठरियाँ और एक बरामदा था। बरामदे में ही हुकान थी। रात को हुकान बंदने के

बाद यही बरामदा शयनगृह बन जाता था। रमा ऊपरी हिस्से में रहता था। देवीदीन का काम चिलम पीना और दिनभर गाये लड़ाना था। वह बैठा-बैठा रामान्याय और वोठा मैना के हिस्से सुनाता और लसीफ खोड़ता। दुकान का सारा काम बुढ़िया करती। रमा के पहुँचने पर देवीदीन ने उससे अंग्रेजी पढ़ना शुरू कर दिया। रमा उसे बहुत प्रिय था पर अगो को रामान्याय अच्छा न लगता था पर उसकी धर्मनिष्ठता देखकर उसे कुछ कहती भी न थी। रामान्याय धर्मनिष्ठ ब्राह्मण बनकर उनका अज्ञापात्र बन गया था। बुढ़िया के भाव और व्यवहार को खूब समझता था। परिस्थितियों ने उसके आत्म सम्मान का अपहरण कर लिया था।

एक दिन रामान्याय वाचनालय में पत्र पढ़ रहा था कि उसे रतन दिखाई पड़ी। रमा की छापी धक-धक करने लगी। वह आँसू बचाकर बाहर निकल पड़ा। रतन से मिलने और घर का समाचार पूछने के लिये इसकी आत्मा तड़प रही थी पर मारे संकोच के सामने न आसका। जब मोटर चल ही था उसकी आन में आन आई। उस दिन से एक सप्ताह से वह घर से न निकला। कभी-कभी चिन्तित होकर सोचता कि उसे पुलिस से सारे बातों को सच-सच पता देना चाहिये। जो कुछ होना है, हो जाय। लेकिन एक क्षण में हिम्मत टूट जाती।

इस प्रकार दो महीने बीत गये। पूस का महीना आया। रमा के पास खाड़े का थोड़ा कपड़ा न था। रात भर किस प्रकार बिताता। रात को बाग-बार सिड़की की ओर देखता कि सधेरा होने में जितनी कसर है। कम्यल के अभाव में उसे रात गुजारनी पड़ती। एक दिन शाम को वाचनालय में जा रहा था, देखा कि सेठ जी बँगले के सामने फगलों को कम्यल दान दे रहे हैं। रमा के मन में आया एक कम्यल ले लूँ। यहाँ मुझे कौन जानता है। वह कुछ देर यहाँ खड़ा वाहता रहा फिर भागे बढ़ा। रमा के माथे पर तिलफ देवकर मुनीम ने उसे ब्राह्मण समझा। याज्ञा—पंडित जी कहाँ चले, कम्यल तो लेते जाइये। रमा ने जान छुड़ाना चाहा, इन्दार किया किन्तु मुनीम उसे कोठी में ले गया और एक कम्यल भेंट की। नौ बजे रात घर छोटा। सोच रहा था कि देवीदीन यदि कम्यल के पारे में पूड़ेगा तो यह क्या अपाष देगा। देवीदीन ने कम्यल देखते ही पूछा—सेठ करोड़ो मस

के यहाँ गये थे क्या महाराज ? देवीदीन ने कहा वे घमासमा नहीं हैं बसे पापी बहना चाहिये। उसकी जूट की मिस्र है। मजदूरों के साथ जितनी निर्दयता इसके मिस्र में होती है और कहीं नहीं होती है। कोई नौकर एक मिनट की भी बेरो करे तो तुरन्त तलब काट लेता है। अगर सास में दो बार हवादान न करे तो पाप का घन कैसे बने। रात को रमा कम्बल ओढ़कर झेटा तो उसे बड़ी ग्लानि हुई। रिश्बत के रुपये पर कमी भी उसे ग्लानि न आई थी। दान की पौसप हीनता इस पाल्सीयों का आधार सोपकर चिन्तित हो उठा। रह रह कर पुछिस से सारी रिपोर्ट कह देने की बातें उससे मन में आती। रमा ने निश्चय किया, कि कुछ निराक होकर काम की खोज में निकलूँगा।

जमी रमा मुँह हाथ धो रहा था कि देवीदीन प्राइसर लेकर आ पहुँचा। उसने कहा कि धैमेसो पकी विकट है। जब देवीदीन ने घर पिही भेजने के बारे में पूछा तो रमा ने कहा लप तक वह कहीं लग नहीं लायगा घर पत्र न मिलेगा। देवीदीन ने चिट्ठी भेजने पर जोर दिया। देवीदीन की सहायुमूति पाकर रमा बोला—मैं घर से माग आया हूँ दादा। देवीदीन ने रमा के चेहरे को देखकर माँप किया। वह बोला उठा कि सरकारी रुपये तो नहीं गपन कर दिये हैं। प्रेम यज्ञ बिचित्र होता है। पड़े-पड़े इसमें बूझ जाते हैं। गपन के हजारों मुकदमें होते हैं जिनका मूल कारण होता है ग्लाना। देवीदीन ने सरकारी डाकखाने से रुपया गपन करने और तीन घण्टा तक जेल की सजा काटने का निजी अनुभव बताया। देवीदीन ने घर रात सिखाकर भिजवाने को कहा। रमा ने इन्कार कर दिया। रमा ने देवीदीन के सम्मुख सारी कठिनाई कह सुनाई। देवीदीन चिन्ता में बूझ गया। देवीदीन ने कहा कि भैया, कहो, तो मैं तुम्हारे घर बसाखाई और तुम्हारे घर बसोई को समझाऊँ। रमा की आँसु मनोस्त्रास से चमक पड़ी। सगा सोचने कि आपसपा देवीदीन से किस प्रकार के प्रयत्न करेगी। वह कह देगी कि दादा ने सब रुपये चुका दिये हैं तो मजा आ जायगा। देवीदीन ने राय मानी। रमा ने परेशानी का खयाल करके ममा किया पर देवीदीन सैयार हो गया। उसने रमा से भी बखने को कहा। पढ़े रमा ने अपनाकाली को, कपड़ों को शिफारस की। देवीदीन कपड़े बनवाने को सैयार हो गया। पर रमा किसी भी शर्त पर जाने को सैयार न हुआ। देवीदीन बाजार चला गया। देवीदीन

के बल्ले माने के बाद रमा वकी देर तक ध्यानन्द कल्पनाओं में मग्न बैठा रहा। कल्पना सागर में स्वप्नन्द रूप से क्रीड़ा करने लगा। देवीदीन जब लौटा तो रमा छत पर टहल रहा था। देवीदीन ने पूछा कि क्या खाना नहीं बनाओगे? रमा बोला अल्दी ही क्या है। देवीदीन द्वारा साये गये कीमती कपड़ों देखकर वह विस्मित हो गया। पाँच छ' रुपये गज से कोई कपड़ा कम न था। रमा बोला—इसने महुँगे कपड़े क्यों साये, दादा? देवीदीन ने कहा कि बेसी कपड़ों में कुछ बेसी रुपया लगा जाता है, पर रुपया तो देश ही में रह जाता है। देवीदीन बोला—जिस देश में रहते है, जिसका धन अन्न खाते है, उसके लिये इतना मी न करे तो जीने का अधिकार नहीं। देवीदीन ने कहा कि इसी [स्वदेशी] प्रेम पर उसके बेटे निष्ठावर हो गये। देवीदीन राहीवाँ की शान से बोला—इन बड़े-बड़े भागमियों के लिये कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है। बड़े-बड़े देश मच्छों को बिना विलायती शराब के बेन नहीं आता। दिखाने के लिये जाड़े के कुर्ते और घर का सब सामान विलायती। इन्हें क्या मालूम कि गरीब किसान को एक समय सूखा बचने भी नहीं मिलता। बावुओं की हासव यह है कि वे यड़ी-बड़ी सज़ब लेंगे, ओहदे के लिये लड़ाई करेंगे। यह नहीं समझते कि यह सब गरीबों का शोषण करके लिया जाता है। अब स्वरत्न्य हो जायगा, तब इनका क्या होगा। रमा मद्र समाज पर यह आरोप न सुन सका। आखिर यह भी तो मद्र समाज का ही एक अंग था। रमा ने कहा—येसी बातें नहीं हैं। अब तो सभी काम बहुमत से होगा। अगर बहुमत करेगा कि कर्मचारियों को वेतन कम दिये जाय तो घटा दिये जायेंगे। पूँजी बहुमत के हाथ में रहेगी। अभी दस-पाँच वर्ष न हो, लेकिन आगे चलकर बहुमत किसानों और मजदूरों का ही हो जायगा। देवीदीन की इच्छा कुछ और दिन जीकर अपना राज्य देखने के लिये प्रयत्न हो पडे। देवीदीन ने उससे नीचे चलने को कहा तो वह धक्का पटा। बोला कौन सा मुँह लेकर पर जाई। यह कह कर वह रोने लगा।

०

कुछ दिनों बाद जब रमा आठ बजे पुस्तकालय से लौटा रहा था। तो उसे देखा कुछ नवयुवक किसी शहरस के नफ़े पर विचार कर रहे थे। हल

आसपा को पति के छोट बाने की आशा थी। उसकी आशाओं का सूर्य फिर पदम होगा और उसकी इच्छाओं फिर पूर्येंगी। आसपा ने कहा पत्रों के आवाज देते रहना।

०

कलकत्ते में यकील साहब ने ठहरने का पहरने ही इन्वयाम कर लिया था। शहर के बाहर एक बँगला था हाते में तरह-तरह के फूल पीचे लगे हुए थे। शहर से लोग इयालारी के लिए आया करते थे। पर रतन को वह बगद, फाड़े खाती थी, बीमार के साथ आते भी बीमार हो जाते हैं। वर्राओं के लिए स्वर्ग भी छदाप्त है।

सफर ने यकील साहब को और शिथिल कर दिया था दो तीन दिन बाद कुछ और सँभलने लगे। रतन भी जान से सेवा टहल करती और अपना मुस मुला विभा था। यकील साहब भी अपना वद द्विपते थे। उसके सामने करारते न थे। अर्द्धि होने पर भी भोजन कर सेते रतन समझती अच्छे हो रहे हैं वीध जी भी अपने उपचार की सफरता पर प्रसन्न थे। एक दिन यकील साहब ने रतन को बहर घूम आने का कहा, रतन ने कहा—कहाँ जाऊँगी, वहाँ जाने को जी नहीं चाहता मुझे वहाँ सबसे अच्छा लगता है। यकील साहब को पकापक रमानाय का स्याल आ गया उन्होंने रतन से पता लगाने को कहा रतन तैयार हा गयो क्योंकि उसने आसपा से पता किया था। रतन को यकील साहब का अदेशा बना रहवा उनकी बेप्टा और लचस से कुछ न बिखाई देवा था क्योंकि बेहरा दिनों दिन पीला हो जाता और आँखें पन्द रहती।

रतन के जाने के बाद यकील साहब ने आय माँगी। डाक्टर ने आय मना कर दिया था पर आय बह जीवन से निरारा हो गए थे। जय नीकर आय लेकर पहुँचा तो सुधित नेत्रों से बोले से आधो उन्हें माखम होगा वो सुखी होगी। यकील साहब को अपनी वरा का शान हा चुका था। उन्होंने रतन के आने के पूर किसी यकील को पुनपाना बादा कि मोटर का हार्न सुनाई दिया। रतन धा गयो। यकील साहब के पूरने पर रतन ने कहा कि रमा का पही पता न बसा रतन ने उन्हें छठापर बसा पिछाया इस समय बह न जाने क्यों मयभीत सी हो रही थी। एक आरण्ट, अकाल, शंका पतके इत्य को दबाये हुए थी। किसी से वार देने के लिए कहा, यकील साहब ने

मना कर दिया। फिर अपनी वसीयत लिखवाने के लिए कहा—यह सुनकर रतन शून्य हो गयी। मारनों नाथे से धरती निकल गयी हो और ऊपर से आकाश निकल गया हो और अब वह निराधार निस्पन्द निर्जीव-दृढ़ी है। इस समय रतन अभीर हो रही थी। अपनों की बातें उसे याद आ रही थी। माफी आरांका से चिल्ला-चिल्ला कर रोने के लिए उसका मन विकल हो उठा।

रतन आसपा को पत्र लिखने बैठी—“यहन, नहीं कह सकती, क्या होने वाला है याबूजी अब तक अपनी दूरा छिपाते थे। पर आज यह बात उनके कायू से बाहर हो गई। आज वसीयत लिखाने की बर्षा कर रहे थे। मरवाने को जी चाहता है। विधाता बहुत निर्मम है। इस आ-बेरे, निखन, काँटो से भरे खीबन-भाग में केवल एक टिमटिमला हुआ दीपक मिला था। मैं उसे आंचल में छिपाये गाती बूझी अस्तो वी पर दीपक मुझसे छिना आ रहा है। अब कौन मेरा रोना सुनेगा कौन मेरी दाँह पकड़ेगा। याबूजी का पता लगाने के लिये अबकाश न मिला। माता जी को प्रणाम कहना। पत्र लिखकर वरामदे में छोट आयो। शीतल पयन के मोंके आ रहे थे।” प्रकृति मारनों रोगराय्या पर पड़ी तिसक रही थी।



रात के तीन बज चुके थे। सहसा बकील साह्य के गले की तेज आवाज सुनकर चौंक पड़ी। छकटी सोंसे बल रही थी। सपेरा होने में बार पड़े को वेर भी यह चिन्तित थी। कुछ मिनट के बाद बकील साह्य को सोंस वकी हाय से रतन को इट जाने का इरादा किया और तकिये पर सिर रख कर फिर मौखें बन्द कर ली। उन्होंने दोनों हाय जोड़कर शीघ्र स्वर में कहा—रतन विदग्ध का समय आ गया। मेरे अपराध... । कुछ पाह करके भी कुछ कह न सके। रतन न नोकटों से कथिराज को बुलाने का मादेश दिया।

पत्रह मिनट के बाद बकील साह्य ने अन्तिम शर्शों में कहा—“मैंने तुम्हारे जीवन का सयनारा कर दिया। जना करना।” रतन ने पति के छापी पर हाय रखा छापी गरम थी यह अब भी सोच रही थी कि कथिराज आ जात हो अच्यदा होता। फलकृता भाने के सिये यह परभासाप कर रही थी घोस रही थी कि अपने पति के निमित्त काय नहीं किया। उसने पति के शीतल

चरणों पर सिर मुड़ा खिया और विद्वल-विद्वल कर रोने लगी। टीमल (नौकर) ने उनके मुँह में गंगा जल डाल दिया। टीमल ने कहा बहूजी आइये लाट से उतर दे मासिक चले गये यह कहकर वह भूमि पर बैठ गया और दोनों हाथों पर हाथ रखकर कर रोने लगा। रतन को अभी भी कथिराज का इन्तजार था। रतन के मनमें मौत का स्वाद कभी न आया था। मौत ने आसों के सामने उसे खूट लिया।

एक दिन दाढ़ क्रिया के जिय राव काशी आया गया मणिमूषण ने दाढ़ क्रिया की। आजकल जलपा माय रतन के हाँ साथ रहती। रतन किसी भी बात के बाद आजाने पर पन्तीं रोती। कभी कृतव्य होनता, निष्पूरता, अपनी गूंगार खोलुपता की चर्चा करके यह इतना रोती कि हिचक्रियाँ दँभ जाती।

वकील साहब के मर्ताजे मणिमूषण बड़े ही मिन्नन सार थ। एक महीने में ही सैकड़ों मित्र बना लिये। वकील साहब के जमा किये रुपये का खस देखना शुरू कर दिया मकान के किराये वसूल करने लग। गाँवों की तहसीली शुरू कर दी माना रतन से कई मतलप ही नहीं। टीमल ने जब रतन से काय सम्हालने को कहा तब वह माराध हो गया। मणि ने बसी दिन चोरी का इल काम लगाकरके उसे निकाल दिया। रतन को इन बातों की खबर न थी। एक दिन मणि ने कहा कि आप मेरे साथ चले और बंगला देख दिया जाय। रतन कुछ चौंकी खगा किसी ने झुझोर दिया। रतन कहा—बंसा जापगा। मणि न बखेस साहब के नामपर संस्थ के पाठशाळा खोलने की राय थी। रतन मणि मूषण की काय कुत्रासता से परामूत थी शोक और मनस्ताप ने उसका मन कामस और नम बना दिया था।

इधर मुन्गी इयानाम की तबियत खराब होने के कारण जलपा ने रतन के घर आना काम कर दिया इमानाम का खर था। अधिक बक भक के कारण रामेरबरो को मूत बाधा का भ्रम हुआ। उन्हें बचने की आशा थी। एक दिन जलपा एन्ही के कमरे में बैठी-बैठी तब गई तो समाचार पत्रों की फाइल खलटने-पलटने लगी। अचानक शंकरव का एक नकशा जिसके किये किसी ने फुरकर देने की घोषणा की थी वसूळ समने आ गया। तुरन्त उसे

रमानाथ के विसाध मोहरों और नकरों वाली किताब याद आ गई। वह नकरा उस कापी में मौजूब था। आसपा को वह नकरा किसी पत्र में प्रकाशित करने की सूझ आ गई। कोई दूसरा इसे हल नहीं कर सकता। उन्होंने हल किया है अथवा अल्दी हल कर लेंगे और प्रथम पुरस्कार पाने वाले की हेतियत से पहिचाने जा सकेंगे।

इसी छयेइ-युन में यह आत्र रतन से न मिल सकी। रतन दिन भर उसकी राह देखती रही। शाम घोट गई तो रतन स्वयं आसपा के पहाँ चली आई। आस यह मोटर बहुत धारे धीरे चला रहो थी। आसपा ने रतन को देखते ही कृमा मॉगी। मुन्गी लो को धीमती की बात सुनकर उसने आसपा को न पवाने के लिये डाँडा। रतन मुन्गीकी के कमरे की आर चली। रतन को देखते ही बोले अथ मैं भी चला।। कोई अपना नहीं होता बहुत। संसार के नाते सब स्वार्थ के नाते हैं। रतन की सान्त्वना से और धड़े संतोष हुआ। आसपा के साथ वह कमरे के बाहर आ गई। रतन ने मणिक के बंगले में बने और बसे ले जाने की रास का उत्तर आसपा से मॉगा रतन की बात सुनकर आसपा ठिठक गई। उसने कहा कि क्या तुम मुझे ऐसी ही छोड़कर चली आओगी ? तुम एक हफ्त बाहर थी लो मेरे लिये पस पहाइ बन गया था। तुम अथ फिर आने का माम मठ लेना। रतन की आँखे भर आई। उसने भी अपने न जाने का ही निरचय किया। बंगला येचने का भी विचार त्याग दिया। आसपा ने शर्तरक्ष वाली आस वतलाया कि किस तरह वे आसपा की सहायता से पकड़े जा सकते हैं। रतन ने कहा कि तुमने बहुत अच्छा उपाय सोच निकाला है। मेरा मन चह्या है इसका अच्छा फल होगा। रतन ने रुपये देने का वादा किया। आसपा ने रात में सवास बनाने और मेहनत का भार लिया। 'प्रमाणित्र' में यह सबाख ३०) इनाम के साथ प्रकाशित हुआ। रतन बाहर आरही थी कि रामेश्वरी पंथा लिये अपने को मजती हुई दिवाई पड़ गई। रतन ने आश्चर्य किया लो रामेश्वरी ने हाथ से चक्को पर आटा पोसने की बात चही। रतन भी आँते पर रामेश्वरी का साथ देने के लिये मॉपी पर बैठ गई। आसपा ने देखा कि रतन गेहूँ पीसने में मगन है। आसपा भी आँतपर आँत्र बैठ गई और दोनों आँतपर का गीत गाने लगा—
मोहि बोगिन बनायके चर्दी गये जोगिया।

दोनों के हृदय इस समय जीवन के स्वभाविक आनन्द से पूण थे। न शोक का भार था, न वियोग का दुःख। जैसे वा शिदियाँ प्रभाव की अपूर्व रोमा से चहक रही हों।

०

रमा की चाय की दूकान ठा खुल गई परन्तु दिन भर बन्द रहती थी, केवल रात का ही खुलती थी। रात का कमी अधिकतर देवीदीन की ही दूकान पर बैठता चार पाँच रुपये रोज की आमदनी होने लगी। चाय इतनी स्वादिष्ट होती थी कि जो एक बार यहाँ चाय पी लेता वह दूसरी दूकान पर न जाता। धीरे-धीरे मोज भी आगई, दो दैनिक पत्र भी आने लगे। दूकान चल निकली इन तीन चार घंटों में छः सत्र रुपये की आमदनी में से तीन चार बज जाते। इन तीन-चार महीनों की तपस्या ने रमा की सासला को और भी बढ़ा दिया। रुपये आते ही सैर सपाटे की घुन सवार हो गई। सिनेमा की ओर रुचि बढ़ गई और व्यवहार की अच्छी से अच्छी चीजें लाता। देवीदीन के लिये एक सुन्दर रेशमी चादर लाया। देवीदीन अब ठाट से रहता। बुढ़िया अपने सिर पर चोगन न छाती और यदि कमी लाती भी तो रमानाम्य नाराज हो जाता।

एक दिन वह डूमा बेकने के लिये टिकट सुरक्षित कराने चल पड़ा। रमा अब कहीं बाहर निकलता तो पुलिस की छपना आते ही उसका मन काँप उठता। उसे बिरवास था कि पुलिस का एक एक पीछेदार उसकी हुलिया पहचानता है और उसके चेहरे पर निगाह पड़ते ही पहचान लेगा। यह भी जानता था कि पुलिस वाले सारे लिबास में भी घूमते हैं। इन्हीं बातों को सोचता हुआ रमा कान्स्टेबुल सिनेमा की ओर चला जा रहा था। थोड़ी दूर चला कि तीन कान्स्टेबुल दिखाई दिये। रमा ने सकक छोड़ दी और पटरी पर चलने लगा। दुभाम्य की बात, तीनों कान्स्टेबुल भी सकक छोड़ कर पटरी पर आ गये। रमा का कडेआ घक-घक करने लगा। पुलिस द्वारा अपनी आर देखे जानेपर रमा क पैरों में पर-भराइट हो गई। यह सोचने लगा कि शायद सेय मन में मेरा हुलिया मिछा रहे हैं। इस छपना ने रमा के हृदय मयंकर आंतक अमा क्षिपा। जब सिपाहियों का दल समीप आ गया तो उसका चेहरा मय से बिठ्य हो गया, और आँखें कुछ देरी सराक हो गई कि यह अपने को राह चलते आदमियों की ओर में क्षिपने की चेष्टा

करने लगा। पुलिस वालों, को मजबूत बाँधें क्यों चुकती? एक ने पुकारा जो पगड़ी उठा इधर आना और उसका नाम पूछा। रमानाथ ने सीना-धोरी दिखायी चाही और नाम हीरासाहब तथा पर शाहजहाँपुर पठा दिया। मुद्दमने का नाम पूछे जाने पर उसकी याददास्त काम न आई। पुलिस से शिकायत करने पर उत्तर मिला तुम्हारा तो नाम और पता सब दर्ज है। फान्टेयुज ने रमानाथ को जाने पर बलने को कहा रमानाथ की ओर से यारान्ट की माँग होने पर जाने पर दिखाने से कहा और पकड़ लिया। मदारियों के समामो की तरह भीड़ इकट्ठी हो गई। देवीदीन इस समय अफ़ोम लेकर झौट रहा था। देवीदीन आगे बढ़कर बोला—यह पंडित तो हमारे मेहमान हैं इन्हें कहाँ पकड़े लिये जाते हो। देवीदीन नाम पूछने पर यह सिटपिटा गया। सिपाहियों ने भमकी देकर उसका नाम और पता सब कुछ जान लिया। फिर रमानाथ से ध्यगके स्वर में पूछा कि कौन सा मही है हीरासाहब या रमानाथ? भीड़ में काना-फूली चल पड़ी। इतना अपमानित कमी न हुआ था।



पुलिस स्टेशन के दफ्तर में दरोगा, नायब दरोगा, इनस्पेक्टर, और डिप्टी सुपरिन्टेण्डेंट बैठे किसी मामले पर बात कर रहे थे। रमानाथ मीटिंग के बाद परा किया गया। रमा ने सारी बातें कह दी, दरोगा ने मामला संगीन यतसाते हुए शाराब मुद्दमवत और परायी स्त्री क चक्कर में पड़ने की बात जानना चाही। जय दरोगा ने पत्नी के लिए जेवर बनाने की बात बलात्की तो रमा मेंप गया अपराधी सुगराहट उसके मुँह पर रो पड़ी एकाएक देवीदीन आकर थड़ा हो गया। देवीदीन ने पाँच गिन्नियों निकालकर सामने रख दी। दरोगा, नाराज हो गया, और पचास गिन्ती की माँग की। देवीदीन बाहर निकाल दिया गया और रमानाथ हिरासत में दे दिया गया देवीदीन के डोठ आवेशा से काँप रहे थे। उसक चेहरे पर इतनी चक्रता रमा ने कही नहीं देखी थी, जैसे कोई पिड़िया अपने पोसले में कीप को देखकर विह्वल हो गयी हो। देवीदीन ने दो पंटे को मोहलत चाही। रमा ने मना किया। देवीदीन ने कहा कि जय बात रप्यों पर आवी है ता देवीदीन पीछे न हटगा। दरोगा आ से मोहलत माँग कर वह चला गया। इसी बीच दरोगा से एक मिसिल निकाल कर दरोगा न कहा कि एक काम करो ता देवीदीन का रपया ही बच जाय आर तुम भी मुक्त हो सकते हो किसी मामले में गवाही देनी थी।

रमानाथ मूठी गवाही देने के लिए तैयार न था। दरोगा रमा को लेकर डिप्टी के यहाँ पहुँचा। डिप्टी ने संदिग्ध भाव से उसकी होशियारी स्वीकार कर ली। पुलिस ने इलाहाबाद फोन मिलाया वहाँ से उत्तर मिला कि उसपर कोई मुकदमा नहीं है। म्युनिपिकलटी से नम्बर मिलाया गया तो व्यक्ति का पता लग गया और उत्तर मिला कि वह गलत खोज करने और हिसाब न मिलने पर भाग गया है, गवर्न नहीं किया है। पुलिस बचका लठी कि अब क्या होगा ? अचानक दरोगा को सूझ आयी कि उसे इसका पता ही न दिया जाय। घर वालों को तो मालूम हो ही जायगा पर उनको भी न मिलने दिया जाय। दूसरे देवादीन सौटा तो रमा को न पाकर बचका गया। वह चिन्तित हो उठा कि बुढ़िया को क्या उत्तर देगा ? देवीदीन दरोगा से दो बात करने के लिये रुक रहा दरोगा ने आते ही रूपये छाने के बारे में बर्ग किया तो उसने कहा कि चलो कमरे में। दरोगा ने बर्ग में कहा कि खोद कर ही निकालें होंगे ? देवीदीन ने कहा कि अभी खोदने की जरूरत नहीं पड़ी और आप की कृपा में हजार पाँच सौ अभी भी मिल जायेंगे। दरोगा को ने शायारी प्रगट की तो देवीदीन ने याद से निकल खाने को नीचता बतलायी। दोनों की बात भागे बढ़ती ही जा रही थी और बाबो लग गयी कौन किसको गिराया है। रमा ने देवीदीन को शहादत पर मुक्ति वाली बात बतानी। रमा ने कहा नहीं वादा बिलकुल सच मुकदमा है। देवीदीन ने उपमा से कहा—मुखाविर बन गये तो इसमें तो जो पुलिस सिखायेगी वही तुम्हें कहना पड़ेगा। दरोगा न सफाई देने चाही। रमा भी उसके बिरुद्ध हो खल गया। रमा न कहा कि सच फागल देख लिय है उसका कोई गुनाह नहीं है। देवीदीन ने रमा को रूपये देना चाहा तो रमा ने कहा कोई जरूरत नहीं। दरोगा ने कहा—आज से उन्हें धकी रहना पड़ेगा। देवीदीन ने कफरा स्वर में कहा 'हुनूर इतना जानता हूँ इनकी दावत हागो नौकर मिलेंगे, मोटर मिलेगी, यह सब देख चुका हूँ। यह कहकर देवीदीन तेजी से बाहर निकल पड़ा।

रुदन में उल्लास, शान्ति और बस है। जो कभी एकान्त में बैठकर, किसी की स्मृति, किसी के बिबोग में सिसक और विमल कर नहीं रोया वह जीवन के ऐसे सुख से वंचित है। कुछ दिन के परभाव एक नवीन जीवन एक नवीन उसाह का अनुभव होता है। जलपा क पास 'प्रजा मित्र'

कार्यालय का पत्र पहुँचा, उसे पढ़ कर वह रो पड़ी। आज उनका पता पाते ही उनका मन छल्लसित हो उठा। अधानक रमेशा चापू कमरे में आये और दयानाय से कहा कि रमानाय का पता बल गया, कलकत्ते में है। बालपा ने कहा कि आपसे उनसे पहले यह सूचना उसका प्राप्त है। इसी दोष रतन भी था पहुँची। बालपा ने स्वतः जाने की बात कही, पहले दो रतन को विरवास ही न हुआ। बालपा को शीघ्र जाने की सलाह दी। बालपा ने रतन को भी बलने को कहा। रतन ने मण्डि मूषण की नियत करार होने से जाने में असमर्थता प्रगट की। दयानाय ने गोपी के साथ बालपा को भेजने का निश्चय किया। रात के नौ बजे बालपा जाने की तैयार हो गयी। सास ससुर के घरों में गिर कर आशीर्वाद लिया फिर मोटर में आकर बैठ गयी। रतन स्टेशन तक साथ गयी। रतन ने कलकत्ते की सड़कों का परिचय कराया। रुपये की जरूरत होने पर उसे तार देने की भी चेतावनी दी और बहुत सी सारी बातें रतन ने उसे समझवायी। गाड़ी आ गयी। रतन ने गोपी की चेतावनी दी कि सो मत माना। बालपा ने बिना झेठे हुये आशीर्वाद माँगा। रतन ने सुख-दुख में साथ रहने का वादा किया। बालपा इस पड़ी। गाड़ी चल दी।



देवीदीन ने आज की दुकान बन्द कर दी। दिन भर अवाक्य की खाक छानता। तीन दिन तक देवीदीन ने न कुछ खाया और न सोया। जगो ने पानी रखते हुए बिलम साने के लिये पड़ी तो बसने उसका माथ समझ कर मा कर दिया। बुढ़िया आज सेवा रत थी। वह चाहती थी कि देवीदीन प्रसन्न होकर सारा पतान्व बह दे। बुढ़िया पंढरा भलने लगी। बुढ़िया के पूछने पर देवीदीन ने कहा कि आज मेवा की गवाही खत्म हो गई और अभी बाँवानी में भी ध्यान देना होगा। इसके बाद उन्हें अकस्मी नौकरी न मिल आयेगी। १५ पेगुनाहों को फँसा दिया, अथ पक भी न पचेगा। इसी के ध्यान से मुकद्दमा साबित हो गया। किसने कम किया किसने नहीं किया, इसका हाल दीब जाने, पर मारे सब जायेंगे। घर से भी सरकारी रुपया खाकर भागा था। हमें पाला हुआ। सइसा दो प्राणी आकर खड़े हो गये—एक रमनाय का भाइ गोपी था दूसरा 'प्रशा मित्र' का अपराधी। देवीदीन ने उसे घेठाया। उसका चेहरा रमानाय से मिलता सुलता था।

पर से आने की बात पूछने पर गोपी ने कहा—भाऊ ही आया हूँ, भामी के साथ धर्मराजे में ठहरा हुआ हूँ। अगो ने ऊपरवाला कमरा साफ करवा दिया। देवीदीन बाहर स्वयं किया खाया। पहले तो साग भाजी की दुकान देखकर आसपास किमकी, पर बुढ़िया के स्नेह ने उसे मोहित कर लिया। आसपास ऊपर गई, उसे लगा मानों अपना ही घर हो। आसपास का रमा की गिरपठारी की सूचना दी। देवीदीन ने सरकारी गवाही की सूचना दी। आसपास ने रमा के सम्बन्ध की प्रमाणवाली सारी सूचनायें देवीदीन को बता दी। आसपास अब इस चिन्ता में डूब गई कि रमा को इस दखल में से कैसे निकाले ? उनकी थकी हुई होगी बेगुनाहों का दून होगा, हत्या सिर आयेगी, अपने स्वार्थ के लिए यह भीषण आविषाणें उसको प्रस्तुत कर रही थी। शहाहत हो आने के कारण उनकी छूटने की भी उम्मीद न थी। आसपास खत देना चाहती थी। बंगले पर रमा के पास पत्र पहुँचाने का निर्णय हुआ। अंधेरा होते देवीदीन के साथ आसपास, रमानाथ का बैगला देखने लगी। एक पत्र लिखकर जेब में रखा लिया। रास्ते में जब आसपास ने देवीदीन से रमा के सम्बन्ध में घर का विचार जामना चाहा तो देवीदीन ने नकारात्मक उत्तर दिया। आसपास शक्ति हो गई कि वे पत्र पढ़कर भी न बढ़ें। जब वे दोनों बंगले तक पहुँचे तो यहाँ कोई आदमी न था। फाटक पर लाला पड़ा हुआ था। जब देवीदीन ने पासवाले एक खटिक से पता लगाया तो पता चला कि वे सब चले गये और १५, २० दिन में आयेंगे। खटिक ने कहा—पढ़े लिखे आदमी भी ऐसे दगाबाज होते हैं दादा ! सरासर मूठो गवाही दी। न जान इसके धाँस करने हैं या नहीं। भगवान को भी नहीं डरा। रमा की यह निन्दा सुन कर आसपास का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया। छोटते समय आसपास के पूछने पर देवीदीन ने कहा कि आने की खबर देने को कह आया हूँ।

एक महोना गुजर गया। गोपीनाथ घर लौट गया। आसपास जानती थी कि रमानाथ नहीं है फिर भी दो तीन बार बंगले तक हो आई थी। एक दिन शाम को बसने किड़की के बाहर देखा कि पुलिस के अफसरों के साथ रमानाथ भी आ रहा है। दोनों की आँखें मिलीं। देवीदीन के आवाज लगाने पर भी मोटर न रुकी। देवीदीन ने आसपास से कहा कि कस ही मुझ्दमा

वेश होगा। बालपा ने देवीदीन से अपना पत्र पहुँचाने के लिये कहा। देवीदीन ने यह सन्देह प्रकट किया कि रमानाथ बयान बदलने पर राजी न होगा और बयान बदल भी देगा तो पुलिस उसे दूसरे अपराध में अपराधी बनाकर मुकद्दमा चलायेगी। बालपा ने कहा कि मैं उन्हें पुलिस से नहीं, अपयश से बचाना चाहती हूँ। यदि वह बयान न बदलेगा तो मैं अदालत में सारा कच्चा बिट्टा खोल दूँगी। देवीदीन और बालपा जाने को राजी हो गये।



अब रमानाथ नई मिन्यूगो गुजार रहा था। रहने के लिए सुन्दर बँगला, सेवा के लिए नौकर, सभारी के लिए मोटर मोबल के लिये बावर्ची आदि की सुन्दर व्यवस्था थी। उसके जीवन में यिज्ञासिता आ गई थी। इस भोग बिज्ञास में अगर रमा को कुछ आशा थी तो यह थी बालपा भी यहाँ होती।

एक महीने देहात की सैर करने के बाद रमा पुलिस के सहयोगियों के साथ अपने बँगले पर आ रहा था। रास्ते में देवीदीन की मकान की ओर से गुजर रहा था कि ऊपर के कमरे में बालपा दिखाई पड़ी। रमानाथ के चढ़ने पर भी मोटर न रुकी और वह बँगले पर पहुँचा। रमानाथ बालपा के बारे में चिन्तित था। यह शराब के नशे में था कि अचानक घुँवों की ओट में किसी स्त्री की छाया दिखाई पड़ी। रमानाथ का दिख घड़कने लगा कि कहीं पहचानकारियों ने उसका प्राण लेनी को तो नहीं ठानी है। धमपा बढ़ती रही और वह पीछे हटता गया। वार के पास आकर फाँड़ खास फेर वह छाया अंधकार में यिज्ञीन हो गई। रमा ने उठायो तो यह छिफाका था। रमा के मन से भय और कौतूहल का भाव उत्पन्न हुआ। क्षिफने के जो जेब में छिपाये वह कमरे में आया। दोनों ओर के द्वार बन्द कर लिये और हाथ में लेकर देखने लगा। पत्र बालपा का था। पत्र द्वारा उसे नई रकृति पर आत्मचिरवास मिला। वह बयान बदलने के बारे में सोचने लगा। रमानाथ बाहर आया, बालपा को धूँठा पर यह चली गद थी। आधी रात हा गई तो रमानाथ ने रहा नहीं गया यह देवीदीन के घर पहुँचा। अब सोने पर चढ़ने लगा तो बालपा देखते ही पहिचान गई यह दो कदम पीछे हट गई। देवीदीन यहाँ न होता तो वह दो कदम और आगे

हम तुमको ऐसा 'लिसन' वे वेगा कि धमिर मर न भूलेगा। तोम पुलिस को बोला दना दिस्कागी समझदा है। बामी हो गवाह पेकर साबित कर सकता है कि तुम राबद्रोह का वात कर रहा था।" रमानाय इस प्रकार की आर्तक की वातें सुनकर दय सा गया। उसका खेहरा फीका पड़ने लगा। अपनी दुयसता पर उसे इतनी म्मानि हुई थी वह रो पड़ा। रमानाय काँपती आवाज में बोला—भेज दीमिए जेस। मर हो जाऊंगा न? फिर तो आप लोगां से मेरा गला छूट जायगा। अंत में डिप्टी ने इसपेक्टर को और संकेत करते हुये कहा—साहय, यों हम बाबू सख्त के साथ सय तरह का सख्त परने की तैयार है, जेकिन अब यह हमारे खिलाफ गवाही वेगा, हमारा अब स्तोवेगा, तो हम भी अपनी कारवाइ करेगा। सख्त से करेगा। कमी छाड़ नहीं सकता।

हमी वक्त सरकारी एडयोकेट और वैरिस्टर मोटर से उठरे।

०

रतन पत्रों में तो मासुपा को डाडस बेवी किन्तु अपने विषय में फाई समाचार न लिखती। जब तक बकीस साहब जीवित थे। रतन हर प्रचर से यादरूप से मुक्त थी। संपन्नता के कारण उसने मानसिक अशांति का भी अनुभव नहीं किया, सैर सपाटा हँसी जेस, इसी प्रकार उसका जीवन बीत रहा था।

और अब रतन की तकदीर ने पलटा खाया था। सुख का स्वप्न भंग हो गया था और विपन्नता का कंकास उसे सड़ा पूर रहा था। बकीस साहब की मृत्यु के पश्चात् रतन ने घर गृहस्त्री से विरक्त रहने लगी थी। अक्सर पाकर मणिमूषण ने उसकी सारी सम्पत्ति हड़प ली। एक दिन मणिमूषण ने कहा—भाज यगला खासकी करना होगा। मैंने इसे बेच दिया। आपरो मेरे साथ बसना होगा। रतन ने कड़े शब्दों में इसका प्रतिरोध किया और कहा कि मैंने वा अमी यगला बेचने का निखय नहीं किया था। मैं बामी यही रहना चाहती हूँ। रतन के इन्कार करने पर मणि ने कहा कि अपने सुख की मयावा-रक्षा के लिये मैं आपको अपने साथ ले जाऊंगा। रतन ने सय सम्पत्ति बेचने स इन्कार कर दिया और कहा कि आपको बेचने का कोई अधिकार नहीं है तो मणिमूषण ने वचर दिया कि सम्पत्ति परिवार में विधवा का अपने पुरय की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। पावाजी-

बढ़ी होती। उसकी आँखों में कमी इतना नशा न था। अँगों में कमी इतनी चपलता न थी, कपोल इतने कमी न दमके थे। हृदय में कमी इतना मृदु कंपन न हुआ था। आज उसकी वपस्या सफ़ल हुई।

आलपा और रमा ने मिहान के परचात एक दूसरे से अपने जीवन की कसूर कहानी बताई। आलपा ने अपने को इन सारी विपत्तियों का दोषी ठहराया। आलपा ने रमा को शिक्षा दी कि पुरुषार्थ का धन ही असली धन है। आत्मा को कस्तुरिपत्र करके कुल्ल मी प्राप्त करना ठीक नहीं। आलपा ने रमानाथ को गवर्ही से इन्कार करने को कहा। रमानाथ ने अपनी परिस्थितियों को बसलाया। यह नहीं चाहता था कि वह किसी प्रकार कोई नयी सफ़ाई वे। आलपा ने कहा तुम्हें यह सप करना हो तो मैं वापस आती हूँ। रमा अपनी दुर्गति न करना चाहता था उसने कहा कि मैं स्वयं ही सप कुल्ल ठीक कर दूँगा।

रमा मुँह धौबेरे अपने वगले पर पहुँचा। किसी को कानों-कान खबर न हुई। कपड़ पहन कर दारोगा के पास पहुँचा। उसने दारोगा से कहा कि आप खागों ने मुझे भोखा दिया है और छल्ल पनाया है। मैं अब पुलिस की तरफ से शहादत नहीं देना चाहता। बेगुनाहों का खून अपनी गदन पर न छूँगा। मैंने गयन नहीं किया है। म्युनिसिपैलिटी ने मुझपर कोई मुकदमा नहीं खलाया है। दारोगा न कहा—अच्छा साहब, पुलिस ने भोखा ही दिया, लेकिन उसकी ध्यातर वह इनमम देने को मो तो डाबिर है, कोई अच्छी जगह मिल जायगी, मोटर पर बैठे हुये सैर करोगे। सुफिया पुलिस में जगह मिल गयी तो पैन ही पैन है। रमा ने कहा—मुझे कल्ल पनना मँसूर है, इस तरह की तरककी नहीं चाहता। यह आप ही को मुबारक रहे। ईसपेक्टर के आ जाने पर रमा ने कहा—मैंने फेसला किया है, कि आज अपना वमान बखल दूँगा। बेगुनाहों का खून नहीं कर सकता। ईसपेक्टर ने क्या भाव से उसकी तरफ दखकर कहा—आप बेगुनाहों का खून नहीं कर रहे है, अपनी तकदीर की इमारत खड़ी कर रहे हैं। एक मिनट सन्नाटा रहा। दारोगा-डिप्टी सभी का रुख पिगड़ा रहा। डिप्टी कड़े शत्रों में यासा—“हम तुमको छोड़ंगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे पिगड़ जाय, लेकिन

गमन

हम तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि हमिर भर न मूझेगा। तोम पुलिस को बोला देना दिन्खगी समझता है। अभी दो गवाइ देकर साधित कर सकता है कि तुम रासत्रोह का वात कर रहा था।" रमानाय इस प्रकार की अपार्षक की बातें सुनकर दब सा गया। उसका चेहरा पीका पड़ने लगा। अपनी दुबलता पर उसे इतनी रक्षानि हुई थी वह रो पड़ा। रमानाय कॉपती आवाज में बोला—मेम वीमिए जेस। मर ही आऊंगा न? फिर तो आप लोगों से मेरा गला छूट जायगा। अंत में बिट्टी ने इंस्पेक्टर की ओर संकेत करते हुये कहा—साह्य, यों हम बाबू साह्य के साथ सब तरह का सलूक करने को तैयार है, लेकिन जब यह हमारे खिलाफ गवाही देगा, हमारा जब खोदेगा, तो हम भी अपनी कारवाइ करेगा। जरूर से करेगा। कमी छान्द नहीं सकता।

इसी बच सरकारी पडपोकेट और सैरिस्टर मोटर से छवरे।



रतन पत्रों में तो जालपा को वाडस देती किन्तु अपने विषय में फाइ समाचार न लिखती। अब तक पकील साह्य कीवित थे। रतन हर प्रकार से बाहररूप से सुखी थी। संपन्नता के कारण उसने मानसिक अपराध का भी अनुभव नहीं किया, सैर सपाटा हँसी खेला, इसी प्रकार उसका जीवन बीत रहा था।

और अब रतन की तक़ीर ने पलटा खाय था। सुख का स्वप्न भंग हो गया था और विपन्नता का कंकाल उसे खड़ा पूर रहा था। पकील साह्य की मृत्यु के परचात् रतन ने घर गृहस्थी से विरक्त रहने लगी थी। अबसर पाकर मणिमूपण ने उसकी सारी सम्पत्ति हक़ब ली। एक दिन मणिमूपण ने कहा—आज यगला खाली करना होगा। मैंने इसे बेच दिया। आप भी मेरे साथ चलना होगा। रतन ने कड़े शब्दों में इसका प्रतिरोध किया और पड़ा कि मैंने तो अभी यगला बेचने का नियय नहीं किया था। मैं अभी पड़ी रहना चाहती हूँ। रतन के इन्कार करने पर मणिय ने कहा कि अपने इखर की मर्यादा-रक्षा क छिये मैं आपको अपने साथ ल जाऊँगा। रतन ने सब सम्पत्ति बेचने से इन्कार कर दिया और कहा कि आपको बेचन का कोई अधिकार नहीं है तो मणिमूपण ने पत्तर दिया कि सम्मिलित परिवार में विषया का अपने पुरप की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। पाषाणो

बढ़ी होती। उसकी आँखों में कमी इतना नशा न था। अँगों में कमी इतनी चपलता न थी, कपोल इतने कमी न दमके थे। हृदय में कमी इतना सघु कंपन न हुआ था। भाव उसकी वपस्या सफ़्त हुई।

खासपा और रमा ने मिलन के परचाठ एक दूसरे से अपने जीवन की कथा कहानी बताई। खासपा ने अपने को इन सारी विपत्तियों का दोषी ठहराया। खासपा ने रमा को शिक्षा दी कि पुरुषार्थ का घन हो असली घन है। आत्मा को क्लृपित करके कुछ भी प्राप्त करना ठीक नहीं। खासपा ने रमानाथ को गवाही से इन्कार करने को कहा। रमानाथ ने अपनी परिस्थितियों को बतलाया। यह नहीं चाइता था कि वह किसी प्रकार कोई नयी सफ़ाई दे। खासपा ने कहा तुम्हें यह सब करना हो तो मैं वापस आधी हूँ। रमा अपनी दुर्गति न करना चाहता था उसने कहा कि मैं स्वयं ही सब कुछ ठीक कर लूँगा।

रमा मुँह धँभेरे अपने वगले पर पहुँचा। किसी को कानों-कान बबर न हुई। कपड़े पहन कर दारोगा के पास पहुँचा। उसने दारोगा से कहा कि आप सागों ने मुझे घोसा दिया है और छल्ल बनाया है। मैं भव पुलिस की तरफ से शहाय्य नहीं देना चाहता। बेगुनाहों का खून अपनी गर्दन पर न लूँगा। मैंने गयन नहीं किया है म्युनिसिपैलिटी ने मुझपर कोई मुकदमा नहीं चलाया है। दारोगा ने कहा—अच्छा साहय, पुलिस ने भोसा ही दिया, लेकिन उसकी खातिर वह इनाम देने का भो तो दाखिर है, कोई अच्छी जगह मिल आयगी, मोटर पर बैठे हुए सैर कराग। सुकिया पुलिस में जगह मिल गयी तो खैन ही खैन हैं। रमा ने कहा—मुझे बलक बनना मंजूर है, इस तरह की तरक्की नहीं चाहता। यह आप ही को सुचारक रहे। इंस्पेक्टर के आ जाने पर रमा ने कहा—मैंने फंसता किया है, कि आप अपना बयान बहल लूँगा। बेगुनाहों का खून नहीं कर सकता। इंस्पेक्टर ने क्या भाव से उसकी तरफ देखकर कहा—आप बेगुनाहों का खून नहीं कर रहे है, अपनी तकलीर की इमारत खड़ी कर रहे हैं। एक मिनट सम्नाटा रहा। दारोगा-डिप्टी सभी का खून बिगड़ा रहा। डिप्टी कड़े शब्दों में बोला—“हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय, लेकिन

म तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि छगिर भर न मूझेगा। तिम पुलिस को बोला देना दिखलगी समझला है। अभी दो गबबू बैकर साबित कर सकगा है कि तुम राजद्रोह का पात कर रहा था।" रमानाय इस प्रकार की धातक की धातों सुनकर दब सा गया। उसका चेहरा फीका पड़ने लगा। अपनी दुवसता पर उसे इतनी खानि हुई थी वह रो पड़ा। रमानाय काँपती आवाज में बोला—जेय दीक्षिप जेख। मर ही जाऊँगा न? फिर तो आप लोग से मेरा गला छूट जायगा। अंत में बिट्टी ने ईसपेक्टर की ओर संकेत करते हुये कहा—साहब, यों हम बाबू साहब के साथ सय तरह का सशक करने को तैयार है, लेकिन जब वह हमारे तिवलाफ गवाही देगा, हमारा खड खोदेगा, तो हम भी अपनी कारबाइ करेगा। जखर से करेगा। कभी धाड़ नहीं सकता।

इसी वक्त सरकारी एडवोकेट और वैरिस्टर मोटर से उतरे।

रतन पत्रों में तो आलसपा को डाइस देती किन्तु अपने पिपय में कोई समाचार न लिखती। जब तक वकील साहब जीवित थे। रतन हर प्रकार से वाइररूप से सुखी थी। संपन्नता के कारण उसने मानसिक अशांति का भी अनुभव नहीं किया, सैर सपाटा हँसी खेल, इसी प्रकार उसका जीवन बीत रहा था।

और जब रतन की वकदीर ने पकटा खाया था। सुख का स्वप्न भंग हो गया था और विपन्नता का कंकाल उसे खड़ा पूर रहा था। वकील साहब की मृत्यु के परचास रतन ने पर गृहस्थी से विरक्त रहने लगी थी। अबसर पाकर मणिमूपय ने उसकी सारी सम्पत्ति हड़प ली। एक दिन मणिमूपय ने कहा—आज पगला खाही करना होगा। मैंने इसे येच दिया। आपरा मेरे साथ बखना होगा। रतन ने कड़े शब्दों में इसका प्रतिरोध किया और कहा कि मैंने वा अभी वगला बेचने का निर्णय नहीं किया था। मैं अर्म बुझ की मर्यादा-रक्षा के लिये मैं आपको अपने साथ ले जाऊँगा। रतन न जय सम्पत्ति येचने से इन्कार कर दिया और कहा कि आपको येचने का कोई अधिकार नहीं है तो मणिमूपय ने उतर दिया कि सम्मिश्रित परिवार में विषया का अपने पुरप की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। बाबाजी

बढ़ी होती। उसकी आँखों में कमी इतना नशा न था। बंगों में कमी इतना अपखता न थी, कपोल इतने कमी न दमके थे। हृदय में कमी इतना मधु कपन न हुआ था। आज उसकी तपस्या सफल हुई।

●
 आलपा और रमा ने मिशन के परचात एक दूसरे से अपने जीवन की कठ्यु कहानी बताई। आलपा ने अपने को इन सारी विपतियों का दोषी ठहराया। आलपा ने रमा को शिका दी कि पुरोपार्थ का घन ही असखी घन है। आत्मा को कल्पित करके कुछ भी प्राप्त करना ठीक नहीं। आलपा ने रमानाथ को गवाही से इन्कार करने को कहा। रमानाथ ने अपनी परिस्थितियों को बतलाया। वह नहीं चाहता था कि वह किसी प्रकार कोइ नयी सफाई दे। आलपा ने कहा तुम्हें यह सय करना हो तो मैं यापस आती हूँ। रमा अपनी दुर्गति न करना चाहता था उसने कहा कि मैं स्वयं ही सय कुछ ठोक कर खाँगा।

●
 रमा मुँह खँचेरे अपने यगले पर पहुँचा। किसी को कानों-कान खयर न हुई। कपड़े पहन कर दारोगा के पास पहुँचा। घसने वारोगा से कहा कि आप जागों ने मुझे घोखा दिया है और छल्ल घनाया है। मैं भय पुलिस की तरफ से शहाबत नहीं देना चाहता। घगुनाहों का खून अपनी गदन पर न खँगा। मैंने गवन नहीं किया है न्युनिसपेछिटी ने मुझपर कोई मुकदमा नहीं बढाया है। वारोगा न कहा—अच्छा सख्य, पुलिस ने घोखा ही दिया, लेकिन उसकी खातिर वह इनाम देने को भी तो हाजिर है, कोई अच्छी जगह मिल आयगी, मोटर पर बैठ हुये सैर करोगे। मुफ्तिया पुलिस में खगह मिल गयी तो खैन ही खैन हैं। रमा ने कहा—मुझ बसक घनना मंजूर है, इस तरह की तरक्की नहीं चाहता। यह आप ही को मुवारक रहे। इसपेक्टर के आ जान पर रमा ने कहा—मैंने फेसला किया है, कि आज अपना बयान बदल हूँगा। बेगुनाहों का खून नहीं कर सकता। ईसपक्टर ने क्या भाव से उसकी तरफ देखकर कहा—आप बेगुनाहों का खून नहीं कर रहे हैं, अपनी तकदीर फी इमारत खड़ी कर रहे हैं। एक मिनट सन्नाटा रहा। वारोगा-छिटी सभी का खल बिगड़ा रहा। छिटी कहे शयों में बोला—“हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे विगड़ जाय, लेकिन

हम तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि उमिर मर न मूलेगा। तोम पुलिस को बोला देना दिवलागी समझता है। अभी दो गवाह देकर साबित कर सकता है कि तुम राजद्रोह का बात कर रहा था।" रमानाय इस प्रकार की आर्तक की बातें सुनकर बय सा गया। उसका बेहरा कीका पढ़ने लगा। अपनी दुबसता पर उसे इतनी खानि हुई थी वह रो पड़ा। रमानाय काँपती आवाज में बोला—मेरा वीविय जेल। मर ही जाऊँगा न? फिर तो आप लोगों से मेरा गला छूट सायगा। अंत में छिप्टी ने इसपेक्टर को और संकेत करते हुये कहा—साहब, यों हम बाबू साहब के साथ सब तरह का सलूक करने को तैयार है, लेकिन जब वह हमारे खिलाफ गवाही देगा, हमारा अड़ ओदेगा, तो हम भी अपनी कारवाइ करेगा। मरू से करेगा। कमी छोड़ नहीं सकता।

इसी वक्त सरकारी एडवोकेट और वैरिस्टर मोटर से उतरे।

रतन पत्रों में तो जालपा को टाडस देती किन्तु अपने पिपय में कोई समाचार न खिखती। अब तक यकील साहब वीविय थे। रतन हर प्रश्न से बाधरूप से सुखी थी। संपन्नता के कारण उसने मानसिक अराति भी अनुभव नहीं किया, सैर सपाटा हँसी खेला, इसी प्रकार उसका जीव थीस रहा था।

और अब रतन की वफ़रीर ने पकटा खाया था। सुख का स्वप्न भंग हो गया था और विपन्नता का फंफाल उसे खड़ा पूर रहा था। यकील साहब की मृत्यु के परपात् रतन ने पर गृहस्थी से विरक्त रहने लगी थी। अचसर पाकर मणिमूपण ने उसकी सारी सम्पत्ति हड़प ली। एक दिन मणिमूपण ने कहा—आज यगला खाली करना होगा। मैंने इसे बेच दिया। आपका मेर साथ चलना होगा। रतन ने कड़े शब्दों में इसका प्रतिरोध किया और कहा कि मैंने वा अभी यगला बेचने का निखय नहीं किया और यही रहना चाहती हूँ। रतन के इन्कार करने पर मणि ने कहा कि अपने कुछ धी मयादा-रक्षा के लिये मैं आपको अपने साथ ले जाऊँगा। रतन ने अब सम्पत्ति बेचने से इन्कार कर दिया और कहा कि आपका बेचने का कोई अधिकार नहीं है तो मणिमूपण ने बघर दिया कि सम्मिश्रित परिवार में बिधवा का अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। आचार्य

और मेरे पिता भी मैं कभी अज्ञानी नहीं हुआ। आप बखाना चाहे बल्ले अन्यथा पचास रुपये मासिक आपकी आजीविका के लिये निश्चित कर दूँगा।

रतन को बहुत ठेस लगी। कुछ देर हठ युधि सी बैठी रही। वकीलों के पास गयी, सबने यकीन साहब के वसीयत न लिखने पर परबन्धन करते हुये रतन के प्रति सहानुभूति प्रकट की। दिनभर रतन चिन्ता में डूबी, मौन बैठी रही। सहसा उसका विचारों ने पलटा स्थाया। “बह भी लाखों श्रियों की तरह छोटा-मोटा काम करके, मेहनत, मजदूरी करके काम चला सकती है। कपड़ा सिल सकती है, लड़के पढ़ा सकती है। यही न होगा, शोग होंगे, मगर बह होंसी उसकी नहीं समाज की होगी।” मखिमूपख पुन रतन से नये वगड़े में बखाने के लिये पूछने आया। रतन ने कहा—मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं। मैं कुछ नहीं चाहती। मैं इस घर का एक टिनका भी अपने साथ न ले जाऊँगी। मैं दया की भिक्षारिनी न बनूँगी। संसार में हमारों बिबवार्य हैं जो मेहनत मजदूरी करके अपना निबाह कर रही हैं। मैं भी वैसी ही हूँ। मैं भी उसी तरह मजदूरी करूँगी। पुन रतन से उत्तेजित होकर कहा कि अगर मेरी अपान में इतनी ताकत होती कि सारे देरा में उसकी आबाज पहुँचती, तो मैं सच श्रियों से कहूँ, बहनों। किसी सम्मिश्रित परिवार में विवाह मत करना और अगर करना, तो सवतक अपना घर अलग न बनाया चैन की नींद मत सोना परिवार तुम्हारे लिये फूलों की सेज नहीं, काँटा की शैया है, तुम्हारा पार लगने वाली माँका नहीं, तुम्हें निगल जाने वाला अन्तु है।” सभ्या हो गयी भी। रतन धातुर संमाकती हुई सबकपर चली जा रही थी। रामसे मैं परिचित महिलाओं ने रोका किन्तु न लकी। बह आलपा के घर की ओर जा रही थी। आश उसका वास्तविक जीवन आरम्भ हुआ।



आज रमानाम की गवहरी थी। इस वजे आलपा और देवीदीन कचारी पहुँच गये। गैसरी दरार्त से मरो हुए थी। इशलास पर पुक्षित कमचारी और कठघरे के दोनों तरफ यकीन लड़े मुकदमा पैरा होने का इन्तजार कर रहे थ। मुकदमों की संख्या लगभग पात्रह थी। सभी कठघरे क वगल में खमीन पर पेंठे हुये थ। सभी प्रसन्नचित्त थ। धबराहट, निराशा, या

शोक का किसी के चेहरे पर चिह्न न था। ग्यारह बजे पेशी शूठ हुई। अन्त में तीन बजे रमानाथ गवाहों के कटपरे में लाया गया। दर्राकों में सन-सनी-सी फैल गयी। इजलास के बाहर के लोग भी आकर भाँवर जुट गये। आसपास चाहती थी कि एक बार रमा की आँखें छठ जायें और उसे देख लेती लेकिन रमा सिर मुकाय खड़ा या मानों वह इधर उधर देखते डर रहा हो। वह कुछ सहमा और घबराया हुआ था। आसपास का कल्लेबा बक्-बक् कर रहा था, मानों उसके मान्य का निखय हो रहा हो।

रमा की गवाही प्रारम्भ हुई। आसपास उसकी बातों से वेबैनी का अनुभव कर रही थी—उसके आस-पास बैठा महिलाएँ रमानाथ के कृत्योंपर झींटाछरी कर रही थी—आसपास को यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। साथ ही थी कि आसपास यह भी कि सारी गवाही मूठ है, पुलिस के प्रभाव के कारण रमानाथ इस प्रकार की गवाही दे रहा है। आसपास ने इस संवय में देवीदीन से राय लिया। देवीदीन ने इस संवय की बातों एवं परिणामों को समझाया। आसपास रमानाथ के विचारों में बूझी हुई दुस्ती मन से पर पहुँची।

एक महोला भीत गया। पीरे-पीरे उसके मन की उत्तेजना शान्त होने लगी। शोध दिया, सहानुभूति भाव की बातें वह रमानाथ के विषय में अथ न सोचती। ध्यास रहती और ईरषरीय झीला समझकर दुस्ती थी।

अथ उसका जीवन सेवा, सहिष्णुता एवं त्याग का था। जगो के घर का सारा काम अपने हाथ से करती। दोनों का हृदय मँ-भेटी का था।

मुद्दमें की सारी कारवाई समाप्त होने के बाद एक दिन फेसले का भी समय आ गया। आज यही दिन था। आसपास घर के काम पंथों से फुसल पाकर पैठी थी। अपनाक देवीदीन पत्र लेकर आया। आसपास फेसला पढ़ने लगी। सभी को समा यो पाँच-पाँच और दस-दस साल की। दिनेश को फौसी का फेसला था। आसपास ने पढ़कर अव्यवार रत्न दिया और लम्बी सांस लेकर बोली क्या हागा इनके यासबच्चों का ? दिनेश एवं उसके परिवार के प्रति आसपास के हृदय में ममता छमड़ आई। उसके परिवार पर पढ़ने वाली विपत्ति की फन्पना करके यह शान्त न पैठ सकी। उसके मन में रमा के प्रति अनेक पक्षर के पूणा भाव छठने लग। शाम हो गयी देवीदीन न लौटा। सदसा एक मोटर आकर दरवाजे पर रुका हा गयी। रमा उसमें से उतरा

धीरे धीरे मंगल पूजते हुये जगो के पैर पर सोने की चार बूकियाँ रख दी। जगो ने छटाकर इन बूकियों को जमीनपर पटक दिया और प्रोचिंत हाकर उचैसित स्वर में बोली—“जहाँ इतना पाप समा सकता है, वहाँ चार बूकियों की जगह नहीं है? अपनी कमाई के परिश्रम से बहुत कमाया, किन्तु नोयत कभी खराप नहीं की। इस कोल में भाग लग जिसने तुम जैसे कपूत को बन्म दिया। यदि तुम पुस्तिस की मार खाकर भाये होते तो वह भी तुम्हारी पूजा करती।”

रमा ने कहा कि पुलिस के प्रभाव एवं दयाव के कारण बियरा होकर ऐसा करना पड़ा। वह अपनी विवशाता की दुहाई देने लगी। भवानक रमा की याखी सुनकर जासपा नीचे भाइ और रमा पर तीखे व्यंगों के साथ परस पड़ी—“अगर तुम सखियों और नमकियों से इतना दब सकते हो, तो तुम कायर हो। तुम्हें अपने को मनुष्य कहने का कोई अधिकारी नहीं? देख क भीतर इसीलिये आत्मा रखो गयो है कि देह बसकी रक्षा करे। इसलिये मैंने तुमसे पहले फइ दिया या और भास फिर कही हूँ कि मेरा तुमसे कोई नाता नहीं। मैंने समझ लिया कि तुम मर गयो। तुम भी समझ लो कि मैं मर गयी।

रमा ने जमा वाचना की बात कही—जासपा ने स्वीकार न किया। रमा खेत गया। जगो ने जासपा से कहा तुम्हें इतना भेसगाम नहीं होना चाहिये या। इतने में देवीदीन दिनेरा के घर का पता लगाकर वापस छोट आया। देवीदीन और जासपा के साथ कलकरो की सड़को की भीड़ चिरता हुआ क्रान्तिकारी दिनेरा के घर पहुँचा।

रमा वापस छोट रहा या। उसे किसी के ऊपर श्रेय न था अपनी दुयसताओं और कायरता पर विचार करते हुए मोटर भागे बढ़ता पला जा रहा था। सोचने लगा चक्र करके अज के पास सारी वास्तविकता प्रकट कर हूँ। जासपा की उपहा ने उसके हृदय को उद्दिग्ध और चिन्तित कर दिया। उसने मोटर रोककर पीकीदार से अज साहब का बंगला पूजा और उनके बंगले पर पहुँचा किन्तु वह सोचकर कि अज साहब से किस प्रकार अपने को स्पष्ट रूप में रनेगा इस बात का निष्पत्त नहीं कर पा रहा था। अज

का सामना करने की सामर्थ्य उसमें न थी। फलतः वह दिना धक साहब से मिले वगल्ल के बाहर से ही लौट पड़ा।

आज सुबह रमा नी चमे सोकर उठी। वह स्वप्न देखा रहा था कि दिनेश को फाँसी हो रही है और काइ रानी उस फाँसी की रस्सी को काटने की दौड़ रही है। रमा धक्का कर उठा देखा दरोगा, इन्स्पेक्टर और डिप्टी सभी कमरे में धाराम से बैठे हैं। इन्स्पेक्टर ने रमानाथ से हाईकोर्ट के फैसले सम्बन्ध में और रमा के नीकरी के सम्बन्ध में बात चोत की।

एक महीना बीत गया। हाईकोर्ट ने मुकदमा पेगे करने की शारीख निश्चित हो गयी थी। रमानाथ मयिरा और बेरया जोहरा के प्रेम में विलास प्रिय बन बैठा था। जोहरा को नियुक्ति पुलिस द्वारा रमानाथ को पहचानने के लिए किया गया था। जोहरा के प्रति रमानाथ के मन में अनेक नये-नये भाव उठने लगे। जोहरा के सम्मोहन के प्रभाव में रमानाथ आ गया था। आज्ञा की ओर से हट कर उसका विहासो मन पूरे बेग के साथ आहरा की ओर आकर्षित हुआ। जोहरा रोझ आती और रत्न का अपने प्रमपत्ता में बानने को बाँधे करके चल देती। आज्ञा की आर से हटकर उसका मन अब न उषदा था। इस परवन्त्रता में भी म्यर्वत्रता का अनुभव करने लगा।

धीरे-धीरे पुलिस अधिकारी बग रमानाथ से निश्चिन्त होने लगा और उसके उपर होने वाला नियंत्रण क्रमशः ढोला कर दिया गया। एक दिन डिप्टी साहब ने उसे मोटर पर बिठा कर घुमाने ले गये। बीच में देखीर्शन का घर पहुँचे रमा का मन अथ से भर उठा और सज्जा का अनुभव करने लगा। जब रमा हाथड़ा त्रिज से गुजर रहा था तो देखा एक स्था माधे पर फलस रखे जा रही है, कुर्यांगी, बिंवायो से घोमिअ और दयी हुइ। रमानाथ को अपानक आज्ञा का संदिह हुआ। सचमुच वह आज्ञा ही थी। रमानाथ ने देखा आज्ञा के चेहरे पर न चंचसता, न काधि, न हायण्य और न तो गौरव ही। आज्ञा की यह मल्लोन मूर्ति रमा के धाँखा में नाथ उठी। रमा वापस लौट आया और कुइ खाया खाया-सा दपेन था। जोहरा आइ और अपना अशाभा तथा प्रेम भरी बाँधों से रमा का मन स्थापने का प्रयत्न करने लगी। जोहरा ने अपने कोमल पाँखों को उसके गदन में बाँध कर अपनी आर स्त्रीचा और प्रेम के खरों में पूड़ी, "सच मवायो, बाय

इतने लड़ास क्यों हो ? मुझ से किसी बात पर नाराज हो ?' रमा ने कहा कि जोहरा मैं तुम्हारी क्या को नहीं भूखगा । मैं हमेरा तुम्हारा हठ रूँगा । रमानाय ने जोहरा से आज्ञा की विपत्ति और दुखी अवस्था का निकाल किया । रमा ने जोहरा से कहा "तुम अगर चाहा तो आज्ञा का पूरा पता खगा सकती हैं । वह कहाँ है क्या करती है मेरी धरफ से उसके दिल में क्या क्या है । घर क्यों नहीं जाती और क्या तक रहना चाहती है ? अगर तुम किसी तरह उसे प्रयाग जाने पर राजी कर सको तो मैं छत्र भर तुम्हारी गुलामी करूँगा ।

जोहरा रमा पर अत्यन्त प्रसन्न थी । प्रीति कियों अनुराग की अवहेलना नहीं कर सकती । इस जीवन में जोहरा को यह पहला आश्रम मिला था जिसने उसके सामने अपना हृदय खोल कर रख दिया । जिसने उससे कोई पर्दा नहीं रखा । जोहरा के मन में स्वयं की अनुभूति हुई जोहरा सोच रही थी इस कार्य को करके रमानाय को सरलतापूर्वक अपना बना करके रखा जा सकता है । जोहरा आज्ञा का पता खगान के लिए तैयार हो गयी । इसी धर्म के बीच दारोगा भी आये । दारोगा भी जोहरा का अपने साथ के जाना चाहते थे । रमा ने जोहरा को जाने से रोक किया । दारोगा से इसी बात पर कहा सुनो हो गई । रमा ने दारोगा को पकड़ कर दरवाजे के बाहर निकाल दिया । अब जोहरा प्रसन्न थी । रमा ने कहा 'तुम्हें पाकर मैं सन्तुष्ट हूँ जोहरा तुम मेरी हो मैं तुम्हारा हूँ ।' जोहरा की धीमे धीमे चमक उठी ।

दिन भर आशा और निराशा के बीच रमा का मन भटकता रहा वह सोच रहा था कि जोहरा घोला तो मैं दूँगी ? पुनः उसका ध्यान आज्ञा के जीवन और विचार पर गया और उसका हृदय आज्ञा के प्रति भ्रम से भर गया । रमा को अपनी गलतियों पर परचायाप हा रहा था । सोच रहा था कि अगर वह आज्ञा की बातें मान लिया होता तो क्याचित्त उसके मन की यह दगा न हाठी । रमानाय यह अनुभव करने लगा कि आज्ञा और जोहरा में से किसी एक का भी परित्याग नहीं कर सकता । वह दिन भर इसी उलझन में पड़ा रहा किसी काम में उसका चित्त न लगा । सभी बुद्धि मनुष्यों की मूर्ति रमा की अपने पवन से लविभ्रत था । अब भी एकान्त में रहता

तो उसका मन और विवेक जागृत रहता किन्तु शराब और ओहरा के सामने आते ही उसका विवेक और धर्म ज्ञान भ्रष्ट हो जाता ।

रात बस बज गये, पर ओहरा का कहीं पता न लगा । रह रह करके रमा को ओहरा पर अविश्वास होने लगा । दारोगा से पूछने पर भी ओहरा के बारे में ठीक ठीक पता न लगा । एक हफ्ता तक ओहरा के दौरान न हुए रमानाथ ओहरा के संवन्ध में अनेक अनुमान करने लगा । रमा की अब दारोगा वा इन्स्पेक्टर से बात-चीत करने व सैर करने आदि की इच्छान होती । यहाँ उसका कोई हमदर्द न था, कोई उसका मित्र न था एकांत में मन मारे बैठे रहने में ही उसके भित को शांति होती थी । एक प्रकार का विराग उस पर छाया रहता था । सात दिन बाद दारोगा ने रमा को सिनेमा देखने के लिए तैयार किया । वह कपड़े पहन रहा था कि ओहरा आ पहुँची । रमा ने देखा कि ओहरा की वेशभूषा विजकृत सादी और चेहरे पर बचलता के स्थान पर तेजमय गम्भीरता झलक रही थी । रमानाथ ओहरा से कुछ नाराज और बेरुख प्रतीत हो रहा था । ओहरा ने बताया कि जालपा दिनेश के परिवार की सेवा कर रही है और चन्दा इकट्ठा कर उसके परिवार के पासन पोषण की व्यवस्था कर रही है । रमानाथ जालपा की पूरी कहानी को सुनने को समुत्सुक हो उठा । ओहरा ने बताया कि किस प्रकार वह बेबीदीन के घर पहुँची, किस प्रकार दिनेश के चंगले तक पहुँची और किस प्रकार जालपा से जुड़ कर उसकी बातें हुईं । इस प्रकार रमा और ओहरा के बीच लम्बी बातें हुईं ।

अपानक रमा जालपा से मिलने को तैयार हो गया । बीबीदार के रोकने पर भी रमा तेजी से चल खड़ा हुआ । ओहरा निसन्द खड़ी हसरत मरी आँसुओं से देख रही थी । रमा के प्रति ऐसा विकृत करनेवाला प्यार उसे कभी न हुआ था । जैसे कोई वीर योद्धा अपने प्रियतम को समर भूमि की ओर आते देखकर गय से फूली न समाधी हो ।

रमा बेबीदीन के घर पहुँचा । बेबीदीन, जगो और जालपा बैठकर बातें कर रहे थे । “बस जालपा से दो बातें करना चाहता हूँ । नीचे से ही गये रमा योद्धा, मेरी धरदह से तुम्हें इतना घट्ट हुआ इसका मुझे खेद

हे। मैंने जब साहस करके कपड़ा कूड़ सुनाने का निरूपण कर लिया है। तुम लोगों ने मेरे ऊपर जो दया की है वह मरते वम तक न भूलूँगा। अगर जीता लौटा, तो तुम लोगों की कुछ सेवा कर सकूँ। सब कुछ चमा करना। बस यही कहने आया था।" यह कह कर रमा तेजी से आगे की ओर बढ़ा। जाऊँपा भी कोठी से दूरी तो नीचे रमा का पता न था। जाऊँपा कइ मिनट तक सड़क पर निस्पन्द सी खड़ी रही। विवाहित जीवन के इन दो ढाई सातों में कभी उसका हृदय अनुराग से इतना प्रकम्पित न हुआ था। जाऊँपा को आज वास्तविकता का पता लगा। इतने में जोहरा आ गई और दोनों ऊपर चली गई।

दारोगा परेशान था वह देवीदीन के घर पहुँचा। वहाँ पता न लगने पर पुन आने लौट आया। दारोगा को सन्देश बना हुआ था और पुन यह देवीदीन के घर में रमा की लछमरी लेने के लिए लौट पड़ा। जोहरा वहाँ मौजूद थी। जोहरा को शरारत सूझी तो उसने लम्बा सा रूँपट निकाल लिया और अपने हाथ साड़ी में छिपा लिए। दारोगा जी को शक हुआ, तायद हजरत मेप पहले तो नहीं बैठे हैं। दारोगा ने जोहरा के पास जाकर कहा, अब यह मेप छठारिए और मेरे साथ चलिए। यह कहकर उन्होंने जोहरा का रूँपट हटा दिया। जोहरा ने ठट्ठा मारा और दारोगा जी जोहरा को देखकर विस्मय में पड़ गये। पूछने पर जोहरा ने कहा कि मैं यहाँ बपटी दे रही थी। जोहरा दारोगा के साथ ही चल पड़ी। बोकी ही रेंर में उसके घर के दरवाजे पर छठार दिया।

दारोगा घर जाकर लेट गये। सुबह चाठ बजे जगे तो फोन पर बिप्टी साहय ने कहा, 'कि रमानाय ने बड़ा गोसमास कर दिया है। उसे किसी दूसरी जगह ठहराया जायगा। ऐसा लगता है कि अब से सब हाल फइ दिया है। मुफ्दमा का खॉच फिर से होगा। बड़ा भारी "ब्लयडर" हुआ है। सारा मेहनत पानी में मिल गया।" दारोगा रमानाय का सब सामान लेकर पुलिस के बंगले की तरफ चला। यह मन ही मन जोहरा

जासूपा, देवीदीन सब पर गुस्सा हो रहा था। इस प्रकार एक इफते तक पुलिस विभाग में भयंकर रूप से इसकी चर्चा रही।

मुकद्दमें की फिर से पेशी होगी, इस बात की चर्चा सारे शहर में थी। प्रंगरेजी न्याय के इतिहास में यह घटना सर्वथा अमूल्य थी। पुलिस बेमामा ने यद्वा खोर लगाया लेकिन खत्र हट्ट था। मूठे सबूतों पर पन्द्रह मादमियों की जिन्दगी धरवाह करने की जिम्मेदारी सर पर लेना उसको मरमा को असह्य थी। उसने हाई कोर्ट को सूचना दी और सरकार को भी।

पुलिस रमा की तसारा में ध्यस्त थी। इधर पत्रकारों ने जोहरा और जासूपा से मुलाकात करके उनके वयानों को छाप दिया। जोहरा ने ता किस्सा कि मुझे ५० रुपये रोज इसकिए दिये जाते थे कि रमानाय का यहलाठी रहूँ और बुद्ध सोचने या विचारने का अवसर न मिले। सारा मुक्ति विभाग इन बातों से तिलमिला उठा। जासूपा और जोहरा का बुद्ध पता न था।

दो महीने बाद फैसला हुआ। मुकद्दमें पर विचार करने के लिए एक सिविलियन नियुक्त हुआ। पुलिस ने पड़ी खोटी का खोर लगाया कि मुक्तिमें मैं कोई मुसलपर बन जाय। किन्तु यह उद्योग सफल न हुआ। दारोगा भी मपी शहादतें न बना सकें। अफसरों ने सारा वीप दारोगा के सर हो मड़ा। पेसी दशा में मुकद्दमा उठा लिपा गया। दारोगा तनम्जुस हो गये और नायब-दारोगा को तराई में तवादिस्त कर दिया गया। रात दस बजे मुक्तिमें को रिहाई हुई। अपार दरारों की भीड़ एकत्र हुई 'जासूपादेवा की खय' से बंकारा गूँज उठा। किन्तु रमानाय पर दरोगवयानी का अभियोग चखाने का निरचय हुआ, रमा अभी मुक्त नहीं हुआ।



उसी वेंगले में ठोक दस बजे रमानाय का मुकद्दमा पेशा हुआ। इस अवसर पर दिनेश की पत्नी और मासा, जासूपा और जोहरा सभी मौजूद थे। पुलिस की शहादतें शुरू हुई और सभी के वयान शुरू हुए। रमानाय ने जो अपने वयान में पिछले एक वष की कहानी पताई और जासूपा के त्याग तथा प्रेम की प्रशंसा की अहाँ से उसे सत्य जीवन की प्रेरणा मिली। सकाई की तरफ से देवीदीन और जासूपा का भी वयान हुआ। जोहरा ने

खुलकर ध्यान दिया जो बहुत ही प्रभावोत्पाक था। आस्था का ध्यान और भी मार्मिक था। मिसे मुनकर इराकों की आँखों में आँसू आ गये। उसके अन्तिम शब्द ये "मेरे पति निर्दोष हैं। ईश्वर की दृष्टि में ही नहीं, नीति की दृष्टि में भी ये निर्दोष हैं। मुझे प्रसन्न करने के लिए ही उन्होंने बड़े से बड़े मार किए। अगर अपराधनो हूँ तो मैं हूँ। मिसेके कारण उन्हें इतन कष्ट भेड़ने पड़े। मैं यह नहीं चाह सकती थी कि यह निरपराधियों की छाया पर अपना भवन आड़ी करे। सफाई के और बकरीयों की बहस हुई। सरकारी बकील ने भी खुद जमकर बहस की। बीच बीच में सफाई के बकील ने रमा के द्वारा आफिस में गड़बड़ी, होने पचवाने, पुलिस के पंजे में फँसने और कर्मी मुखबिर बनने तथा शहाबत देने का चिक्र किया।

अन्त में अदालत ने रमा की परिस्थितियों पर विचार करते हुए रमानाय को मुक्त कर दिया।



अब रमानाय और देवीदीन प्रयाग के समीप आकर एक प्रांग में रहने लगे जो हर प्रकार से प्राकृतिक शोभा से पूर्ण और शान्त था। तीन साल बीत गये। देवीदीन कृपि और परेल् काम करके नयी स्फूर्ति का अनुभव कर रहा था। दधानाय भी नौकरी से अवकाश प्राप्त करके यहीं रहने लगे। रमा इस जीवन से प्रसन्न था। छोटी मोटी बीमारियों का क्या भी देना बसने शुरू कर दिया था। रतन बीमार थी और आज उसका जीवन समाप्त हो रहा था। सोहरा उसके ऊपर झुकी छतें करुण, बिबरा, निरला तथा गृष्णामय नेत्रों से देख रही थी। देवीदीन ने थोड़ी-सी राख सेकर कुछ मात्र पड़ कर उसके माथ पर लगाया। कुछ देर के लिए चेतना लगी। किन्तु थोड़ी देर के बाद जीवन ने सृत्यु पर पड़ा डाल दिया। रतन के बाद सोहरा अफली हो गई। मातों का महीना था। गंगा की मर्यकर घाड़ में अनेकों गाँव पड़ते चले जा रहे थे। सोहरा नदी के तट पर घाड़ का तमारा देखने लगी। सहसा एक किरती नजर आई। छग रहा था कि किरती अमा अमी उलट आयगी। एकाएक किरती उलट गई। सभी प्राणी लहरों में समा गये और लहरों की मर्यकर पेट में लय भर में आँखों से अमोक्ष हो गये। केवल एक उलसी-सी बीज किनारे की ओर आ रही थी जो तट से थोड़ी ही

दूर थी। माखूम पड़ा स्त्री है। स्त्री की गोद में एक बच्चा भी नजर आता था। आसपास जाहरा और रमा दोनों किनारे पर खड़े थे और बचाने के लिए बहिन हो छटे। जोहरा सुरन्त आगे बढ़ने के लिए तैयार हो गई। जोहरा के पहुँचते पहुँचते जाहरा अहर के चपेट में दूर हो गई और जोहरा भी वही प्रभाव में सँभलते सँभलते वह गई। रमा भी पानी में डूब पड़ा। जाहरों वेगवती हो लठी। आसपास भी पानी में डूब पड़ी। रमा अब आगे न बढ़ सका। एक शक्ति आगे लीपती थी, एक पीछे। आगे की शक्ति में अनुराग था, निराशा थी यल्लिदान था, पीछे की शक्ति में कथम्य था, स्नेह था धन्यन था। धन्यन ने रोक लिया। वह लौट पड़ा।

छह मिनट तक आसपास और रमा एक दूसरे की ओर देखते हुए घुटने तक पानी में खड़े रहे। दोनों जाहर निकले और शोक में डूबे हुए पर की ओर चले। प्रायः जाहरा की सुखद स्मृतियाँ दोनों याद करत और जाहरा की एक वस्त्रोर लकी हो जाती।

वस्तु-विधान

कल्पनास के लिए कथानक उसका आवश्यक तत्व होता है। जीवन के विविध क्रिया कक्षाओं एवं घटनाओं के समूह से ही कथा निर्मित होती है। कथानक को सुगठित, स्वाभाविक एवं गृह्यला बद्ध होना चाहिए। वस्तु-संगठन की दृष्टि से कथा-कर्म की शिथिलता को दोष माना जाता है। "घटनाओं को कक्षा पृथक् गूँथना कल्पनास की सफलता है। अस्य व्यक्त घटनाएँ ही कथा वस्तु का निमायण गद्दी कर सकती" 12

1 A simple series of events arranged along a single strand of causation may not properly be called a plot. The word plot signifies a weaving together—Clayton Hamilton.

कथानक के लिये निम्न तीन गुणों का होना आवश्यक है—

- (१) रोचकता (२) मौलिकता (३) संभाव्यता ।

कथा रोचक होनी चाहिए । इसकी सजीवता के लिये कौतूहल तथा नवीनता का होना आवश्यक है । यदि ऐसा न होगा तो पाठक की रुचि को आपात लगेगा और आनन्द का अभाव अनुभव करेगा । कथा को संभाव्य होना चाहिये । इधर उधर की घटनाएँ जोड़ने से कथा अमिथ हो जाता है उसे इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि पाठकके सम्मुख ऊन्ही घटनाओं को रखे जो सर्वथा संभाव्य हो । कथानक में मौलिकता होनी चाहिये । पुरानी कथाओं से पाठक का मन चबता है, नीरसता का अनुभव करता है ।

उपन्यासकार अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही कथानक का निर्माण करता है—उपन्यास की एक मूल कथा होती है और उसके साथ ही अल्प परिघ कथाएँ भी होती हैं जो मूल कथा की सहायता करती हैं और कथानक को विकसित एवं सुगठित करती हैं ।

पशु संगठन की दृष्टि से गहन चरित्र को ही उपन्यास माना जाता है । घटनाओं एवं चरित्रों को सुन्दर ढंग से सुगठित किया गया है ।

उपन्यासकार का उद्देश्य नारी समाज को आमूल्य प्रियता और मध्य-वर्गीय परिवार के आर्थिक जीवन परावृत्त को दिखाना है । इन्हीं दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वह पूरे कथानक के लिये घटनाओं, परिस्थितियों और चरित्रों का निर्माण करता है ।

उपन्यास के मुख्य पात्र रमानाथ और आक्षपा हैं । इन्हीं को केन्द्र मानकर पूरा कथा इनके साथ घूमती है । रमानाथ और आक्षपा मध्य वर्ग के नव दम्पति हैं । इन दोनों पति-पत्नी के माध्यम से ही कथा का विकास होता है । आक्षपा आमूल्य प्रेम को व्यक्त करती है और रमानाथ अपने बाल्याङ्कुर एवं दिशावेपथ को । एक घटनाओं का निर्माण करती है और दूसरा चरित्र का । इस प्रकार एक ही परिवार में पति-पत्नी के क्रिया-कलापों से कथा पशु प्रारम्भ होती है जो निरानन्द स्यामाबिक तथा मौलिक है जो उपन्यास के उद्देश्य को सफल बनाती है ।

मूल कथानक में रमानाथ के जीवन का दो पक्ष है—रमानाथ प्रयाग में रहकर परिस्थितियों की योजना करता है और दूसरी ओर पञ्जब

मल

मानकर दूसरे प्रकार का जीवन व्यतीत करता है। मूलकथा और उसके पात्र निरन्तर स्वभाविकता लिये हुये हैं और उनके क्रिया-कलाप तथा कार्य क्षेत्र उनके चरित्र का स्वभाविकता की दिशा में मोड़ने वाले हैं। रमानाय की अन्तर्मुखी दृष्टियों का सुन्दर विवेचन कथा की रोचकता है। प्रारम्भ से अन्त तक यह अन्त संघर्ष में दिखाई पड़ता है। रमानाय के चरित्र की यही सजीवता है।

अनुपंगिक कथाओं में रतन और इन्दु भूषण की कथा प्रमुख है जो कथा को उभार प्रदान करती है, आख्या और रमा की मूलकथा के साथ साथ चलती है किन्तु इनका अधिक विस्तार एवं व्याप्ति कथानक में शिथिलता का देते हैं।

दूसरी कथा उपन्यास के सरास पात्र देवीदीन और जगो की है, जिसका संबंध रमानाय के कलकत्ते के जीवन से है। रमानाय जब प्रयाग छोड़ देता है तो जगो में देवीदीन मिल जाता है। रमा देवीदीन से प्रभावित होता है और उसे एक सहारा मिल जाता है। कलकत्ते में रमानाय देवी दीन के उपर ही अभिमत है, यही रहता है, जीवन यापन का प्रयत्न करता है और जगो का माद-सुख प्राप्त करता है, यही आसपास भी आकर टिकती है और वहीं से उसके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ होता है। देवीदीन से वह पदलता है और अपने को नये जीवन की ओर मोड़ने में सफल होता है।

देवीदीन और जगो के जीवन से उपन्यासकार की इस उदरय की मी पूर्ति हो गयी है कि निम्न वर्ग में ही सच्ची सहानुभूति, सहृदयता, पवित्रता एवं मानवता है। वस्तु-संगठन की दृष्टि से देवीदीन की कथा सधमा प्रसंगानुशूल बैठती है और रमानाय की कथा से प्रत्यक्ष जुटी हुई है। जोहरा की कथा अपना आदरागत स्थान रखती है। जोहरा के चरित्र से रमानाय का चरित्र अधिक प्रभावित नहीं हुआ अपितु वह स्वयं एक आदरा बन जाती है। इस कथा से उपन्यासकार की अपने एक आदरागत स्वरूप की प्राप्ति होती है।

बुद्ध भिक्षाकर गति शीलता स्वभाविकता, एवं घटनाओं तथा पात्रों के संयोजन की दृष्टि से कथानक पूर्ण तथा सुसंगठित एवं गृह्यता बद्ध है। उपन्यास अपनी सम्यक परिचोजना तथा स्रष्टव्यपूर्ति में सर्वथा सफल है। कथा-प्रवाह में कहीं कमी नहीं आती, कथा अपने आप परिस्थितियों का निर्माण करती हुई आगे बढ़ती है। कथा की रोचकता और कौतूहल अंत तक बनी रहती है।

समीक्षकों ने कथा संगठन पर कई दृष्टियों से विचार किया है, रमानायक के कलकत्ते का जीवन विस्तार अनावश्यक मानते हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है यदि कथा का विस्तार कलकत्ता तक न होता तो आसपास और रमा के जीवन में न तो परिवर्तन आता और न तो देराऊर की गतिविधियों पर ही पूरा विचार हो पाता। इस संबंध में श्री नन्दबुलारे वासपेयी का कहना है कि—
 “एक अन्य उद्देश्य जो इस घटना-क्रम से सिद्ध हुआ है, आसपास के परिवर्तन का उद्देश्य है। यदि उपन्यास प्रयाग तक ही सीमित रहता तो कदाचित आसपास का यह परिवर्तन इतने बिरबसनीय रूप से न दिखाया जा सकता। प्रेमचंदजी ने उसके चरित्र-परिवर्तन में कलकत्ते की कहानी का जो उपयोग किया है वह कथा की मुट्टियों को मोड़-धनुत क्रम कर रखा है। आसपास ही वह सूत्र है, जो प्रयाग और कलकत्ते की कहानियों को संभवित करता है।”

फिर भी कथानक की बुद्ध शिथिलताएँ सप्तसाधारण पाठक को लटकती हैं जैसे इन्द्रमूषण की धारों, देवीर्त्तन के लम्बे संस्मरण, रतन का कलकत्ते तक जाना, उपन्यास के अंत में रतन और मोहरा का भी आकर एक सगाह रहना और मोहरा का अज्ञानक अंत हो जाना।

अंत में श्री मन्मथ नाथ गुप्त की निम्न पंक्तियाँ कथानक के संबंध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो उपन्यास के वस्तु संगठन संबंधी पूरे प्रभाव को व्यक्त करती हैं। “प्रेमचंद के उपन्यासों में दो ही उपन्यास पथट रूप से यथावधानी हैं, एक निर्मला और दूसरा गहन। निर्मला के मुठाबिहारे में गहन का कथानक कुछ शिथिल होनेपर भी इस शिथिलता की दृष्टि-पूर्ति उसके विषय की विस्तृति से हो जाती है।”

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण उपन्यास का आवश्यक तत्व है। पात्रों की भावनाओं विचारों एवं क्रिया कलापों के उतार चढ़ाव से ही कथानक में गतिशीलता आती है। पात्रों का चयन एवं कथानक में उनके क्रिया कलापों का चित्रण कौरास का परिणामक है। चरित्र-चित्रण के लिये व्यापक जीवन की अनुभवों की गहराई एवं व्यवहारों की व्यापकता का ज्ञान होना चाहिये। पात्रों के चयन एवं निमाण के संबन्ध में एलिजाबेथ बोवेन का कहना है—

पात्र कोई वना नहीं सकता केवल कठपुतली ही बनायी जा सकती है। यह कहना कि पात्रों का निमाण किया जाता है, मिथ्या है। पात्र तो पहले से रहते हैं। वे ग्रहण किये जाते हैं। उपन्यास-कथा की चेतना में धीरे धीरे वे प्रगट होते हैं—जैसे किसी रेल के डब्बे के घूमित प्रकाश में सामने बैठा हुआ धात्री धीरे-धीरे हमारे सम्मुख स्पष्ट होता है।”

अपनी-अपनी विशेषताओं एवं समस्याओं के कारण चरित्र भी विविध प्रकार के होते हैं। उपन्यास में चरित्र निम्न प्रकार के माने जाते हैं—

- १ व्यक्ति प्रधान (Individual Character)
- २ वर्ग प्रधान चरित्र (Typical Character)
- ३ स्थिर चरित्र (Static Character)
- ४ गतिशील चरित्र (Kinetic Character)

व्यक्ति प्रधान चरित्रों में अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न जान पड़ता है। इस प्रकार के चरित्र का उदाहरण 'रोसर' एक जीपनी' का रोसर है।

वर्ग प्रधान चरित्रों में इस प्रकार की समान विशेषताएँ एवं भावनाएँ रहती हैं जो व्यक्ति विशेष के न हाकर पूरे समाज, समुदाय या वर्ग विशेष का होता है। जैसे 'मेमर्बर्ग' का 'होरो' और 'रमानाय'। किन्तु शुद्ध रूप से व्यक्तिप्रधान चरित्र नहीं होते बरगल प्रभाव व्यक्ति का अपरय प्रभावित करता है। ऐसा चरित्र विरिष्ट माना जाता है क्योंकि "व्यक्त ज्ञाने के

बुद्ध मित्राकर गति शोभता स्वामाचिकता, एवं घटनाओं तथा पात्रों के समीक्षण की दृष्टि से कथानक पूर्ण तथा सुसंगठित एवं श्रेष्ठ बन्ना है। उपन्यास अपनी सम्यक् परिचोदना तथा श्रद्धापूर्ति में सधया सफल है। कथा-प्रवाह में कहीं कमी नहीं आती, कथा अपने आप परिस्थितियों का निर्माण करती हुई आगे बढ़ती है। कथा की रोचकता और कौतूहल अंत तक बनी रहती है।

समीक्षकों ने कथा संगठन पर कई दृष्टियों से विचार किया है, रमनाथ के कलाकरो का जीवन विस्तार अनावश्यक मानते हैं। किन्तु याद देनी नहीं है यदि कथा का विस्तार कठकता तक न होता तो आश्रय और रमा के जीवन में न तो परिवर्तन आता और न तो देशकाज की गतिविधियों पर ही पूरा विचार हो पाता। इस संबन्ध में श्री मन्मथराय पाठक का कहना है कि—
 “एक अन्य उद्देश्य जो इस घटना-क्रम से सिद्ध हुआ है, आश्रय के चरित्र परिवर्तन का उद्देश्य है। यदि उपन्यास प्रयाग तक ही सीमित रहता तो कदाचित् आश्रय का यह परिवर्तन इतने विरवसनीय रूप में न दिखाया जा सकता। प्रेमचंद ने उसके चरित्र-परिवर्तन में कलाकरो की कथानी का जो उपयोग किया है वह कथा की मुट्टियों को चौड़ा-बहुत फल कर देता है। आश्रय ही वह सूत्र है, जो प्रयाग और कलाकरो की कहानियों को संघटित करता है।”

फिर भी कथानक की कुछ शिथिलताएँ सबसामग्र्य पाठक को स्पष्ट होती हैं जैसे इन्द्रमूषण की वार्ताएँ, वेणीदान के सम्ये संस्मरण, रतन का कलाकरो तक जाना, उपन्यास के अंत में रतन और जोहरा का भी आकर एक जगह रहना और जोहरा का अज्ञानक अंत हो जाना।

अंत में श्री मन्मथराय गुप्त की निम्न पंक्तियाँ कथानक के संबन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो उपन्यास के बहुत संगठन संबंधी पूरे प्रमाण को व्यक्त करती हैं। “प्रेमचंद के उपन्यासों में जो ही उपन्यास यथेष्ट रूप से यथायथा हैं, एक निर्मला और दूसरा गधन। निर्मला के मुकाबिल में गधन का कथानक कुछ शिथिल होनेपर भी इस शिथिलता की क्षति-पूर्ति इसके विषय की विस्तृति से हो जाती है।”

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण उपन्यास का आवश्यक तत्व है। पात्रों की भावनाओं, विचारों एवं क्रिया कलापों के सतार चढ़ाव से ही कथानक में गतिशीलता आती है। पात्रों का चयन एवं कथानक में उनके क्रिया कलापों का चित्रण हीरोस का परिचायक है। चरित्र-चित्रण के लिये व्यापक जीवन की अनुभवों को गहराई एवं व्यवहारों की व्यापकता का ज्ञान होना चाहिये। पात्रों के चयन एवं निमाय के संवन्ध में एलिजाबेथ बोवेन का कहना है—

“पात्र कोइ बना नहीं सकता केवल कठपुतली ही बनायी जा सकती है।” यह कहना कि पात्रों का निमाय किया जाता है, मिथ्या है। पात्र तो पहले से रहते हैं। वे ग्रहण किये जाते हैं। उपन्यास-कथा की चेतना में घोंरे घीरे में प्रगट होते हैं—वैसे किसी रेल के बन्दे के घूमिस प्रकार में समाने बैठा हुआ पात्री घीरे घीरे हमारे सम्मुख स्पष्ट होता है।”

अपनी-अपनी विशेषताओं एवं समस्याओं के कारण चरित्र भी विविध प्रकार के होते हैं। उपन्यास में चरित्र निम्न प्रकार के माने जाते हैं—

- १ व्यक्ति प्रधान (Individual Character)
- २ षग प्रधान चरित्र (Typical Character)
- ३ स्थिर चरित्र (Static Character)
- ४ गतिशील चरित्र (Kinetic Character)

व्यक्ति प्रधान चरित्रों में अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ होती हैं जिनके कारण वह अन्य व्यक्तियों से भिन्न जान पड़ता है। इस प्रकार के चरित्र का उदाहरण ‘रोस्टर’ एक जीवनी का रोस्टर है।

षग प्रधान चरित्रों में इस प्रकार की तमाम विशेषताएँ एवं आचरण रहते हैं जो व्यक्ति विशेष के न हाकर पूरे समाज, समुदाय या षग विशेष का होता है। जैसे प्रेमचंदजी का हीरो और ‘रमानाय’। किन्तु शुद्ध रूप से व्यक्तिप्रधान चरित्र नहीं होते बरंगत्त प्रमाय व्यक्ति को आचरण प्रभावित करता है। ऐसा चरित्र बिराज माना जाता है क्योंकि “षगयुक्त हाने के

कुछ मिलाकर गति शीलता स्वामाविकता, एवं पटनाओं तथा पात्रों के सघोषन की दृष्टि से कथानक पूर्ण तथा सुसंगठित एवं गृह्यता बढ़ है। उपन्यास अपनी सम्यक परियोजना तथा सत्यपूर्ति में सर्वथा सफल है। कथा-प्रवाह में कहीं कमी नहीं आती, कथा अपने आप परिस्थितियों का निर्माण करती हुई आगे बढ़ती है। कथा की रोचकता और कौतूहल अंत तक बनी रहती है।

समीक्षकों ने कथा संगठन पर कई दृष्टियों से विचार किया है, रमानायक के कलाकर्मों का जीवन विस्तार अनावश्यक मानते हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है यदि कथा का विस्तार क्लृप्ता तक न होता तो बालपा और रमा के जीवन में न तो परिवर्तन आता और न तो देशकाल की गतिविधियों पर ही पूर्ण विचार हो पाता। इस संबन्ध में श्री मन्वदुसारें दासपेयी का कहना है कि—
 “एक अन्य उद्देश्य जो इस पटना-कर्म से सिद्ध हुआ है, बालपा के चरित्र परिवर्तन का उद्देश्य है। यदि उपन्यास प्रयाग तक ही सीमित रहता तो कदाचित्त बालपा का यह परिवर्तन इतने विश्वसनीय रूप से न दिखाया जा सकता। प्रेमचंदजी ने उसके चरित्र-परिवर्तन में कलाकर्मों की कहानी का जो उपयोग किया है वह कथा की मुट्टियों को ढोका-बहुत फम फर देता है। बालपा ही वह सूत्र है, जो प्रयाग और कलकत्ते के कहानियों को संभवित करता है।”

फिर भी कथानक की कुछ शिथिलताएँ सप्तसाधारण पाठक को खटकती हैं जैसे इन्द्रमुपण की वाताएँ, देवीदीन के लम्बे संस्करण, रतन का कलाकर्मों तक जाना, उपन्यास के अंत में रतन और ओहरा का भी आकर एक जगह रहना और ओहरा का अचानक अंत हो जाना।

अंत में श्री मन्मथ नाथ गुप्त की निम्न पंक्तियाँ कथानक के संबन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो उपन्यास के बन्धु संगठन संबंधी पूरे प्रभाव को व्यक्त करती हैं। “प्रेमचंद के उपन्यासों में ही ही उपन्यास यथार्थ रूप से यथावधानी हैं, एक निर्मला और दूसरा गणन। निर्मला के मुझादिल में गणन का कथानक कुछ शिथिल होनेपर भी इस शिथिलता की क्षति-पूर्ति उसके विषय की विस्तृति से हो जाता है।”

चरित्र-चित्रण

चरित्र-चित्रण उपन्यास का आधारभूत तत्व है। पात्रों की भावनाओं, विचारों एवं क्रिया कलापों के उतार चढ़ाव से ही कथानक में गतिशीलता आती है। पात्रों का चयन एवं कथानक में उनके क्रिया कलापों का चित्रण कौराज का परिचायक है। चरित्र-चित्रण के लिये व्यापक जीवन की अनु-मूर्तियों की गहराई एवं व्यवहारों की व्यापकता का ज्ञान होना चाहिये। पात्रों के चयन एवं निमाख के संबंध में एलिजाबेथ थोबेन का कहना है—

“ पात्र कोइ बना नहीं सकता केवल कठपुतली ही बनायी जा सकती है। ” यह कहना कि पात्रों का निमाख क्रिया खाता है, मिथ्या है। पात्र तो पहले से रहते हैं। वे ग्रहण किये जाते हैं। उपन्यास-कथा की चेतना में धीरे धीरे वे प्रगट होते हैं—जैसे किसी रेल के डब्बे के घूमित प्रकाश में सामने बैठा हुआ पात्री धीरे-धीरे हमारे सम्मुख स्पष्ट होता है। ”

अपनी-अपनी विरोधभावों एवं समस्याओं के कारण चरित्र भी विविध प्रकार के होते हैं। उपन्यास में चरित्र निम्न प्रकार के माने जाते हैं—

- १ व्यक्ति प्रधान (Individual Character)
- २ वर्ग प्रधान चरित्र (Typical Character)
- ३ स्थिर चरित्र (Static Character)
- ४ गतिशील चरित्र (Kinetic Character)

व्यक्ति प्रधान चरित्रों में अपनी वैयक्तिक विशेषताएँ होती हैं जिन्हें कारण बद् अन्य व्यक्तियों से भिन्न ज्ञान पड़ता है। इस प्रकार के चरित्र का उदाहरण शेक्सपियर 'एक जीवन' का शेक्सर है।

वर्ग प्रधान चरित्रों में इस प्रकार की तमाम विशेषताएँ एवं आधारभूत शक्त हैं जो व्यक्ति विरोध के न बाहर पूरे समाज, समुदाय या वर्ग विरोध का होता है। जैसे प्रेमसंबंधों का दारो और 'रमानाय'। किन्तु शुद्ध रूप से व्यक्तिप्रधान चरित्र नहीं होते बगलत प्रभाव व्यक्ति को आधारभूत प्रभावित करता है। ऐसा चरित्र विरिष्ट माना जाता है क्योंकि "व्यक्त हाने के

कारण यह सत्य होता है, व्यक्तित्व युक्त होने के कारण विरचनीय (Every great character of fiction, must exhibit, therefore, an intimate combination of the typical and individual traits. It is through being typical that the character is true, it is through being individual that the character is convincing")

स्विर एवं गतिशील चरित्रों में स्विच चरित्र पूरे उपन्यास में एक ही स्वरूप एवं व्यवहार लेकर बने रहते हैं। किन्तु गतिशील चरित्र परिवर्तनशील होते हैं उनके जीवन-व्यापार, विचारों एवं घटनाओं में छटार चढ़ाव रहता है। इस प्रकार के परिवर्तन में व्यक्तियों-नुसखा या पसनों-नुसखा का प्रश्न नहीं है। गतिशीलता होनी चाहिये। चरित्र में एकदमता और स्विचता न हो।

पात्रों के जीवन के परबल चरित्र चित्रण का प्रश्न आता है। चरित्र-चित्रण के संघर्ष में प्रेमचन्द जी कहते हैं—“उपन्यास चरित्रों के ही विकास का प्रश्न है। अगर उसमें विकास का दाप है, तो वह उपन्यास कमजोर हो जायगा। कोई चरित्र अंत में भी वैसा ही रहे वैसा वह पहले था—उसके बल, बुद्धि और भावों का विकास न हो, तो वह असफल चरित्र है।”

“उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना ही स्पष्ट, गहरा और विकास-पूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा।”

चरित्र चित्रण की दो विधियाँ होती हैं—

१. प्रत्यक्ष चित्रण विधि या विश्लेषणात्मक (Analytical)

२. अप्रत्यक्ष चित्रण विधि या अभिनय-आत्मक (Indirect or Dramatic)

प्रत्यक्ष चित्रणमें उपन्यासकार स्वयं चरित्रों के संबन्ध में कहता बोलता है पाठक को किसी प्रकार का विशेष प्रयास उसके चरित्र के सम्यक् में जानने के लिये नहीं करना पड़ता।

अप्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण की विरोधता यह है कि इसमें उपन्यासकार को चरित्रों की व्याख्या स्वयं नहीं करनी होती, पाठक स्वयं उनके अन्तर्गत क्रियाकलापों एवं भावनाओं का निरीक्षण करके समझ लेता है। इस प्रकार के चरित्रों के धारे में पाठक, पात्रों के अभिभाषण, उनके क्रियाकलाप और

दूसरे पात्रों पर उनके पढ़ने वाले प्रभाव द्वारा चरित्रों की आरिद्रिक विशेषताओं का निष्पत्ति करता है। यह विधि सर्वोत्तम विधि मानी जाती है।

X

X

X

गद्य के चरित्र महत्वपूर्ण हैं—रमानाथ, जालपा, देवीदीन आदि सभी चरित्र 'वर्गीय चरित्र' हैं। सभी पात्र प्रायः गतिशील एवं चरित्र की दृष्टि से सजीव हैं। ये कल्पनिक चरित्र नहीं हैं। जीवन के यथार्थवादी घटनाक्रम पर सबत्र इनको हम देख सकते हैं।

जालपा

प्रेमचंद भी ने नारी-पात्रों का चित्रांकन उनके सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखकर किया है। वातावरण एवं परिस्थितियों के कारण पात्रों के संस्कार एवं मानसिक-विकास उसको जीवन की किसी विशेष दिशा की ओर मोड़ते हैं। उनकी नागरिक नारी का दृष्टिकोण मामीय नारी से सवपा भिन्न है।

जालपा प्रेमचंद की विशिष्ट नारी पात्र है। जालपा विवाहिता नारी का रूप है। गौदान की 'धनिया' भी विवाहिता नारी है किन्तु उसका परिवेश शुद्ध मामीय है—मामीय समाज एवं संस्कारों में पली तथा मामीय जीवन की मयादाओं में बँधी नारी है।

जालपा एक मध्यवर्गीय परिवार की विवाहिता नारी है। नारी के स्वामाधिक गुणों से युक्त और अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक। जालपा मध्यवर्गीय सामाजिक परिस्थितियों की देन है। जालपा एक चरित्र की विशेषताएँ निम्न हैं—सर्व प्रथम हम जालपा को

आभूषण विवला

उपन्यास में गौय की एक बालिका के रूप में देखते हैं। मध्यवर्गीय परिवार, माता-पिता की इकठ्ठी

पुत्री, स्नेह से भरा हुआ बाल-जीवन। गौय की लड़कियों के साथ खेलना, बानी से बहानी सुनना, और लड़कियों को नकली आभूषणों से सजाना वही उसका जीवन था। जालपा का प्रारम्भिक जीवन एक ऐसे वातावरण में घिरा था, जहाँ आभूषण से प्रेम होना स्वामाधिक था। गौय और पर का वाता-

वरण, बाल्य-काल से ही उसके जीवन में आभूषण के प्रति प्रेम करने के लिए उत्तर दायी है। उसका पावन-पोषण 'आभूषण मंडित संसार' में हुआ था। इस संघन्य में प्रेमचन्द जी कहते हैं—'जाखपा को गहना से जितना प्रेम था, कदाचित् संसार की किसी और वस्तु से नहीं था, इसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी? जब वह तीन वर्ष की अशोभ बालिका थी उस वक्त उसके लिए सोने के बूड़े बनवाये गये थे। दादी जब उसे गोद में लिखाने लगी तो गहनों ही की पर्चा करती। तेरा बूढ़ा तेरे लिए बड़े सुन्दर गहने लायेगा, ठुमुक ठुमुक कर चलेगी।''

पचपन में जाखपा ने माँ का चन्द्रहार देखा था उसके मन में चन्द्रहार के प्रति एक स्वामिभक्त अकांक्षा थी। जिस आकांक्षा की पूर्ति शादी में आने वाले सदाब के गहने से पूरा करना चाहती थी। शादी में चन्द्रहार न मिलने पर उसके मन का विरोध बोट लगी। जाखपा समुरास पहुँचती है वहाँ भी चन्द्रहार के लिए पति से आग्रह करती है। किसी प्रकार रमानाम इसकी पूर्ति करता है। अचानक गहना गायब होने के आघात से उसका जीवन परिवर्तित हो जाता है, गहने गायब होने पर बहुत दिनों तक वह मुहल्ले के कं महिखाओं से मिलने नहीं जाती है। वस्तुतः रमा और जाखपा का प्रेम बहुत बुरा आभूषण प्रेम पर आधारित था, जाखपा गहनों का प्यार करती थी रमा उसके रूप और अवाती को। रमा जब गहने लाकर देता है तो वह प्रसन्नता से भर छूटती है उसके व्यवहार में परिवर्तन हा जाता है, रमा की हर सेवाओं का सम्राज रखती और प्रसन्न रहने लगी।

जाखपा के रंग-रंग में स्वामिमान भरा हुआ है वह अपने को मुका कर किमी भी अकांक्षा की पूर्ति नहीं चाहती। माँ के द्वारा चन्द्रहार मिलने पर उसके आत्म-सम्मान का ठेस लगता है क्योंकि वह माँ की परिस्थितियों को खूब समझती थी। अब वह विवाहिता नारी थी

स्वामिमाविकी पति और अपने सम्मान को समझने लगी थी।

चन्द्रहार देखने पर वह कहती है— प्रम से यदि वह मुझे एक छल्ला भी दे दे ता मैं दोना हाथ से ले लूँ। दान मिहारियों को दिया जाता है, मैं किसी का दान न लूँगी चाहे वह माता हो क्यों न हो ?

दादी बिचित्र सी बात है कि रमा जितना ही अधिक ज्ञान-शील्य को लिखाने के लिए शरण की ओर मुड़ता है जाखपा उतना ही उससे दूर रहना

कमल

चाहती है, वह नहीं चाहती कि किसी का उसके उपर कर्ज रहे। जब रमा एक बार उसे उधार गढ़ना बनवाना चाहता है तो वह सीधे इसका विरोध करती है और कहती है—'नहीं मेरे लिए कर्ज की जरूरत नहीं मैं बेरया नहीं कि मुझे नोबल एवार्ड पर अपना रस्ता खूँ। मुझे तुम्हारे साथ खोना और मरना है अगर मुझे सारी उम्र बेगड़नों के रहना पड़े तो भी मैं कर्ज लेने के लिए न कहूँगी।' जालपा नहीं चाहती कि रमा को किसी प्रकार दूसरों के आगे मुझना पड़े। जब उसे रमाके अणुका पता चलता है तो वह कहती है—'अगर मैं जानती कि तुम्हारे आमदनी इसनी थोड़ी है तो मुझे क्या ऐसा शौक बरौया था कि मुझसे भर की स्त्रियों को चांगे पर बैठ-बैठा कर सैर कराने ते जाती। अधिक से अधिक यही होता कि कमी-कमी चित्त तुझी हो जाता पर यह उफाना तो नहीं सहने पड़ते।"

जालपा एक विवाहिता नारी है। विवाहिता नारी का पति के प्रति कैसी निष्ठा और कष्टव्य के प्रति कैसा आग्रह होना चाहिए वह भलि-भक्ति समझती है वह जानती है कि विवाहिता नारी के लिए पति ही उसका सर्वस्व है—वह पति की आत्मा और आकांक्षा के साथ मरती और जीती है। जालपा रमा का सर्वेश ध्यान रखती है जब भी वह उपास पति प्रेम और सेवा और चिन्तित विधायी पड़ता है जालपा उसके दुःख को दूर करने की चेष्टा करती है। नारी और पुरुष का स्वभाविक विश्वास और प्रेम विवाहित जीवन का मूल आधार है। एक दिन जब रमानाय उदास था तो जालपा पछ बैठी क्या सब तुम मुझसे प्रेम करते हो ? रमानाय असमंजस में पड़ गया तो वह पुन कहने लगी—'बातें पना रहे हो अगर तुम्हें मुझसे सख्खा प्रेम होला तो तुम कभी पना नहीं रखते। तुम्हारे मन में कोई ऐसी बात जरूर है जा तुम मुझसे छिपा रहे हो। कई दिनों से देख रही हूँ कि तुम चिन्ता में रूपे हो। मुझसे क्यों नहीं पड़ते ? वहाँ विरवास नहीं है, वहाँ प्रेम कैसे रह सकता है।"

जालपा सर्वेश पति के साथ इमानदार रहती है। वह हमेशा पति के सुख-दुःख के साथ चलने वाली नारी है। वज के प्रसंग जाने पर जालपा कहती है। 'मुझे तुम्हारे साथ जीना मरना है। अगर मुझे सारी जिन्दगी वे गढ़नों के रहना पड़े, तो भी मैं कर्ज लेने को न कहूँगी' एक बार जब रमानाय

वरण, बाल्य-काल से ही उसके जीवन में आभूषण के प्रति प्रेम करने के लिए उद्यत था। उसका पावन-पोषण 'आभूषण मंडित संसार' में हुआ था। इस संबंध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—'आलपा को गहना से बितना प्रेम था, कदाचित् संसार की किसी और वस्तु से नहीं था, उसमें आश्चर्य की कौन सी बात थी ? रूप बह रोज कर्प को अघोष कालिका थी उस वक्त उसके लिए सोने के बड़े धनबाये गये थे। दारी जब उसे गोद में खिलाने लगी तो गहनों ही की चर्चा करती। तेरा बूझा तरे लिए बड़े सुन्दर गहने लायेगा, ठुमुक ठुमुक कर चलेगी।''

बचपन में आलपाने माँ का चन्द्रहार देखा था उसके मन में चन्द्रहार के प्रति एक स्वामयिक अर्काँचा थी। जिस आर्काँचा की पूर्ति शादी में आने वाले पढ़ाव के गहने से पूरा करना चाहती थी। शादी में चन्द्रहार न मिलने पर उसके मन का विरोध बोट लगी। आलपा समुराज पहुँचती है वहाँ भी चन्द्रहार के लिए पति से आग्रह करती है। किसी प्रकार रमानाथ इसधी पूर्ति करता है। अथानक गहना गायब होने के आघात से उसका जीवन-परिषसिंघ हो जाता है, गहने गायब होने पर बहुत दिनों तक वह मुहस्ते के फं महिषाओं से मिलने नहीं जाती है। वस्तुतः रमा और आलपा का प्रेम यहुत कुछ आभूषण प्रेम पर आधारित था, आलपा गहनों का प्यार करती थी रमा उसके रूप और खजाली को। रमा जब गहने लाकर देता है तो वह प्रसन्नता से भर उठती है उसके व्यवहार में परिवर्तन हा जाता है, रमा की हर सेवाओं का उपासक रहती और प्रसन्न रहने लगी।

आलपा के रग-रग में स्वाभिमान भरा हुआ है वह अपने को मुक्ता कर किसी भी अर्काँचा की पूर्ति नहीं चाहती। माँ के द्वारा चन्द्रहार भेजने पर उसके आत्म-सम्मान का ठेस उगता है क्योंकि वह माँ की परिस्थितियों को खूब समझती थी। अब वह विधाहिता भारी थी

स्वामिमामिबी पति और अपने सम्मान को समझने लगी थी।

चन्द्रहार देखने पर वह कहती है—'प्रेम से यदि वह मुझे एक छस्ला भी दे दे ता मैं दोना हाथ से ले लूँ। दान मिलारियों को दिया जाता है, मैं किसी का दान न लूँगी चाहे वह माता हो क्यों न हो ?

वही विचित्र सी बात है कि रमा नितना ही अधिक ज्ञान-शील को खिलाने के लिए शत्रु की आर मुक्ता है आलपा उतना ही बससे दूर रहना

चाहती है, वह नहीं चाहती कि किसी का उसके एपर कर्ज रहे। जब रमा एक बार उसे उभार गढ़ना बनवाना चाहता है तो वह सीधे इसका विरोध करती है और कहता है—'नहीं मेरे लिए कस की खतरस नहीं मैं बेरया नहीं कि तुम्हें नोब हसोट कर अपना रास्ता हूँ। मुझे तुम्हारे साथ जीना और मरना है अगर मुझे सारी सन्न वेगइनों के रहना पड़े तो भी मैं कज लेने के लिए न कहूँगी।' जालपा नहीं चाहती कि रमा को किसी प्रकार दूसरों के आगे मुहना पड़े। जब उसे रमाके शय्यका पता चलता है तो वह कहती है—'अगर मैं खानवी कि तुम्हारी आमदनी इतनी थोड़ी है तो मुझे क्या ऐसा शीक बरौया या कि मुहन्ने भर को स्त्रियों को सांगे पर बैठ-बैठा कर सैर कराने ले जाती। अधिक से अधिक यही होता कि कमी-कमी पिसत दुम्बी हो जाता पर यह सजाबा तो नहीं सहने पड़ते।"

जालपा एक विवाहिता नारी है। विवाहिता नारी का पति के प्रति कैसी निष्ठा और कचक्य के प्रति कैसा आग्रह होना चाहिए वह मलि-भक्ति समझती है वह खानवी है कि विवाहिता नारी के लिए पति ही उसका सर्वस्व है—वह पति की आशा और आकांक्षा के साथ मरती और जीती है। जालपा पति प्रेम और सेवा रमा का सर्वेष ध्यान रखती है जब भी वह उपास को दूर करने की चेष्टा करती है। नारी और पुरुष का स्वामयिक विश्वास और प्रेम विवाहित जीवन का मूल आधार है। एक दिन जब रमानाय उदास या तो जालपा पूछ बैठी क्या सब तुम मुझसे प्रेम करते हो ? रमानाय असमंजस में पड़ गया तो वह पुन कहने लगी—'वातें बना रहे हो अगर तुम्हें मुझसे सच्चा प्रेम होता तो तुम कमी पदां नहीं रखते। तुम्हारे मन में कोई ऐसी बात खतर है जो तुम मुझसे छिपा रहे हो। कई दिनों से देख रही हूँ कि तुम चिन्ता में हूँ हो। मुझसे क्यों नहीं कहते ? वहाँ विरयास नहीं है, वहाँ प्रेम कैसे रह सकता है।"

जालपा सर्वेव पति के साथ इमानदार रहती है। वह हमेशा पति के सुत्र-सुत्र के साथ चलने वाली नारा है। पत्र के प्रसंग आने पर जालपा कहती है। 'मुझे तुम्हारे साथ जीना मरना है। अगर मुझे सारी जिन्दगी से गहनों के रहना पड़े, तो भी मैं पत्र लेने को नजरूँगी' एक बार जब रमानाय

आसपा को प्रसन्न करने के लिए जब उमार गहनों को लेकर घर में पहुँचता है तो आसपा कहती है कि 'क्या तुम समझते हो कि मैं गहने और साक्षियों पर मरती हूँ इन चीजों को छोटा साधो ? एक दिन जब आसपा को कर्ब को पता चलता है कि वो वह कहती है—'मैं तो भले-धरे दोनों ही की साधिनी हूँ, भले में तुम चाहें मेरी बात मत पूछो, लेकिन बुरे में तो मैं तुम्हारे गले पहुँगी ही। आसपा बार-बार रमा को स्पष्ट होने को कहती है वह जानती है कि पति-पत्नी का एक दूसरे के प्रति स्पष्ट होना चाहिए आसपा स्वयं रमा से स्पष्ट है क्यों कि वह जानती है कि यह पत्नी का धर्म है किन्तु उसे इस बात की रक्षानि भी है कि रमा अपने व्यक्तित्व पर, भावनाओं पर विचारों पर पर्दा डालकर आसपा से मिलता है। वह रमा से स्पष्ट कहती है—“पता है ? मैं तुम्हारी सम्मनता पर मोहित हूँ। अब तुमसे क्या क्षिपाऊँ, सब यहाँ आयी ता यद्यपि तुम्हें अपना पति समझती थी लेकिन कोई बात कहते या करते समय मुझे चिन्ता होती थी कि तुम मुझे पसन्द करोगे कि नहीं। यदि तुम्हारे बन्धु मेरा विवाह किसी दूसरे पति के साथ होता तो उसके साथ भी मेरा यही व्यवहार होता है—यह पत्नी और पुरुष का रिवाजी नाता है, पर अब मैं तुम्हें गोपियों के कृप्या से भी न बर्बरगी लेकिन तुम्हारे दिल में अब भी चोर है तुम भी मुझसे किसी-किसी बात में पर्दा रखते हो।’

धैर्य भारतीय नारी की अपनी विशेषता होती है। धैर्य और साहस आसपा के चरित्र की विशेषतायें हैं। वह रमानाथ को सबैव जीवन में सक्रिय और सतर्क रहने का उपदेश देती है। वह सबैव रमानाथ को संकट से बचाने की चेष्टा करती है। इस सम्बन्ध में डा० राम विश्वास शर्मा का कहना है कि 'वह निमला की तरह धुल-धुल कर प्राण देने वाली नहीं है और न सुमन की तरह तैरा में आफर खम्बी ही किसी अनजानी राह पर कदम छठाने वाली। उसका चरित्र कठिनाइयों का सामना करते हुये बार बार निखरता रहता है, क्योंकि वह अपनी स्वामिणी पहचान सक्षती है।”

वह रमा का पता लगाती है, और फलफले पहुँचती है, यहाँ—

देवीहीन के यहाँ रहना, रमानाथ को पुसिस एवं कानून से बचने की प्रेरणा देना—यह उसके साहस का ही परिणाम है।

हाई कोर्ट में सबको, गवाही देते समय न्यायालय में रमानाथ कहता है—“आज्ञा के त्याग, निष्ठा और सत्य प्रेम ने मेरो आसों खोजी है।” और आज्ञा के स्वयं एक स्थान पर रमानाथ से कहती है—“मैंने पापों का हृदय प्रायश्चित्त किया है और क्षेप औषध के बंध तक हृदय की पवित्रता करूँगी। मैं यह नहीं कहती कि भोग विज्ञास मे मेरा पंथ सत्यता थी मर गया है या गहने कपड़े से बच गयी या सिर तमाझे से घृणा हो गयी। मेरी अभिलाषाएँ क्यों की स्यों हैं। पुरुषार्थ से अपने परिभ्रम से अपने सदुद्योग से उन्हें पूरा कर सकी, तो क्या कहना, लेकिन नीयत खोटी करके, आत्मा को कष्टुपिठ करके एक आत्म भी लाओ तो मैं ठुकरा दूँगी।”

आज्ञा अपनी भायनाओं एवं कर्तव्यों से पवित्र है। किसी भी अनुचित काम करने की न तो याचना ही सम्पन्न होती है और न तो रमानाथ को ही किसी अनुचित काम करने के लिये प्रेरित करती है। जब रमानाथ अपनी ऊपरी आत्मदनी की रक्षा करता है या यह कहती है—“तो तुम घूस लोगे, गरीबों का गला काटोगे ?” जब रमानाथ पुसिस के अभ्यापार से विवश होकर गवाही देने की बात कहता है, तो आज्ञा कहती है—“क्यों नहीं छाती थोसकर खड़े हो गये कि इसे गोली का निशाना बनाओ। पर मैं मूठ नहीं थोसूँगा। क्यों नहीं सिर फुटा लिया ? वेह के भीतर आत्मा इस लिये रखी गई है कि वेह उसकी रक्षा करे इसलिये नहीं कि उसका सबनाश कर दे।” पुन आज्ञा कहती है—“मैंने तुमसे पहले ही कहा दिया था और आज फिर कहती हूँ कि मेरा तुमसे कोई माता नहीं है। मैंने समझ लिया कि तुम मर गये तुम भी समझ लो की मैं मर गई। यह जाओ मैं औरत हूँ। मगर कोई धमका कर मुझसे पाप करना चाहे तो चाहे उसे न मार सकूँ पर अपने गहने पर छुरी चला लूँगी। क्या तुममें औरत परापर भी हिम्मत नहीं है।”

आज्ञा के हृदय में अपने देग के प्रति न्यायाधिक प्रेम है और बेरा

ब्रौह्मियों के प्रति तथा बेरा प्रेम की भावना न रखने वालों के प्रति अत्यधिक घृणा भी है। क्लृप्तता पहुँचने पर जब उसे देख-धेम यह पता चलता है कि रमानाथ कुछ अतिकारियों के प्रति गवाही देने वाला है तो उसका हृदय अपने पति के प्रति घृणा से भर उठता है।

“बह उससे कहना चाहती थी तुम्हारा मन और वैभव तुम्हें मुबारक हो बालूपा उसे पैरों से टुकराती है। तुम्हारे खून से रंगे हुये हाथों के स्पर्श से मेरी बेह में छात्रो पड़ जायेंगे। जिसने मन और पद के लिये अपनी आत्मा बेच दी उसे मैं मनुष्य नहीं समझती। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम पशु भी नहीं, तुम कायर हो ! कायर !”

बेरा मच्छ दिनेश की फौसी की सजा सुनकर व्यग्र हो उठती है और उसके परिवार के लिये हर प्रकार से आर्थिक व्यवस्था करती है। इतना ही नहीं—बंदा तक इकट्ठा करती है।

बालूपा का जीवन एक त्यागशील नारी का जीवन है जितना ही उसके हृदय में आभूषण के प्रति प्रेम था उतना ही उसके जीवन में त्याग शीलता भी कूट-कूट कर मरी हुई थी। जब रमा पर से मत्त शबागरीबता साता है तो वह अपने सारे प्रसाधनों को गंगा में प्रवाहित कर देती है और रतन से कहती है—“यही निष्कुरता मन पर विजय करती है। यदि कुछ दिन पहले निष्कुर हो जाती तो यह दिन क्यों देखना पड़ता।”

रमा के चले जाने के बाद अपने बिक्रमिणी जीवन के प्रति असंतोष प्रगट करती है और दुःख्य होकर कहती है—“जब तक ये चीजें मेरी आँसुओं से बुर न हो आयगी, मेरा शिथ शान्त न होगा इसी विससिता ने मेरी यह दुःखि की है। यह मेरी विपत्ति की गठरी है, प्रेम की स्मृति नहीं। प्रेम तो मेरे हृदय पर अंकित है।” बालूपा का अरिभ्र भारतीय नारी की त्याग शीलता का आदर्श अरिभ्र है। जब तक उसे अपने परिवार और जीवन के पधार्य का ज्ञान नहीं रहता तब-तक आभूषण सम्बन्धी नारी को दुवक्तारिणी से कभी आन पड़ती है किन्तु जब उसे सत्यता का पता लग जाता है तो अपने पूरे धैर्य और साहस के साथ सप कुछ त्यागकर रमानाथ के जीवन को भी

परिवर्तित कर देती है। आत्मपा की ही मूल प्रेरणा से रमानाय का वास्तविक चरित्र निकल सका है। आत्मपा के चरित्र के संबन्ध में डॉ० रामबिलास शर्मा लिखते हैं—“आत्मपा भारत का उगता हुआ नारीत्व है। वह मविष्य की सूफानों की अप्र सूचना है। उसने वर्तमान की राह पर मजबूती से पाँव रखा है और मविष्य की तरफ यह निराक दृष्टि से देखती है। वह एक नई भाग है जो मूठी संस्कृति के कागजी फूलों को भस्म कर देती है। वह सदियों की सांझना और अपमान को पहचानने वाली नई शूरता है जिसके आगे कोई बाधा ठहर नहीं सकती। वह हिन्दुस्तान के नये आने वाले इतिहास की भूमिका है, वह इतिहास जिसमें आत्मो आत्मपा एक साथ आगे बढ़ेगी और ऐसे नारीत्व का चित्र आँकेगी जिसके सामने अतीत के सभी चित्र पीके होंगे।”^१

आत्मपा एवं रमा के चरित्र संबन्ध में पं० मन्त्रुखारे वासपेयी का संकेत है कि “आत्मपा के चरित्र में कोई मूलभूत विरुद्धि नहीं है। रमानाय और आत्मपा दोनों ही वास्तविकता से दूर हैं; दोनों में अन्तर यह है कि आत्मपा वास्तविकता के समीप पहुँचने का निरन्तर प्रयत्न करती है जब कि रमानाय उससे सदैव दूर ही भागता रहता है—वह जब तक अँवेरे में है तब प्रकृता के लिये समुत्सुक है और एक बार जब परिस्थितियाँ उसे अच्छी तरह मकम्लेर कर वस्तु स्थिति का आभास दे देती हैं, तब वह अपने जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ करती है।”

रमानाय

रमानाय इस उपन्यास का प्रधान चरित्र है। उपन्यास की घटनाएँ उसी के जीवन के आस-पास घूमती हैं। रमानाय न केवल वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करता है अपितु वैयक्तिक गुणों के कारण एक ‘टाइप’ बनकर भी सामने आता है। रमानाय के चरित्र से व्यक्ति के एक ‘टाइप’ और ‘बलास’ दोनों का काम पूरा हो जाता है—उपन्यासकार की यह विशेषता है।

रमानाय मध्यवर्गीय परिवार के नवयुवक का प्रतिनिधित्व करता है। प्रयाग निवासी दयानाय का पुत्र है। दयानाय के

त्रोहियों के प्रति तथा देश प्रेम की भावना न रखने वालों के प्रति अत्यधिक घृणा भी है। कलकत्ता पहुँचने पर जब उसे बैठ-बैठ यह पता चलता है कि रमानाथ कुछ अतिशयियों के प्रति गन्नाही देने वाला है तो उसके हृदय अपने पति के प्रति घृणा से भर उठता है।

“वह उससे कहना चाहती थी तुम्हारा धन और वैभव तुम्हें मुबारक हो आत्मता उसे पैरों से दुकराती है। तुम्हारे खून से रंगे हुये हाथों के स्पर्श से मेरी देह में झाले पड़ जायेंगे। जिसने धन और पद के लिये अपनी आत्मा बेच दी उसे मैं मनुष्य नहीं समझती। तुम मनुष्य नहीं हो, तुम पशु भी नहीं, तुम कायर हो। कायर।”

देश मरुत बिनैरा की फौलो की सदा सुनकर व्यग्न हो उठती है और उसके परिवार के लिये हर प्रकार से आर्थिक व्यवस्था करती है। इतना ही नहीं—बंदा तक इकट्ठा करती है।

आत्मता का जीवन एक त्यागशील नारी का जीवन है जितना ही उसके हृदय में आभूषण के प्रति प्रेम था उतना ही उसके जीवन में त्याग शीलता भी बूढ़-बूढ़ कर मरी हुई थी। जब रमा घर से मला आता है तो वह अपने सारे प्रसाधनों को रंगा में प्रवाहित कर देती है और रतन से कहती है—“यही निष्पूरता मन पर विजय करती है। यदि कुछ दिन पहले निष्पूर हो जाती तो यह दिन क्यों देखना पड़ता।”

रमा के चले जाने के बाद अपने विवासी जीवन के प्रति अंतोप प्राप्त करती है और झुग्घ होकर रहती है—“जब तक ये पीछे मेरी आँसों से दूर न हो जायगी, मेरा पित शान्त न होगा इसी विश्वासिता ने मेरी यह दुर्गति की है। यह मेरी विपत्ति की गठरी है, प्रेम की स्मृति नहीं। प्रेम तो मेरे हृदय पर अंकित है।” आत्मता का अरिभ्र भारतीय नारी की त्याग शीलता का आदर्श अरिभ्र है। जब तक उसे अपने परिवार और जीवन के पदार्थ का ज्ञान नहीं रहता तब-तक आभूषण सम्बन्धी नारी को दुर्लक्षताओं से दृष्टी धान पड़ती है किन्तु जब उसे सत्यता का पता लग जाता है तो अपने पूरे धैर्य और साहस के साथ साथ कुछ त्यागकर रमानाथ के जीवन को भी

पड़े हैं। आलपा को फटकार छुनकर वह अपना बयान वापस लेने का निरवय कर लेता है। उसके चरित्र में काफी परिवर्तन होता है।”

रमा अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने को ऊँचा साबित करने का प्रयत्न करता है जब कि वास्तविकता कुछ और रहती है। विवाह के अवसर पर दिखावे की शान-शौकत सराफे के यहाँ से ब्यार बाम्पय ले आना, रवन की पार्टी के लिए लोगों से बस्तुरें मिथ्याभिमान मँग कर घर सजाना और प्रबन्ध करना ये सब कार्य उसके मिथ्याभिमान के प्रमाण स्वरूप हैं। जब आलपा उसके घर प्रथम बार आयी थी तभी से उसने बसीदारी, बैंक के रुपये और घर शर्च के बारे में मूठा बिबरण प्रस्तुत कर दिया था।

अपने मिथ्याभिमान को बनाये रखने के लिए और आडम्बर प्रिय होने के कारण वह हमेशा वास्तविकता से अपने को दूर रखना चाहता है। रमानाथ का निरवय नहीं है कि किस क्षण अपना मानसिक सुरक्षा के लिए कौन सा मूठ कब पोल देगा। वह माता, पिता, मित्र, पत्नी यहाँ तक की बेबीदीन जैसे पवित्र हृदय के सम्मुख भी वास्तविकता नहीं रखता है। आलपा को उसकी जीवन-संगिनी है और उसके सुल-दुल को समझने वाली भारतीय नारी है उसके साथ भी समझौता नहीं कर पाता। इसी दुर्गुण ने उसके व्यक्तित्व को दूसरी विरा में भोड़ दिया। यदि वह आलपा से मूठ न खोलता ठा गहने की चारी न करनी पड़ती लोगों की दृष्टि में गिरमा न पड़ता पर छोड़ कर भगाना न पड़ता और उसका जीवन ही कुछ दूसरा होता।

१ १

रमा के मूठ खोलने की प्रवृत्ति का कारण वह मध्यवर्गीय सामाजिक संगठन है जिसमें सम्मान रक्षा के लिए अपने को वास्तविकता से अधिक बताना पड़ता है।

रमानाथ उपन्यास का पाठ ही सुगर मनोवैज्ञानिक चरित्र है। भीतर का अन्वइन्द ही उसके चरित्र को निर्धारता है वह जीवन और वास्तविकता

लिये घर के छर्बे को और बोक को सम्भालना एक कठिन समस्या है फिर भी समाज में मान-मर्यादा बनाये रखने के लिए सबग और संघेष्ट रहते हैं। रमानाथ एक बेकार नवयुवक है, मैट्रिक पास करने के बाद उसे कोई नौकरी नहीं मिलती। मित्रों के साथ सैर सपटा और टनिरा तथा शतरंज खेलने में सारा समय व्यतीत करता है। घर के पढ़र रमानाथ सर्वेस अपने को वास्तविकता से अधिक दिखाने का प्रयत्न करता है। इन्ही बेकारी के दिनों में उसकी शादी हो जाती है। विवाह हो जाने पर भी वह अपनी आवश्यकताओं और नये शक्ति को समझ नहीं पाता। अपनी आर्थिक स्थिति के संघर्ष में मूठी सूचनाओं का खपा को बेकर अपने आत्मगौरव की तुष्टि करता है। भारतीय नारी पति-भक्त होती है, पति पर बिरास करने वाली होती है। आलपा भी बिरास कर लेती है। इसी मनोवैज्ञानिक धरातल पर रमानाथ का पूरा व्यक्तित्व खड़ा होता है और यह निरन्तर पतन के माग पर अग्रसर होता जाता है।

रमानाथ के चरित्र में मध्यवर्गीय जीवन की दुर्बलताएँ हैं। इन दुर्बलताओं का ही वह प्रतिनिधित्व करता है। बाप का बर और दिखावेपन के कारण उसका व्यक्तित्व उपन्यास में शिथिल हो गया है। अपनी बनाइ हुई भावना बाल में फँसता है और जीवन में किसी अवसर दुर्बल व्यक्तित्व का चरित्र पर बमकर खड़ा नहीं हो पाता। परिस्थितियों से समझी और संघप करना वह जानता ही नहीं जब भी कोई नई परिस्थिति सामने आती है वह उससे हटकर सोचता है पही कारण है कि रमानाथ बराबर आर्थिक संकट से घिरा हुआ कमबोर व्यक्तित्व सिद्ध होता है। उसमें दूरदर्शिता का अभाव है। डॉ० राम बिलास रामा का कहना है "वह शहरी मध्यम बग की कमबोरियों का प्रतीक है। सचार्ड और आत्म सम्मान से ज्यादा महत्व उसकी नजरों में मूठी मान-मर्यादा का है। उसके पतन का इतिहास इस मूठी मर्यादा वाले समाज के पतन का इतिहास है। फिर भी वह लोगों ही लोगों का भन्डार नहीं है। वह सचार्ड को जिन्दगी बसर कर सकता था, इसकी बाह उसमें है लेकिन इसके लिये उसमें मनोबल का अभाव है, वह मूठ योद्धता है, पहाने बनाता है, फिर अपनी नोपता पर रोता है। वही इन्सानियत के अंधुर उसके रूप में बने

लिये घर के खर्चे को और बोझ को सम्भालना एक कठिन समस्या है फिर भी समाज में मान-मर्यादा बनाये रखने के लिए सख्त और सचेष्ट रहते हैं। रमानाथ एक वेकार नवयुवक है, मैट्रिक पास करने के बाद उसे कोई नौकरी नहीं मिलती। मित्रों के साथ सैर सपटा और टेनिस तथा शतरंज खेलने में सारा समय व्यतीत करता है। घर के बाहर रमानाथ सदैव अपने को वास्तविकता से अधिक दिखाने का प्रयत्न करता है। इन्हीं वेकारी के दिनों में उसकी शादी हो जाती है। विवाह हो जाने पर भी वह अपनी आवश्यकताओं और नये व्यक्ति को समझ नहीं पाता। अपनी आर्थिक स्थिति के संबंध में झूठी सूचनाएँ जाबपा को देकर अपने आत्मगौरव की तुष्टि करता है। भारतीय नारी पति-भक्त होती है, पति पर विश्वास करने वाली होती है। जाबपा भी विश्वास कर लेती है। इसी मनोबैज्ञानिक परावह पर रमानाथ का पूरा ब्यक्तित्व खड़ा होता है और वह निरन्तर पवन के माग पर अमसर होता जाता है।

रमानाथ के चरित्र में मध्यवर्गीय जीवन की दुर्बलताएँ हैं। इन दुर्बलताओं का ही वह प्रतिनिधित्व करता है। बापू आन्दोलन और विद्रोहों के कारण उसका व्यक्तित्व उपन्यास में शिथिल हो गया है। अपनी बनाई हुई भावना जाल में फँसता है और जीवन में किसी अवसर दुर्बल व्यक्तित्व का चरित्र पर अमर खड़ा नहीं हो पाता। परिस्थितियों से समझौता और संभप करना वह जानता ही नहीं जब भी कोई नई परिस्थिति सामने आती है तब वह उससे हटकर सोचता है यही कारण है कि रमानाथ बराबर आर्थिक संकट से घिरा हुआ कमजोर व्यक्तित्व सिद्ध होता है। उसमें दूरदर्शिता का अभाव है। डा० राम विलास रामा का कहना है "वह राहती मध्यम वर्ग की कमजोरियों का प्रतीक है। सचाई और आत्म सम्मान से ज्यादा महत्व उसके मनोरंजनों में झूठी मान-मर्यादा का है। उसके पवन का इतिहास इस झूठी मयावा जाले समाज के पवन का इतिहास है। फिर भी वह सोंपी ही वार्पों का मन्दार नहीं है। वह सचाई की जिन्दगी बसर कर सकता था, इसकी चाह उसमें है लेकिन इसके लिये उसमें मनोबल का अभाव है, वह झूठ खोजता है, बहाने बनाता है, फिर अपनी नीपता पर रोता है। वही इन्सानियत के अक्षर उसके हृदय में दबे

पड़े हैं। आत्मपा की फटकार सुनकर वह अपना बयान वापस लेने का निश्चय कर लेता है। उसके चरित्र में काफी परिवर्तन होता है।”

रमा अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने को ऊँचा सावित करने का प्रयत्न करता है जब कि वास्तविकता कुछ और रहती है। विवाह के अवसर पर दिखावे की शान शीकठ सराफे के यहाँ से उबार आम्पूय ले आना, रतन की पार्टी के लिए लोगों से बस्तुएँ मिथ्याभिमान माँग कर घर सजाना और प्रवन्ध करना ये सब कार्य उसके मिथ्याभिमान के प्रमाण स्वरूप हैं। जब आत्मपा उसके घर प्रथम बार आयी थी तभी से उसने जमींदारी, बैंक के रुपये और घर अथ के बारे में मूठा विवरण प्रस्तुत कर दिया था।

अपने मिथ्याभिमान को बनाये रखने के लिए और आडम्बर प्रिय होने के कारण वह हमेशा वास्तविकता से अपने को दूर रखना चाहता है। रमानाथ का निश्चय नहीं है कि किस क्षण अपनी मानसिक सुरक्षा के लिए कौन सा मूठ कब थोस देगा। वह माता, पिता, मित्र, पत्नी यहाँ तक की देवीदेवता जैसे पवित्र हृदय के सम्मुख भी वास्तविकता नहीं रखता है। 'आत्मपा जो उसकी जीवन-संगिनी है और उसके सुख-दुख को समझने वाली भरोसीय मारी है उसके साथ भी समझौता नहीं कर पाता। इसी दुर्गुण ने उसके व्यक्तित्व को दूसरी बिरा में मोड़ दिया। यदि वह आत्मपा से मूठ न थोसता या गहने की बारी न करनी पड़ती लोगों की दृष्टि में गिरना न पड़ता पर छोड़ कर भ्रमना न पड़ता और उसका जीवन ही कुछ दूसरा होता।

।। ।

रमा के मूठ थोसने की प्रवृत्ति का कारण वह मध्यवर्गीय सामाजिक संगठन है जिसमें सम्मान रक्षा के लिए अपने को वास्तविकता से अधिक बताना पड़ता है।

रमानाथ उपन्यास का बहुत ही सुन्दर मनोवैज्ञानिक चरित्र है। भीतर का अन्तर्द्वन्द्व ही उसके चरित्र को निरकारता है वह जीवन और वास्तविकता

को संवेद की दृष्टि से देखता है। कलकत्ते में जब पुलिस उसका पीछा करती है तो वह संशय से भर उठता है और अपनी संकल्प प्रकृति के कारण ही पुलिस के हाथों कैद होता है। रमा का चरित्र एक कायर का चरित्र है जिसके पास न तो साहस है और न शक्ति। खगता है किसी अज्ञात मानसिक प्रेरणा से उसका व्यवहार भागे पड़ता है। उपन्यास के अन्त में दूबते हुए प्राणियों की प्राण रक्षा के लिए रमानाथ तैयार नहीं होता क्योंकि उसमें त्याग की भावना ही नहीं है।

कुछ मिलाकर रमानाथ का चरित्र एक ऐसे कायर युवक का है जिससे व्यक्तित्व में इच्छा-शक्ति के अभाव के कारण परिस्थितियों से छड़ने की शक्ति नहीं है। जीवन से भागकर सुख और शान्ति प्राप्त पनाचबबारी करने की चेष्टा करता है। कभी भी किसी परिस्थिति से समझौता नहीं करना चाहता। विपरीत परिस्थितियों से झड़ने, संघप करने के स्थान पर मुक जाता है और अलग समर्पण कर देता है। पुलिस को साधारण बमकी उसके जीवन में झिपना पड़ा मोड़ का है। परिस्थितियों में छलने के कारण ही वह कलकत्ते भाग जाता। अपनी अस्थिरता के कारण किसी यात्र पर टिक नहीं पाता और ताबनवासी मनोवृत्ति का शीतक है।

रमानाथ परिस्थितियों का दास है। परिस्थितियों के तनाव के कारण ही जीवन को गलत विरा में मोड़ देता है। पूरे उपन्यास में वह अपने को कहीं बेईमान बनने देना नहीं चाहता, परिस्थितियों के हाथ का शिकार बन जाता है जो उसे बेईमान सिद्ध कर देती है। परिस्थितियों का दास इयानाथ की ओर से ही उसे चोरी की प्रेरणा मिलती है। जलपा की बसह से उसे गढ़ने खरीदने पड़ते हैं और मूठे मिथ्या-गीतों को बनाये रखने के लिये सराफे के बीच अपने को गिराना नहीं चाहता, इसके लिये वह प्रयत्न भी करता है। कायालय से हपया पर ले आना उसकी बुरी नियत का प्रतीक नहीं है। अचानक रतन हपया से जाती है और रमानाथ उसे पूरा नहीं कर पाता।

कनक

यह घटना हो कहानी का दूसरा रूप धारण कर लेती है। जब पुलिस दुबारा उसे फँसाने की चेष्टा करती है तब उसकी आँखें सुन्नल जाती हैं और उसमें नयी स्फूर्ति आ जाती है। वह अपनी पुरानी भावनाओं में परिवर्तन ला देता है। और अपने नये निरन्ध्र को बताने के लिए बासपा के पास दीर्घ पत्र का निरन्ध्र कर कहता है "मैंने अब सारा करुणा बिट्टा कर सुनाने से इनकी (बासपा को) इतने कष्ट हुए इसका मुझे खेद है। मेरी बजह पर पर्दा पड़ा हुआ था। स्वार्थ ने मुझे भ्रम कर रखा था प्राणों के मोह ने, कष्टों के भय ने बुद्धि हर ली थी कोई ग्रह सिर पर सवार था। इनके अनुष्ठानों ने उस ग्रह को शान्त कर दिया। शायद दो बार साल के लिए सरकार की मेहसानी खाली पड़े। इसका भय नहीं, खीटा रहा तो फिर भेंट होगी। मेरी पुराइयों को माफ करना और मुझे मूल जाना। तुम भी देखी दादा और दादी मेरे अपराध क्षमा करना। तुम लोगों ने जो मेरे ऊपर दया की है, वह मरते दम तक न भूलूँगा, अगर बीटा सत्यानारा हो गयी। न हीन का हुआ और न दुनियाँ का। बुद्ध भी कह देता कि उसके गहने मैंने चुराये सराफे को देने के लिए रुपये न थे। गहने लौटाना बरुतो या। इसलिये यह कुकर्म करना पड़ा। उसी का फल आज तक भोग रहा हूँ और शायद जब तक प्राण न निकल आयेगे, भोगता रहूँगा। अगर उसी बच सफाई से सारी कमा कर बी होती, तो चाहे उस बच इन्हें पुरा लगता। लेकिन यह विपत्ति सिर पर न आती। तुम्हें मैंने घोसा दिया था, दादा। मैं प्राण्य नहीं हूँ। कायस्थ हूँ। तुम और देवता से मैंने कपट किया। न जाने इसका क्या दंड मिलेगा। सब कुछ करना। वस, यही कहने आया था।"

रमानाथ की आत्मा शुद्ध एवं हृदय पवित्र है, लेकिन उसमें इच्छा का इतना अभाव है कि परिस्थितियों के सम्मुख बिचरा हो जाता परिस्थितियों उसको गलत दिशा की ओर मोड़ देती हैं और निरन्तर चलती हैं।

'देवीदीन'

देवीदीन का चरित्र इस उपन्यास का सबसे अधिक प्रभावशाली स्राष्ट्र चरित्र है। हृदय की विशालता, मानव प्रेम, एवं परोपकार की भावना उसके आधारों चरित्र हैं जो उसे निम्न वर्ग का होते हुए भी आधारों के घराबल पर खड़ा करते हैं। देवीदीन समाज का एक आगदक व्यक्तित्व है जिसको सामाजिक तथ्यों का अनुभव है।

देवीदीन शक्ति का स्रष्टिक है उसकी पत्नी का नाम जगो है, बुद्धिया सुकान पछाठी है और देवीदीन भी उसके साथ काम करता है, पति पत्नी दोनों का जीवन सरल और निष्कपट है और दोनों में अपूर्व प्रेम है। देवीदीन शिक्षित नहीं है फिर भी शिक्षा के प्रति उसके मन में आधार की भावना है। जीवन और राजनीति दोनों के सम्बन्ध में पर्याप्त-ज्ञान एवं अनुभव रखता है। धृष्टावस्था में भी पढ़ने की ओर उसकी अभिरुचि जागरित होती है और रमानायक ऐसे व्यक्ति को पाकर उसकी इस अभिरुचि और वल मिलता है। देवीदीन के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—'धोड़ी-सी हिन्दी जानता था बैठा-बैठा रामायण, तोता मैना रामलीला या माता मरीचम की कहानी पढ़ा करता था। जब से रमा आ गया है वृद्धे को अमेजी पढ़ने का शौक हो गया है। सवेरे ही प्राईमर लेखर बैठ जाता और मौ इस बजे तक अक्षर पढ़ता रहता।''

देवीदीन स्वभाव से उन्मुक्त और जीवन में हृषि लेनेवाला व्यक्ति है। हास्य छपन्न करने के लिये अपनी पत्नी के सम्बन्ध में कहता है—'बुद्धिया भी बीवी है। देखें हम दोनों में पहले कौन बलता है ? वह कहती है कि पहले मैं आऊँगी, मैं कहता हूँ पहले मैं आऊँगा। देखो किसकी टेक रहती है।'' इसके अलावा भी कई प्रसंग हैं जहाँ हास्य की सृष्टि करता हुआ व्यक्त होता है। देवीदीन की हास्यप्रियता के संबंध में प्रेमचन्दजी लिखते हैं—'वह दिल खोलकर हँसता है और जिन्दगी की असंगतियों को अपनी पत्नी निगाह से देखकर वह हँसी की धोड़ा-सी सामग्री भी हास्य से नहीं जाने देता।''

देवीदीन अंगरेजी का मजाक उड़ते हुए रमानायक से कहता है—'भैया तुम्हारी अंगरेजी बड़ी बिकट है। एस-आई-आर 'सर' होता है तो पी-आई-

टी 'पिट' क्यों हो जाता है। 'किस दिन प्राईमर खतम होगी, महावीर जी को सवासेर लड्डू चढ़ाऊँगा। पराई-मर का मतलब है, पराई स्त्री मर पाय। मैं कहता हूँ, हमारी मर, पराई मरने से क्या सुख ?"

देवीदीन मानव के सुख दुःख की समान अनुभूति रखता है। मानवता के प्रति उसके मन में अपार सहानुभूति है। स्नेह और मानवता के कारण ही वह रमा की ओर उन्मुख होता है और अपने घर नज़े आता है। जब तब रमानाय को जगो का पुत्र स्नेह नहीं प्राप्त होता तब तक देवीदीन परायर रमा के सुख दुःख का क्याज्ञ रखता है।

देवीदीन का चरित्र एक निर्भीक का चरित्र है। वह दूसरों के विचारों से, या धमकियों से डरने और झुकनेवाला व्यक्ति नहीं है। जब रमानाय उसके यहाँ आकर रुकता है तो वह जानता है कि रमानाय के साथ गवन का कर्त्तक जुड़ा हुआ है फिर भी वह इसको धरा नहीं मानता है। यह स्पष्ट शब्दों में कहता है "किसी परदेशी को अपने घर में ठहराना पाप नहीं है। हमें क्या मास्म किसके पीछे पुजिस है। यह पुजिस का काम है पुजिस आने। मैं पुजिस का मुखमिर नहीं, गोइन्दा नहीं। पुजिस के सम्मने भी देवीदीन निर्भीकता पूरक बातें करता है। जब रमा को झुझाने के लिये तपस्या लेकर दुरोगा के यहाँ पहुँचा, तो दुरोगा ने कहा कि रमानाय चढ़े साहब के यहाँ चला गया। यह सुनकर देवीदीन की भौंके तिरछी हो गई। योसा— "दुरोगा जी, मर्दों की एक बात होती है, मैं तो यही जानता हूँ। मैं रुपये आप के हुकम से लाया हूँ। आपको अपना कौल पूरा करना पड़ेगा। कूह के मुँह आना नीचों का काम है।" सचमुच पुजिस के सम्मुख इस प्रकार की बाली में उत्तर देना देवीदीन का निर्भीक व्यक्तित्व का चोखक है।

देवीदीन निम्नवर्ग का होते, हुये भी मानवीय लक्षणसम आदर्शों का प्रतीक, राष्ट्रीय विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करनेवाला उपन्यास का सबसे प्रभावशाली, जीवंत सरास गठरील और जागरूक पात्र है।

देवीदीन राष्ट्रीय विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करता है। दश-प्रेम के नाम पर वह अपने दोनों बेटों को अलग कर देता है। अपने बेटों के बलिदान की कदानी रमानाय से इस प्रकार व्यक्त करता है। "भीड़ लग गई गारे उनपर पीड़े चढ़ा लेते थे पर दोनों चट्टान की तरह बट लड़ें थे

आसिर खच इस तरह कुछ पस म बसा तो सबों ने बड़ों से पीटना शुरू किया। “दोनों को छोड़ने ने बठाकर अस्पताल भेजा। उस रात को दोनों सिधार गये, तुम्हारे चरण छूकर कहता हूँ, भैया, उस बच्चे का जल पड़ता था कि मेरी छाती गजमर की हो गई है, पाँव बमीन पर न पड़ते थे। यह दर्दग छाती थी मगवान ने औरों को पहले न छठा किया होता तो इस समय उन्हें भी भेज देता।” इतना बड़ा त्याग करते आत्मगौरव का अनुभव करने वाला व्यक्ति देवीदीन ही है।

वह स्वदेशी आन्दोलन का पक्का समर्थक है। अपने घर के लिये रुपये यहाँ तक की रोख के व्यवहार के लिये दियासलाई भी विदेशी नहीं खरीदता। देवीदीन देश और देश की वस्तुओं का पक्का समर्थक है। वह जानता है कि विदेशी वस्तुओं को खरीदने पर देश का रूपया बाहर जाता है और देश गरीब होता है। वह एक देश भक्त है, वह किसी कीमत पर देश को गरीब नहीं होने देना चाहता। अब रमानाय के लिये वह रुपये से आता है तो रमानाय के पूछने पर देवीदीन कहता है—“इधर बीस साल तो रुपये विदेशी नहीं लिये, उस की बात नहीं कहता। कुछ बेसी दम लग जाता है पर रूपया तो देश में ही रह जाता है।-----अस देश में हम रहते हैं जिसका अन्न-अन्न खाते हैं उसके लिये इतना भी न करें तो जीने को धिक्कार है।”

देवीदीन देश भक्ति की ओट में दिलावेपन का कड़ा विरोधी है। वह चाहता कि देशभक्तों और देश की अन्नता को ईमानदार होना चाहिये। वह कहता है—“उम थड़े-थड़े आश्चर्यों के लिये कुछ न होगा। इन्हें बस रोना आता है। छोट्टरियों की भाँति पिसूरने के सिवाय इनसे और कुछ नहीं हो सकता। थड़े-थड़े देश भक्तों को बिना विज्ञाप्यती शराब के चैन नहीं आता। इनके घर में जाकर देखो एक भी देशी चीज न मिलेगी। सबके सब भोग विज्ञाप्यती में अन्धे हो रहे हैं। बसपर दावा यह है कि देश का बहार करेंगे। मरे तुम देश का क्या बहार करोगे। पहले अपना बहार कर लो।—हाँ रामे आभा, विज्ञाप्यती शराब बड़ाभो आभा, विज्ञाप्यती मुरखे अभाए अन्धो विज्ञाप्यती दबाइया पीया, पर देश के नाम को रोबे आभा।” देवीदीन केवल स्वदेशी

आन्दोलन में ही सर्वस्व निदालकर कर के चुप नहीं बैठता। मबिष्य के प्रति भी वह आतंक है। वह चाहता है देश सेवा की भावना व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये नहीं होना चाहिये। देश-प्रेम हमारा कर्तव्य है। वह चाहता है कि देश की स्वतंत्रता के बाद शोषण का युग समाप्त हो जाना चाहिये और सब के प्रति समाजिक न्याय की भावना होनी चाहिये। उस समय के सफेद पोरु नेताओं का चित्र खिचते हुये देखीवीन चढ़ता है —

‘एक बार यहाँ मारी बलसा हुआ। एक साइब बहादुर लड़े होकर खूब छल्ले फूरे। जब वह नीचे आये तो मैंने पूछा — “साइब सब बतानो, जब तुम सुराज का नाम सुन लेते हो उसका कौन सा रूप तुम्हारे सामने आता है तुम भी अप्रेमों की तरह बड़ी वसवें लोगे ? तुम भी अप्रेमों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों को हवा द्याओगे, अप्रेमों ठाठ बनाये पूसोग। इस सुराज से देश का कल्याण क्या होगा ? तुम्हारी और तुम्हारे भाई बन्दों की जिन्दगी मज्जे हो आराम और ठाठ से गुजरे पर देश को तो कोई फायदा न होगा। तुम दिन में बार बार स्नाना चाहते हो और बह भी बढ़िया मास। गरीब किसान को एक जून लट्टा खबेना भी नहीं मिलता। उसका रक्त घूस करके सरकार तुम्हें दूरे देती है। तुम्हारा प्यान कमी ऊनकी ओर जाता है। अभी तुम्हारा राज्य नहीं है, अब तो तुम भोग विहास पर इतना मरते हो, जब तुम्हारा राज ही आयगा, तब तो तुम गरीबों को पीस कर पी द्याओगे ?”

रतन

रतन भारतीय मारी समाज की एक मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक समस्या है। भारतीय समाज में अबत्या का बिना बिचार किये हुए ही पति को सर्वस्व मानकर गृहिणी का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। पति ही उसका सबसे मित्र है, पति के सुख के साथ सुख और दुःख के साथ दुःख व्यक्त करना पड़ता है। रतन ६० वर्षीय वृद्ध इन्दुमूषण की नवयुवती स्त्री है। इन्दुमूषण ऐडबोकेट हैं, धन पैसव से सम्पन्न फिन्तु शरीर से अस्वस्थ और बीमार रहने वाले व्यक्ति हैं। इस अबत्या में रतन के साथ शान्ति हाँथी

है और रतन बुधघाप मीन भाव से जिनगी को भागे लेकर बढ़ती है। वह भारतीय गृहिणी का रूप लेकर अस्पृश्य होती है। पति की प्रसन्नता और पति का सुख ही उसके जीवन का आधार है। जब जातपा रतन से उनके सम्बन्ध में पूछती है तो रतन कहती है—“मुझे तो कमी क्या ही नहीं आया यह न ⁵ में नवयुवती हूँ, और वे बड़े। मेरे हृदय में जितना प्रेम है, जितना अनुराग है, वह सब उनके ऊपर अर्पण कर दिया। अनुराग जीवन या रूप या धन से व्यपन्न नहीं होता। मेरे ही कारण वे इस अवस्था में इतना परिभ्रम कर रहे हैं और दूसरा है ही कौन। क्या यह छोटी बात है ?” रतन पति सेवा में सदैव अनुरक्त रहती हैं। वकील साहय को चिन्ता से उसके हृदय सदैव दुखी रहता। उनको बोमार बेसकर कहती है—“अगर कोई मेरा सबस्व लेकर भी इहे अच्छा कर दे कि इस बीमारी की जड़ टूट जाय तो मैं झुरी से दे दूंगी।”

रतन उच्च मध्य वर्ग की नारी है। जालपा की भाँति वह भी आभूषण प्रिय है। जालपा के गहनों को देखकर रतन भी नये कंगन बनवाती है। जब जालपा रतन को कंगन देती है तो रतन कहती है—“इसे तुम्हारी निरानी समझूंगी बहुत दिनों के बाद मेरे मन की अभिज्ञापा पूरी हुई।” रतन की आभूषणप्रियता का दूसरा पियत्र वह है जब वकील साहय थोक काटकर द्वार रख छेनेके लिये कहते हैं। “द्वार प्राप्त हो जाने पर रतन का मुँह गव और श्लास से भर पड़ा। मानो उसे संसार की सम्पत्ति मिल गई हो।”

रतन एक सहृदय नारी है। जालपा को हर प्रकार से सहायता करती है और मैत्री निर्वाह की चेष्टा करती है। जालपा के घर जाने जाने में उसे कोई संकोच नहीं। मैत्री को वह स्वाभाविक आकृषण समझती है जो त्याग पर आधारित होता है। एक स्थान पर यह जालपा से कहती है—“मैत्रा परिस्थितियों का विचार नहीं करती है अगर यही विचार बना रहे तो समझ लो मैत्री है भी नहीं। मैंने तो यही समझा था कि तुम्हारे साथ जीवन के शेष जीवन काट दूँ। लेकिन तुम अभी से चेतवनी दिये देती हो।”

रतन के हृदय में भारतीय-समाज में विद्यबा के प्रति होने वाले अन्याय के प्रति अत्यंत असंतोष की भावना है। अपने भतीजे मणिभूषण द्वारा

ठिरसूँठ होने और सम्पत्ति का वितरण ठीक से न होने के सम्बन्ध में रतन यह भावना प्रकट करती है—“...म जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था। अगर ईश्वर कहीं है और उसके यहाँ कोई न्याय होता है, तो एक दिन उसी के सामने उस पापी से पूछूँगी, क्या तेरे घर में माँ सहने न थी? तुम्हें उसका अपमान करते-सबका न आई? अगर मेरी अवान में इतनी शक्ति होती कि सारे देश में उसकी आवाज पहुँचती, तो सप रिश्यों से कहती—सहनों किसी सम्मिश्रित परिवार में बिबाह मत करना और अगर करना, तो जब तक अपना घर अलग न बनाओ, यौन की नींद मत साना।

“परिवार तुम्हारे लिये फूल की सेख नहीं, काँटों की शय्या है, तुम्हें पार छगाने वाली सीका नहीं। तुम्हें निगल जाने का बन्दू है।”

कुछ मिछा करके रतन का चरित्र पवित्र, सरल, परोपकारी एवं प्रतिभवा होते थे भी एक मनोवैज्ञानिक और समाजिक समस्या की ओर संकेत करता है। जना रतन की कथा के भी उपन्यास का घटना क्रम अभी यह सकता था कि उपन्यासकार को नारी जीवन के मनोबिज्ञान से परिचय कराना था। उस का नवयुवती जीवन सचमुच अपने में एक पुनी हुई समस्या है। मीतर। दृष्टक भी बाहर से हर प्रकार से समझीता करती है और आत्मा रूप प्रस्थित करती है। केवल के प्रति अत्यधिक श्रुकाव होना, बच्चों के साथ हला भूकना ये सारे कार्य उसकी मनोवैज्ञानिक भूख को पूरी करते हैं। [सरी और उपन्यासकार वैभव्य जीवन की वैन्यता और क्लेश को भी व्यक्त करता है। मयिमूपय की सृष्टि केवल इसी को दिखाने के लिये की गई है।

जोहरा

जोहरा का चरित्र नारी जीवन की समस्या के रूप में चित्रित है। चरित्र की दृष्टि से जोहरा का चरित्र अपना अलग महत्व रखता है। यह एक बेरस मार्ग के रूप में आती है किन्तु अपने हृदयगत परिवर्तन के कारण आत्मा चरित्र को सृष्टि करती है—जोहरा का चरित्र नारी-जीवन की बिबशवा क पित्र है।

जोहरा सर्व प्रथम एक बेरया के रूप में आती है। जो पुलिस के द्वारा रमानाय को बहलाने के लिये नियुक्त की जाती है। लेकिन जोहरा भी नारी का हृदय रखती है वह रमानाय की सरलता के प्रति आकर्षित होकर उसका विश्वास प्राप्त करना चाहती है। जोहरा को आत्मिणी की वही सूत्रम-परल है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी कहते हैं—“जोहरा बेरया थी उसे भण्डे घुरे सभी तरह के आत्मियों से साविका पड़ चुका था। उसकी आँसों में आत्मियों की परल थी।”

पुरुषों को बेरया समाज के प्रति क्या दृष्टि है जोहरा कहती है—“इकीक्य पद है कि जहाँ आप लोग बिल बहलाव के लिये आते है, जहाँ महज, गम रखन करने के लिये, महज आनन्द बठाने के लिये जब आप को बफा की तसारा ही नहीं, तो वह मिके क्योंकर ? लेकिन मैं इतना जानती हूँ कि हम जितनी बेचारियों जहाँ की बेवफाई से अपना आत्मा बिन को बैठती है, उनका पता अगर दुनियाँ को चले तो आँसुं सुझ जाय। यह हमारी भूख है कि तसाराबिन से बफा चाहते है, चीस के पोसले में माँस बूँदते हैं। पर प्यासा आत्मी दुँप की तरफ दौड़े तो मेरे क्यास में उसका कोई क्मूर नहीं।”

जोहरा के हृदय में नारी-श्रवण और क्रमसुता की भावना है जब तक उसके जीवन में कोई नहीं आया था, तब तक वह विवरा थी किन्तु फिर भी वह नारी का जो सुसह प्रेमल जीवन होता है उस रंग का जीवन चाहती है। रमा को पाकर वह हृदय नारी बनने की चेष्टा करती है। रमा के प्रति आकर्षित होकर अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त करती है। जोहरा के प्रणय जीवन का बिलोपण करते हुए प्रेमचन्द जी लिखते हैं—“रमा में और सब दोष हों, पर अनुराग था। इस जीवन में जोहरा को यह पहिला आत्मी मिला था जिसके बसके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया था। जिसने उससे कोई पर्दा न रखा। ऐसे अनुराग रत्न का वह दोना न चाहती थी।” इस प्रकार जोहरा रमानाय के प्रति अपनी प्रेम की एकीमुलता का परिचय देती है।

जोहरा केवल प्रेम की भूली थी। वह आत्मा के प्रति सम्मान की भावना रखती है।

अन्त में जोहरा अपना जीवन परिचरित कर एक स्वाभाविक जीवन स्थापित करती है। जहाँ उसके नारी हृदय की कल्याण और सेवा भावना का

परिचय मिलता है। रमा और देवीवीन के साथ ही वह भी कलकत्ता छोड़कर प्रयाग चली जाती है। यहाँ आकर रघन के प्रति अपनी सेवा भावना व्यक्त करती है।

जोहरा के जीवन का अन्त उसके त्याग भावना को और भी ऊँचा उठा देता है और पाठक के मन पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ जाता है। एक बार जब बाइ का आनन्द खेने के लिये तट पर तमाशा देखा रही थी कि गंगा में एक किरती उसको निगाहों के सामने उभर आती है। एक स्त्री जिसकी गोद में बच्चा था वह भी यह आती है। जोहरा उनको बचाने के लिये नदी में कूद पड़ती है किन्तु दूसरी ओर आकर जोहरा को आगे की ओर खींच ले जाती है। इस प्रकार जोहरा अपने जीवन का अन्त कर देती है।

जोहरा के परिवर्तित जीवन के सम्बन्ध में प्रेमपद जो लिखते हैं—
 “इन चार साक्षों में जोहरा ने अपनी सेवा, आत्मत्याग, सरस स्वभाव से सभी को मुग्ध कर लिया था। अपने अतीत को मिटाने के लिये, अपने पिछले दुःखों को धो डालने के लिये उसके पास इसके सिवाय और क्या साधन था। उसकी सारी कामनायें सारी वासनायें सेवा में झीन हो गईं। कलकत्ते में वह बिलास और मनोरंजन की वस्तु थी।……यहाँ सभी उसके अपने साथ प्राणी का सा व्यवहार करते थे। दयानाथ रामेश्वरी को यह कर शान्त कर दिया करता था कि देवीवीन की बिधवा यह है। जोहरा ने कलकत्ते में आश्रय से केवल रहने की भिन्ना भाँगी थी। उसे अपने जीवन से पूजा हो गई थी। आश्रय के विरासतमय उदारता ने उसे आत्म श्रद्धि के पथ पर डाल दिया, रघन का पवित्र निष्काम जीवन उसे प्रेरणाहित किया करता था।”

जग्गो

जग्गो निम्न वर्ग की एक साधारण स्त्री है जिसमें दया और करुणा की भावना है। पति को प्रेम और रमानाय को पुत्र-सा स्नेह देती है। रमानाय के प्रति जब देवीवीन परायेपन की बात करता है तो जग्गो उसके बात को खोकार नहीं करती। जग्गो के हृदय की विरासत के सम्बन्ध में रमानाय कहता है—“कितना पावन प्ये है कितनी विरासत बत्सलता जिसने इन

ककड़ी के इन दो टुकड़ों को भी जीवन्त प्रदान कर दिया है। रमा ने खमो-
का माया-सोम, मैं बूबो हूँ, ऐसे पर आन देने वाली कोमल भावनाओं से
सतया बिह्वोन समझ रखा है। आज वह समझ सका कि उसका हृदय
कितना स्नेहमय, कितना कोमल, कितना मनस्वी है।”

अगो एक परिभ्रमी औरत है। अगो कहती है—“घड़ी पहर
रात से चकड़ी में जुट जाती हूँ और उस वजे रात तक वृक्षन में सती होती
रहती हूँ। खाते पीते १२ घण्टे हैं उस चकड़ी चक्र ऐसे दिखाई देते हैं। अगो
ऐसी गृहिणी है जो पर का पूरा संवासन समाप्ते हुये है।” देवीदीन कुछ
नहीं करता। पर का धारा उत्तरदायित्व और बोध अगो ही सम्भाले
हुये है इसके लिये उसे घोर परिभ्रम करना पड़ता है। देवीदीन इसमें साथ
नहीं देता। देवीदीन के मझे-पानी के सम्बन्ध में वह कहती है। “दूसरो औरत
होती तो घड़ी भर निबाह न होता। “जो कुछ कहाती हूँ वह भरो में
परबाध कर देता है। कभी एकध चीज बच्य बनवा लेती हूँ ता वह भाँलों में
गड़ने लगती है। तानों से छेदन लगता है।” इसके पत्यशुद भी देवीदीन
के दुःख मुझ की संगिनी है। देवीदीन की सेवा से कभी भी बिरत नहीं
होती। पति के प्रति उसके हृदय में स्वाभाविक सम्मान है किन्तु अब कभी वह
देवीदीन को मिलाकती है ता यह उसके आतिगत संस्कार को व्यक्त करता है।

अगो का हृदय माता का वह विरासत हृदय है, जिसमें पुत्रों के लिये
असीम स्नेह का सागर समझता रहता है। अपने दोनों पेटों की मूसु के धर
भी वह फनकी स्मृति समोये हुये हैं। वह कहती है—“मुझ भोगना झिला
होता, जो जवान बेटे बल देते, और इस पीपलड़ के हाथों मेरी यह साँस
होती इस ने सुदेरी के मगड़ों में पड़ कर मेरे लाल को खान ली। आगो
इस कोठरी में माई तुम्हें सुन्दर की सोड़ी दिलाई, दोनों इस सोड़ी क
पाँच-पाँच सी हाथ फेरत थे। यह जोड़ी मेरे लालों को जुगल जोड़ी है।
यही दोनों मेरे लाल है।” अगो के मातृ-हृदय को विरासतता का परिचय
अब मिलता है अब रमानाथ उसे अम्मा कहने का निरपय करता है। अब

“दुनियाँ के झुंझक ज्योतिहीन, ठंडे कृमण नेत्रों में मोती के से दो बिन्दु निकल पड़े “इसके हृदय में संचित सम्पूर्ण प्रेम माता के स्तन में एकत्र होने वाले रूच की भाँति बाहर निकलने के लिये आसुर हो उठा।” जगो के माए हृदय का परिभय तप मिस्रता है जब जालपा, रमा के सम्बन्ध में घुरा भला कहती है तो जगो खालपा को समझती है। “तुम्हें इतना बेलागाम न होना चाहिये या, वह। दिख पर चोट लागती है, तो आइमी को कुछ नहीं समझता।”

जगो का हृदय पुत्र वत्सल है। वह यह नहीं चाहती कि इसका पुत्र कोई ऐसा काम करे जो असम्मानजनक हो, और घुरा हो। वह सम्मान, न्याय और हृदय की पवित्रता चाहती है। भय रमानाथ पुलिस की ओर से प्राप्त सोने को चार चूड़ियों को प्रसन्न करने के लिये छाता है ता यह पिगड़ जाती है और जमीन पर पटककर कहती है—“महाँ इतना पाप समा सकता है, वहाँ चार चूड़ियों की जगह नहीं है? भगवान की दया से बहुत चूड़ियाँ पहन चुकी और अब भी सेर दा सेर सोना पड़ा होगा लेकिन जो स्त्रिया, पहना अपनी मिहनत की कमाई से, किसी का गला नहीं बंधाया। पाप की गठरी सिर पर नहीं लायी, नीयत नहीं पिगाड़ी। उस कोख को आग जगो जिसने हुम जैसे कपूत को धन्म दिया। अगर तुम मेरे सड़के होते तो तुम्हें मार दे देती।”

जगो के हृदय में माता की ममता और सरसता है। जीवन के प्रति ईमानदारी है। वह घोर परिभमी स्त्री है जिसे अपने परिभम आर हृदय की पवित्रता पर पूरा-पूरा विरवास है।

दयानाय

दयानाथ मध्यवर्गीय परिवार के गृह स्वामी के रूप में आवे हैं जो हृदय से निष्कपट और सरस हैं। रिरवत के खिलाफ हैं। वे नहीं चाहते कि रिरवत से कमो भी एक पैसा घर में आवे। रिरवत के सम्बन्ध में एक घार वह रमानाथ से कहते हैं—“मैं कमो भी एक पैसा हराम का नहीं लिया। तुममें वह आदत कहाँ से आ गई यह मेरे समझ में नहीं आता।” दयानाथ के

सम्बन्ध में प्रेमबन्ध जो लिखते हैं “बहते तो हजारों बसूख करते, पर कमी एक पैसे के भी रबादार नहीं हुए थे।.....यह बात भी न थी कि वह बहुत ठेके आदर्श के आदमी हों, रिरवत को हराम समझते थे। राायव इसप्रिये कि वह अपनी आँखों से इसके कुम्हार देख चुके थे। किसी को जेल जाते देखा था। किसी को सन्तान से हाथ धोते, किसी को कुम्हारों के पैरों में फँसते। उन्हें कोई मिसाल न मिलती थी, जिसने रिरवत लेकर पैर की हो। उनकी यह धारणा हो गई थी कि हराम की बसाई हराम में जाती है। यह बात वह कमी न भूलते।”

दयानाथ का जीवन एक सामान्य मार्गिक का जीवन है जो ईमानदारी में बिरवास करते हैं फिर भी मध्यवर्गीय परिवार की शिक्षावेपन की दुर्बलता से ग्रस्त हैं। रमानाथ की शादी में कई झेकर खर्च करना, आसपा के गहनों को वापस लेने की रमानाथ को प्रेरणा देना दयानाथ के पारिवारिक दुर्बलता का चोटक है। दयानाथ के कारण रमानाथ एक गलत दिशा में मुड़ जाता है। इससे दयानाथ की विवेक शून्यता का परिचय मिलता है।

रमेश

रमेश रमानाथ का मित्र, स्वभाव से रसीक और शरद्वर का लिखाड़ी है। वह एक सामान्य बसूके है जिसका जीवन एकरस है जसमें किसी विशेष उदार बड़ाव का प्ररन नहीं है। रमेश रिरवत के सम्बन्ध में अपना बिचार रखता है। इस सम्बन्ध में रमेश कहता है—“जिस पर मैं बहुत आदमी हों वह आदमी क्या कर सकता है। जब तक छोटे आदमियों का बेटन इतना न हो जायगा कि वह महात्माजी के साथ निबाँह कर सकें तब तक रिरवत धन्द न होगी। यह रोटी दाख, धी, बूध तो वह भी खाते हैं फिर एक को ३० रुपये दूसरे को ३०० रुपये क्यों देते हो ?”

रमेश कद का विरोधी है। रमा को कद न लेने की शिक्षा देता है। “कद से बड़ा दूसरा पाप नहीं। न इससे बड़ी बिपत्ति दूसरी है। बहाँ

एक बार बड़का सुझा कि मुम ध्याये दिन सर्राफ की दुकान पर नजर आओगे। मविष्य के भरोसे पर चह्ने ओ काम करो पर कब कमी मत सो।”

रमेश मिश्रता के सम्बन्ध में थरा है और मिश्रता में लेन-देन का कड़ा विरोधी है। यह रमानाथ से फहता है—“मैं ने अपने जीवन में दो बार नियम बना खिये हैं और फठोरता से उसका पालन करवा हूँ उनमें से एक नियम यह भी है कि मिश्रों से लेन-देन का व्यवहार न कर्ह्या। मिश्रों से लेन-देन शुरु हुआ कि वहाँ मन मुटाप होते देर नहीं लगती।”

कथोपकथन

कथोपकथन उपन्यास का वह आवरयक तत्व है जो पात्रों के चरित्र का खूपाटन करता है और कथावस्तु के प्रवाह तथा विकास में सहायक होता है। कथोपकथन के द्वारा ही पात्रों का चरित्र बनता है और कथा के विकास में सहायता मिलती है।

कथोपकथन के माध्यम से ब्यक्ति के स्वभाव, विचार, रुचि, देशकास एवं वतावरण का पता चलता है। उसके द्वारा ब्यक्त शब्दावली एवं प्रवाह ही उसके चरित्र का खूमाटन करती है। बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो पात्र-विशेष के मुँह से अच्छी नहीं लगती और चरित्र के स्वर तथा प्रभाव को कम कर देती हैं।

अतः कथोपकथन स्वामाविक्र पात्र एवं परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिए। कथोपकथन की यही उपयुक्तता होती है। जहाँ कथोपकथन स्वामाविक्रता छाक देता है, यहाँ कथानक में शिथिलता आजती है।

कथोपकथन के अन्तर्गत शब्दों का संगठन एवं बाल्य योजना ही महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद की कथोपकथन के माध्यम से घटनाओं एवं परिस्थितियों का सुन्दर चित्र बपरिचित करते हैं। बाल्य योजना सुगठित एवं पात्रों के अनुकूल है। हाँ, कहीं-कहीं संवाद खम्बे अवरय हो गये हैं, जो रटकरते हैं। देवीदीन के खम्बे ब्याख्यान कथानक में शिथिलता एवं प्रवाह में कमी

अवश्य लाते हैं, किन्तु वही जयों के सम्बन्ध कथोपकथन स्वाभाविक एक प्रमाण कान्ति मी है।

कथोपकथन की स्वाभाविकता एवं पात्रों के अनुकूल भाषा की अनुकूलता निम्न स्थलों पर देखा जा सकती है। आशुनाथी हाथी के दंत चन्द्रहार के सम्बन्ध में श्रीरतों की बातें हाथी हैं वो निर्गत स्वभाविक है—

“इसी तरह एक-एक बीज की बालोचना होती रही। सद्सा किसी ने कहा—चन्द्रहार नहीं है क्या ?

मानकी ने रानी मूरुष बनाकर कहा—नहीं, चन्द्रहार नहीं था। एक महिला बोली—अरे, चन्द्रहार नहीं था।

दीनद्वाल ने गम्भीर भाव से कहा—श्रीर सभी बीजों तो हैं, एक चन्द्रहार ही वो नहीं है।

उसी महिला ने मुँह बनाकर कहा—चन्द्रहार की बात श्रीर है।

मानकी ने बहाव को सामने से हटा कर कहा—बेपत्नी के भाग्य में चन्द्रहार लिखा ही नहीं है।

×

×

×

पति-पत्नी के बीच किन्तु समीप एवं प्रेमल वाक्यों का प्रयोग होता है— इसका उदाहरण देखिये—

“आसपा ने छठकर पूछा—पोटली में क्या है ?

रमा०—बूझ जाओ तो जानूँ।

आसपा—हँसोका गोलगप्पा (कूटकर हँसने लगी।)

रमा०—गलत।

आसपा—नींद की गठरी होगी ?

रमा०—गलत।

आसपा—तो प्रेमकी पिटाही होगी।

रमानाय—ठोक। आज मैं तुम्हें पूछों की देखी बनाऊँगा।”

×

×

×

दोस्तों के बीच क्विनी खुसकर बातें होती हैं—किसी प्रकार का बंधन ही, क्विनी स्वामाधिकार है—

“रमा का फर्जी पिट गया, रमेरा बाबू ने बड़े खोर से कूट कूटा मारा। रमा ने रोप के साथ कहा—अगर आप बपचाप खेसते हैं तो खेसिये, नहीं तो मैं जाता हूँ। मुझे बालों में लगाकर सारे मुद्दरे उड़ा लिये।

रमेरा—अच्छा साह्य, अब बोहूँ तो अयान पकड़ लीजिये यह लीजिये शाय। तुम कल बर्जी दे दो। उम्मेद तो है, तुम्हें यह जगह मिल जायेगी, मगर जिस दिन जगह मिले, मेरे साथ रात भर खेसना होगा।

रमा—आप तो दो ही मातों में रोने लगते हैं।
रमेरा—अजी, वह बिन कूट गये, अब आप मुझे मात दिया करते थे। आजकल बन्त्रमा बलवान है। इधर मैंने एक मंत्र सिद्ध किया है। क्या मनाऊ कि कोई मात दे सके। फिर शाय।

रमा—जी तो चाहता है, दूसरी बाबी मात देकर जाऊँ, मगर बेर होगी।

रमेरा—बेर क्या होगी। अभी तो नौ बजे हैं। खेल लो, दिल का भर मान निकल आय। यह शाय और मात।

रमा—अच्छा कल की रही। कल ललकार कर पाँच मातें न दी तो कहियेगा।

रमेरा—अभी, आओ भी, तुम मुझे क्या मात दोगे? हिम्मत हो तो अभी सही।”

× × ×
पुलिस का डिप्टी रमानाय से कहता है—“नहीं। आपका वास्तो इससे घुरा दूसरा बात नहीं है। हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुद्दमा पाठे विगड़ आय, जेकिन हम तुमको ऐसा ‘लेसन’ दे दंगा कि उमिर भर न भूलेगा। आपको बही गयाही वेनी होगी जो आप दिया। अगर तुम बुल गइयइ करेगा, बुद्ध भी गोठमाल किया तो हम तो तुम्हारे साथ दोसरा बर्ता करेगा। एक रिपोर्ट में तुमको (कसाइयों को ऊपर नीचे रखकर पसा जायगा।”

भकरय खाते हैं, किन्तु वही जमगे के सम्बन्धे कयोपकथन स्वामाविक एवं प्रमा
कारो मी हैं ।

कयोपकथन की स्वामाविकता एवं पात्रों के अनुकूल भाषा की उपयुक्तता
निम्न स्थलों पर देखा जा सकती है । बाळपा की शादी के बाद चन्द्रहार
के सम्बन्ध में औरतों की बातें होती हैं जो नितांत स्वामाविक है—

“इसी तरह एक-एक बीज की आलोचना होती रही । सहसा किसी ने
कहा—चन्द्रहार नहीं है क्या ?

मानकी ने रानी सूरत बनाकर कहा—नहीं, चन्द्रहार नहीं आया । एक
महिजा पोखी—धरे, चन्द्रहार नहीं आया ।

दीनदयाल ने गन्मीर भाव से कहा—बीर समी बीजें तो हैं, एक चन्द्रहार
ही तो नहीं है ।

उसी महिला ने मुँह बनाकर कहा—चन्द्रहार की बात और है ।

मानकी ने अज्ञाय को सामन से हटा कर कहा—बेचारी के भाग्य में
चन्द्रहार छिपा ही नहीं है ।

×

×

×

पति-परती के बीच किन् सजीव एवं प्रेमल वाक्यों का प्रयोग होता है—
सका स्रष्टरया देखिये—

“बाळपा ने छठकर पूजा—पोटखी में क्या है ?

रमा०—बूझ जाओ तो जानूँ ।

बाळपा—ईसोका गोलगापा (कइकर हँसने लगी ।)

रमा०—गलत ।

बाळपा—सीध की गठरी होगी ?

रमा०—गलत ।

बाळपा—तो प्रेमकी पिढतो होगी ।

रमानाय—ठोक । आज मैं तुम्हें फूलों की बेची बनाऊँगा ।”

×

×

×

दोस्तों के बीच किसनी खुलकर बातें होती हैं—किसी प्रकार का बंधन नहीं, किसनी स्वाभाविकता है—

“रमा का फर्जी पिट गया, रमेरा याबू ने बड़े खोर से कह कहा मारा। रमा ने रोप के साथ कहा—भगर आप बपचाप खेखते हैं तो खेखिये, नहीं तो मैं जाता हूँ। मुझे बातों में लगाकर सारे-मुहरे छका लिये।

रमेरा—अच्छा साहब, अय योखूँ तो अयान पकड़ लीखिये यह लीखिये राय। तुम कल्ल भर्जी दे हो। उम्मेव सो है, तुम्हें यह जगह मिल आवेगी, मगर जिस दिन जगह मिले, मेरे साथ रात भर खेखना होगा।

रमा—आप तो हो ही माताँ में रोने लगते हैं।

रमेरा—अभी, वह दिन कट गये, अब आप मुझे मात दिया करते थे। आजकल बन्दमा बलवान है। इपर मैंने एक मंत्र सिख किया है। क्या ममास कि कोई मात दे सके। फिर राय।

रमा—जी तो चाहता है, दूसरो बाकी मात देकर जाऊँ, मगर देर होगी।

रमेरा—देर क्या होगी। अभी तो नौ घंटे हैं। खेल लो, दिस का अर मान निकल आप। यह राय खोर मात।

रमा—अच्छा कल की रही। कल ललकार कर पाँच मातें न ही तो कहियेगा।

रमेरा—अभी, आबो भी, तुम मुझे क्या मात होंगे? हिम्मत हो तो अभी सही।”

× × ×

पुलिस का बिट्टी रमानाय से कहता है—“नहीं। आपका घाते इससे बुरा दूसरा बात नहीं है। हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकदमा चाहे बिगड़ जाय, लेकिन हम तुमको ऐसा 'लेसन' दे देगा कि उमिर मर न भूलेगा। आपको बही गयाही देनी होगी जो आप दिया। अगर तुम कुछ करेगा, कुछ भी गोलमाल किया तो हम तो तुम्हारे साथ दोसरा बराब करेगा। एक रिपोर्ट में तुमको (कलाश्यों को ऊपर नीचे रखकर) पता जायगा।”

आज्ञापा से अनपढ़ कहार किस प्रकार बातें करता है, उसकी भाषा और शब्दावली देखिये—“कहार अन्दर गया तो आज्ञापा ने पूछा—तुम्हें कुछ काम घन्घे की मी खबर है, कि मटरगखी ही करते रहोगे ? वस बज रहे हैं, और अभी तक तरकारी-भाजी का कहीं पता नहीं।

कहार ने शरारियाँ बड़सकर कहा—तो का चार हाथ-गोड़ कर लई, कामे से तो गया रहिन ! बाबू मेम साहब के तीर रुपया लेखे का भेजिन रहा।

आज्ञापा—कौन मेम साहब ?

कहार—बोन मोटर पर चढ़कर आवत हैं।

आज्ञापा—तो कामे रुपये ?

कहार—कामे कहे सही। पिरभी के छोर पर तो रहत हैं, दौरव-दौरव गोड़ पिराय लाग।”

(पृष्ठ, ११२)

पूरे उपन्यास में देवीवीन के क्योपकथन कहीं-कहीं बहुत खम्बे हो गये हैं। जो क्योपकथन की शायिलता व्यक्त करते हैं। फिर यी खम्बे संवादों में जमो के क्योपकथन प्रभावपूर्ण एवं वातावरण तथा पात्र के अनुकूल हैं। देखिये जमो की एक बातों—“सगो ने बुकियाँ बठाकर अमोन पर पटक वी और भाषों निकालकर बोली—जहाँ इतना पाप समा सकता है वहाँ चार बुकियों की खगह नहीं है ? भगवान की दया से बहुत बुकियाँ पहन चुकी और अब मी सेर दो सेर सोना पड़ा होगा, लेकिन जो खाया, पहना अपनी मिहनत की कमाई से, किसी का गन्ना नहीं दबाया आप की गठरी सिर पर नहीं छाड़ी, नोखत नहीं विगाड़ी। उस कोख में आग आगे जिसने तुम जैसे कपूस को अन्न दिया। वह पाप की कमाई लेकर तुम बहू को देने आये होगे। समझते होगे, तुम्हारे रुपया की पैली देखकर वह झटट हो जायगी। इतने दिन उसके साथ रहकर भी तुम्हारी खोमी आँखें उसे न पहचान सकी। तुम जैसे राकस उस वषी के बोग न थे। अगर अपनी कुत्राल चाहते हो तो इन्ही पैतों वहाँ से आये हो वहाँ खोट नाथो उसके सामने आकर क्यों अपनी पानी उठरवाओगे। तुम आख पुसिस के हार्याँ लछमी होकर मार खाकर आये हाते, तुम्हें सजा हो गयी होती मुम जेहूँ में आख बिये गये होते, तो-बहू तुम्हारी पूजा करतो तुम्हारे चरम धोकर पीती। वह धन बीरवाँ में है चाहे मजूरी करे, उपास करे फटे कीयदे पहने पर किसी की बुराई

नहीं देख सकती। अगर तुम मेरे लड़के होसे तो, तुम्हें खर दे देती। क्यों खदे मुझे बड़ा रहे हो। पहले क्यों नहीं जाते? मैंने तुमसे कुछ ले तो नहीं लिया है?

रमा सिर मुकाये चुपचाप मुनता रहा। तब आइत स्वर में बोला—दादी, मैंने गुराई की ओर इसके लिये मरते दम तक लखित रहूँगा। लेकिन तुम मुझे जितना नीच समझ रही हो, उतना नीच नहीं हूँ। अगर तुम्हें माझम होता कि पुलिस ने मेरे साथ कैसी कैसी सक्रियों की मुझे कैसी-कैसी धमकियाँ दी तो तुम मुझे राक्षस न कहती।”

(गहन-पृष्ठ २०६)

भाषा-शैली

प्रेमचन्द जी के उपन्यास जनसामान्य के जीवन से संबंधित हैं अतः उपन्यासकार ने भाषा भी जनसामान्य के लिए ही रखा है जो सरल प्रवाह युक्त एवं सुषोष हो। प्रेमचन्द जी के उपन्यासों की भाषा जनसामान्य के जीवन की भाषा है जिसमें वे अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं। हिन्दी, उर्दू का मेलकर एक जनसामान्य की भाषा का प्रयोग का सारा श्रेय प्रेमचन्द जी को ही है।

प्रेमचन्द जी की भाषा संघर्षी वेन-युक्त ही महत्व पूरा है। सामान्य बोल चाल की भाषा और साहित्यिक भाषा के संघर्ष में प्रेमचन्द जी स्पष्ट शब्दों का प्रयोग करते हैं कि “यह अरुण सच है कि बोलने की भाषा और लिखने की भाषा में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य रहता है। लेकिन लिखित भाषा सदैव बोल-चाल की भाषा से मिलते जुलते रहने की कोशिश किया करती है। लिखित भाषा की गूँधी यही है कि यह बोल-चाल की भाषा से मिले। इस आदरा से यह जितनी दूर हो जाती है उतनी ही अस्वामाविक हो जाती है।”

प्रेमचन्द जी ने भाषा को सरल एवं बोधगम्य बनाने का प्रयास किया हिन्दी उर्दू मिश्रित भाषा के समर्थक थे। हिन्दू उर्दू मिश्रित शैली ही उनकी अपनी शैली है। इस सम्बन्ध में डॉ० इजारा प्रसाद जी द्विवेदी कहते हैं—

“भाषा में बंगला का अनुकरण केवल शब्दों और मुद्रावरों में ही नहीं नामों और विचारों तक में किया जा रहा था। प्रेमचन्द ने पहले पहल

इन कार्पनिक प्रौढ़ों को ठोकर मार कर तोड़ दिया। उन्होंने हिन्दी को हर प्रकार-से हिन्दी किया। उन्होंने हिन्दी सर्व के भेद को कम कर दिया और भाषा में नई प्राण शक्ति फूँक दी।”

प्रेमचन्द जी की भाषा सामान्य जीवन की भावनाओं परित्यक्तियों तथा पात्रों के अनुकूल सरल सरल एवं प्रवाह पृथक् है। साहित्यकार का हृदय भावना प्रधान होता है, अपरोक्ष गुणों के अतिरिक्त यहाँ उसकी भावनाओं के व्यंग्य का प्रयत्न होता है, वह सुलभ भावपूर्ण भाषा का प्रयोग करता है। देखिये ‘गहन’ में प्रेमचन्द जी की भावमयी भाषा का सौन्दर्य—“क्षेत्र की शीतल सुहावनी, स्फूर्तिमयी संख्या, गंगा का तट टेसुओं से लहलहाता हुआ डाक का मैदान, बरगद का खतनार वृक्ष, उसके नीचे बँधी हुई गाय भैंस, क्यूँ और खीकी की बेलों से खराबी हुई श्लेषकियाँ न कहीं गद न गुवार न शोर न गुल, सुल और शक्ति के लिये क्या इससे मो अच्छी जगह हो सकती है? नीचे स्वर्णमयी गंगा, साक्ष काले, मीठे आबरव से चमकती हुई, मन्द स्वरों में गावो, कहीं छपकती, कहीं मिम्कती कहीं चपल गम्भीर अनन्त मंचकार की ओर खड़ी आ रही है।”

(पृष्ठ ११९)

प्रकृति चित्रण में भाषात्मक शैली का दूसरा उदाहरण देखिये—

“भाषों का महीना था। पृथ्वी और अक्ष में रथ खिड़ा हुआ था। अक्ष की सेनार्य वायुयान पर चढ़कर आकाश के बहुरंगी की वर्षा कर रही थी। इसकी बल-सेनाओं के पृथ्वी पर बसात मचा रखा था। गंगा गाँवों और कस्बों को निगल रही थी। खरों खपन्न होकर गरबती मुँह से फेन निकालती हाथों खस रही थी; चतुर फिरेतों की तरह पैदले बढ़ रही थी। कभी एक कदम आगे जाती फिर पीछे झौट पड़ती और चकर खाकर फिर आगे को टपकती। कहीं कोई श्लेषका डगमगाता तेजी से बहा आ रहा था, मानों कोई शराबी बीड़ा खाता हो कहीं कोई बुरा डाल-पछों समेध बूबा छतराता किसी पापय्य मुग के बन्दु की भाँति सिरता खाता था, गाँव और जैसे खाट और तपते मानों तिलस्मी पित्रों की भाँति भाँजों के सामने से निकल जाते थे।”

भाषा की सजीवता एवं गत्यात्मकता का दूसरा उदाहरण देखिये। रमा आक्षपा से अलग हो रहा है—

“आत्मप्राप्ति के लिये जाने लगी तो रमा ने कातर होकर उसे गले लगा लिया और इस तरह भेंच-भेंच कर उससे आर्त्तिगन करने लगा। मानों यह सौभाग्य उसे फिर न मिलेगा। कौन जानता है पक्षी वसका अन्तिम आर्त्तिगन हो। उसके करपत्ता मानों रेशम के सहस्रों तारों से संगठित होकर आत्मप्राप्ति से विभट गये थे। मानों कोई मरणासन्न कृपण अपने कोय की हड्डी मुट्टी में बन्द किये हो और उसे बलपूर्वक छोड़ देने से ही उसके प्राण निकल जायेंगे ?”

(पृष्ठ १३०)

प्रेमपद की भाषा में अस्कारों की छटा भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। जैसे “अब इस नये चन्द्रहार के सामने उसकी चमक उसी भाँति मन्द पड़ गयी थी जैसे इस निमल चंद्र अयोधि के आगे तारों का झालोक। उसने मकड़ी द्वार को तोड़ बाँका और उसके दानों मीचे गली में फेंक दिया, उसी भाँति जैसे पूजन समाप्त हो जाने के बाद कोई उपासक मिट्टी की पार्थिवी को खड में विसर्जित कर देता है।”

(पृष्ठ १३१)

“श्रीराफल छाया, सच्चन्द्र गुलाब का फूल था, जिस पर हीरे की कक्षियाँ जोस की बूँदों के समान चमक रही थी।

(पृष्ठ १३०)

“इस मातृभक्ति के लिये कितने दिनों से उसकी आत्मा तड़प रही थी। इस कृपण हृदय में जितना प्रेम संचित हो रहा था, वह सप माता के स्तन में एकत्र होने वाले दूध की भाँति बाहर निकलने को अन्तुर हो गया।

(पृष्ठ १३१)

प्रेमपद भी ने मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सफल प्रयोग किया है। अनभाषा में इनका बहुत महत्व होता है, शब्द पर्य भाष में शक्ति ज्ञान के लिये इसका प्रयोग आवश्यक हो जाता है—जैसे दूसरों को मुर्दा बना देना, हमदी की हँडिया खोकर फुत्ते की जल पहचानना, पँपा हुआ पोड़ा धान से सुकाना, तो तुम भी निरे बहिया के ताउ हा, रानी रुटेगी अपना मुहाग लेगी आदि।

मुहल्लेदार भाषा का मिथ्या देखिये। रमानाय की शब्दी के संबन्ध में उसकी माता कहती है—“बहू का जायगी, तो उसकी आँसू भी सुकेंगे,

देख लेना। अपनी बात याद करो। सब तक गले में जुभा नहीं पका है, अभी तक कुत्ते हैं। जुभा पका और सारा मर्रा हिरन हुआ। निकम्मों को राह पर खाने का इससे बढ़कर और कोई उपाय ही नहीं।”

(पृष्ठ ८)

अपन्यास में पेमर्षवजी ने पात्रों के ज्ञान, पर पर्व जीवन के अनुसार ही भाषा कहलवाया है। फलतः बहुत से शब्द शुद्ध ग्रामीण, शुद्ध शुद्ध नागरिक, और शुद्ध अंगरेजियत लिये हुये हैं, यहाँ तक कि शब्दों को ठोड़ा-मरोड़ा भी है। रेवीदीन रमा को समझता हुआ कहता है—“सिपाही क्या पकड़ लेगा बिलगगी है। मुझसे कहो, मैं प्रयत्नरत्न के बाने में कर दूँ। अगर कोई चिरखी आँखों से भी देख ले तो मूँछ मुड़ा हूँ। पेसी बात है मज़ा। सैकड़ों सुनियों को जानता हूँ, जो यही कलकत्ते में रहते हैं। पुलिस के अफसरों के साथ हावत खाते हैं; पुलिस जानती है, फिर भी उनका कुछ नहीं कर सकती। रुपये में बड़ा बल है मिया।”

पुलिस का सिपाही भी अब रमा से कहता है तो अपनी ही भाषा बोलता है, कहता है—“नहीं। आपका बास्ते इससे बुरा दूसरा बात नहीं। हम तुमको छोड़ेगा नहीं। हमारा मुकद्दमा चाहे बिगड़ जाय, लेकिन हम तुमको ऐसा 'डेसन' देगा कि तुम दमिर भर न मूलेगा।” (पृष्ठ २६२)

सोहरा, मुसलमान जाति की चेरया है। यह उर्दू फरसी मिश्रित भाषा का प्रयोग करती है—‘मुझको कीमिया, आप मर्हों की तरफ़ारा कर रहे हैं। एक यह है कि वहाँ आप लोग दिल बड़लाय के लिये जाते हैं, महज ग़म ग़ज़त करने के लिये, महज आनन्द छाने के लिये। जब आपको बपय की तबारा नहीं होती, तो वह निसे क्यों कर ?’ (पृष्ठ २६०)

एक पुलिस इंस्पेक्टर जो मुसलमान है, रमा को जेल के मय से मयमीत करता हुआ कहता है—“हलफ से कहता हूँ, अफसरों की जरा सी निगाह बढ़ जाय तो आप का कहीं पता न खगे। हलफ से कहता हूँ, एक इशारे में आपको इस साल की सबा हो जाय। आप हैं किस ख्याल में। हम आप के साथ शरारत नहीं करना चाहते।” जेल को आसल म

समझियेगा। सुधा दोसक में ले आप पर जेब की सजा न दे। चक्की में भोव दिया तो मीठ ही आ गई। हसफ़ से कढ़ा हूँ, दोसक से बरतार है जेस।”

प्रेमचंद जी पात्रों के माध्यम से ही व्यंग्य एवं हास्य की सृष्टि कर लेते हैं। बेबीरीन को अब रमानाय की प्राईमर ठीक से नहीं समझ में आती तो कहता है—“मीया, यह तुम्हारी अंगरेजी पढ़ी विष्ट है। एम आई मार ‘सर’ होता है तो पी-आई-टी ‘पिट’ क्यों हो जाता है। जिस दिन प्राईमर खत्म होगी, महाशेर जी को सजा सेर खट्टू बड़ाईंगा। पराई-मर का मतलब है, पराई स्त्री-मर जाय। मैं कहता हूँ, हमारी मर पराई के मरने से हमें क्या सुख ?”

फुल मिठाकर प्रेमचंद जी वर्णन समता पढ़ी ही बनूठी है खाड़े वस्तुगत हो या भाव चित्र। पढ़ी ही कुरासता से शब्दों की योजना कर एक पूरा समीक्ष चित्र सामने खड़ा कर देते हैं।

मन स्थितियों के चित्रण में उपन्यासकार को अपूर्व सफलता मिली है।
, देखिये दो तीन चित्र—

“मन की एक दशा वह भी होती है, जब आँखें खुसी होती हैं और कुछ नहीं सुग्या, जान सुजे रहते हैं और कुछ सुनाई नहीं पड़ता।”

आलपा के छिये इन चीजों में जेरामात्र भी आकर्षण न था। हॉ वह बर की एक आँख देखना चाहती थी। वह भी सबसे छिपाकर, पर उस भीड़ भाड़ में ऐसा अवसर चढ़ा। द्वार बार के समय उसकी सटियाँ उसे छत बर लीप ले गयीं और उसने रमानाय को देखा। उसका सारा धिराग, सारी चशासोनता मानो घुमन्तर हो गयी थी। मुँह पर हय की हासिमा छा गयी। अनुराग स्फूर्ति का भंडार है।” (पृष्ठ १०) x

x

x

x

“बबर का महोना सग पूछा था। मेघ के बल-शून्य टुकड़े कमो-कमी आकामा में दौड़ते नगर आ जाते थे। आलपा छत पर लेटी हुई जन मेघ खण्डों की किसोले में देख रही थी। चिन्ता व्यपित प्राणियों के जिय इससे

अधिक मनोरंजन की वस्तु ही कौन है ? चावल के टुकड़े भौंति-भौंति के रंग बधकते भौंति-भौंति के रूप भरते । कमी आपस में प्रेम से मिला जाते कमी रुठ कर असंग-असंग हो जाते, कमी दौड़ते, कमी ठिठक जाते । आसपास सोचती रमानाय मौ कही बैठें यहाँ मेघ-झेड़ा देखते होंगे । इस कल्पना में विपित्र आनन्द मिश्रता । किसी माझो को अपने सगाये पौये से किसी दासक को अपने बनाये हुये परीह से जितनी आत्मीयता होती है, कुछ वैसा ही अनुराग उसे बन आकाशगामी बीजों से होता था । विपत्ति में हमारा मन अंतर्मुखी हो जाता है ।” (पृष्ठ ५४)

x

x

x

दूसरा पदाक्षरय देखिये रतन के ममोगत भाव का “जैसे एक शीतल धीम धाम्य रतन के पीर से घुस कर सिर से निकल गया, माँनों उसकी बेह के सारे वन्धन सुख कर, सारे अबयव बिखर गए । उसके मस्तिष्क के सारे परमाणु हवा में चढ़ गए, माँनों नोखे से घरती निकल गयो, ऊपर से आकाश निकल गया, और अब वह निराकार, नित्यन्व, निर्जीव बकी है । अवरुद्ध और, कंथित कंठ से बोली—पर से किसी को मुझाई ? यहाँ किससे सत्ता की जाय ? कोई भी तो अपना नहीं है ।”

उप-यास में जीवन सम्बन्धो दार्शनिक बर्णन का पदाक्षरय देखिये—

“मानव जीवन की सबसे महान घटना कितनी शान्ति के साथ घटित हो जाती है । वह बिश्व का एक महान अंग, वह महात्वाकांक्षियों का प्रचण्ड सभल, वह सद्योग का अनन्त मंडार, वह प्रेम और द्वेष, सुख और दुःख का खीला क्षेत्र वह बुद्धि और बल की रगभूमि न जाने कब और कहाँ खीन हो जाती है किसी को क्षमर नहीं होती । एक द्विपकी भी नहीं, एक सज्जबास भी नहीं, एक आह भी नहीं निकलती । सागर की हिलोरी का कहाँ अंत होता है ? कौन पठा सफटा है ? अनि कहाँ वायुमय हो जाती है, कौन जानता है ? मानवाय जीवन उस द्विपद के सिवा और क्या है ? उसका अबसान भी उठना ही शान्त, उठना ही अक्षरय हो तो क्या आश्चर्य ?—

“कितना महान परिवर्तन है । वह जो मज्जर के डंक को सहन न कर

सकता या अब उसे चढ़े मिट्टी में दबा दो, चाहे अग्नि धिमा पर रख दो,
उसके माथे पर बल तक न पड़ेगा ।” (पृष्ठ २६०)

बस्तुगत वर्णन की गत्यात्मकता का सुन्दर व्याख्यान देखिए—

“मर्दों ने गहने बनवाए थे, औरतों ने पहिने थे, सभी आत्मोचना करने
लगे। बूढ़ेवन्ती क्विनी सुन्दर है कोई दस सोले की होगी। बालू! साढ़े
म्यारह सोले से रची मर भी कम निकल जाय, तो कुछ हार जाऊँ! यह शेर
वहाँ सो देखो क्या हाथ की सफाई है? जी चाहता है कस्तीगर के हाथ
चूम ले। यह भी बारह सोले से कम निकल जाय तो मुँह न दिखाऊँ।
मूठे नगीनों में यह आब कहाँ! बीब तो यह गुलबन्द है, क्विने खूब सूरज
पूत है ।” (पृष्ठ ६)

भाषा भावबलुच्छल, सरस, सरास, प्रभावोत्पादक, मुहावरेशार तथा अन-
सामान्य के अनुकूल है।

देशकाल

उपन्यास की रचना में देशकाल का अधिक महत्व है। उपन्यासकार
जिस जीवन की व्याख्या करता है उस पर वहाँ की परिस्थितियों एवं
वातावरण विशेष का प्रभाव पड़ता है। उपन्यासकार का युग विशेष की
सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का जानना आवश्यक
है—तभी वह जीवन की व्यापकता को समझ सकेगा तथा चरित्र को
विस्तार देने में समर्थ होगा। जीवन की यथार्थ व्याख्या के लिए देश काल
की भूमिका जानना असंभव आवश्यक है। उपन्यासकार बहो सफल होता है
जो परिस्थितियों को देखते हुए पात्रों का निमाण करता है और उनके तथ्यों
पर विचार करता है।

प्रेमचन्दजी युग श्रुता थे। उन्होंने युग की समस्याओं एवं गतिविधि
को भली भाँति देखा और परखा था। प्रेमचन्द का युग परिवर्तन का युग
था। युग की सभी परिवर्तनशील घटनाओं को प्रेमचन्द जी ने ध्यान में

अधिक मनोरंजन की वस्तु ही कौन है ? वास्तव के टुकड़े भाँति-भाँति के रंग बदलते भाँति-भाँति के रूप भरते । कमी आपस में प्रेम से मिला जाते कमी रुठ कर अलग-अलग हो जाते, कमी झींकते, कमी ठिठक जाते । वास्तव सोचती रमानाब भी कहीं बैठें वहाँ मेघ-श्रेका देखते होंगे । इस रूपना में विभिन्न आनन्द मिश्रता । किसी माही को अपने लगाये पौधे से किसी वास्तव को अपने बनाये हुये परीचें से जितनी आत्मीयता होती है, कुछ वैसा ही अनुराग उसे उन आकाशगामी चीजों से होता था । विपत्ति में हमारा मन अंतर्मुखी हो जाता है ।” (पृष्ठ १५)

×

×

×

दूसरा अष्टादश देखिये रत्न के मनोगत भाव का “जैसे एक शीतल तीक्ष्ण बाण रत्न के पेर से घुस कर सिर से निकल गया, मामों उसकी देह के सारे अन्धन झूठ कर, सारे अवयव विकर गए । उसके अस्तित्व के सारे परमाणु हवा में उड़ गए, मामों नोचे से परती निकल गयो; ऊपर से आकाश निकल गया, और अब वह निराधार, निस्पन्द, निर्जीव सड़ी है । अब ठंड और, कंठ से बोझो—पर से किसी को बुझाऊँ ? वहाँ किससे सहाह की आय ? कोई भी तो अपना नहीं है ।”

उपन्यास में जीवन सम्बन्धी दार्शनिक वर्खेन का अष्टादश देखिये—

“भारतवर्ष की सबसे महान घटना कितनी शान्ति के साथ घटित हो जाती है । वह विश्व का एक महान अंग, वह महत्वाकांक्षाओं का प्रणय सागर, वह अयोग का अमन्य मंडार, वह प्रेम और प्रेय, सुख और दुख का लीला क्षेत्र यह बुद्धि और बल की रगमूमि न जाने कब और कहाँ लीन हो जाती है किसी को खबर नहीं होती । एक हिंसकी भी नहीं, एक बख्शवास्त भी नहीं, एक आह भी नहीं निकलती । सागर की हिंसरों का कहाँ अंत होता है ? कौन बता सकता है ? ध्वनि कहाँ वायुमय हो जाती है, कौन जानता है ? मानवीय जीवन इस हिंसर के सिवा और क्या है ? उसका अवसान भी घटना ही शान्त, घटना ही अदृश्य हो तो क्या आश्चर्य ?—

“घटना महान परिवर्तन है । वह जो मध्यर के डंक को सहन न कर

सकता था अब उसे चढ़े मिट्टी में क्या दो, चढ़े अग्नि बिता पर रख दो,
 उसके माये पर बस तक न पड़ेगा।” (पृष्ठ २१०)

बस्तुगत वर्णन की गन्यासकथा का सुन्दर ध्वस्वरूप देखिए—

“मर्दों ने गहने घनवाप ये, औरतों ने पहिने ये, समी आसोचना करने
 लगे। बूहेवन्ती चितनी सुन्दर है कोई बस सोने की होगी। बाह ! साढ़े
 ग्यारह ठोले से रत्नी भर भी कम निरुक्त आय, तो कुछ हार जाऊँ। यह शेर
 वहाँ तो देखो क्या हाथ की सफाई है ? की चाहता है काटीगर के हाथ
 चूम ले। यह भी पारह ठोले से कम निरुक्त आय तो मुँह न दिखाऊँ।
 मूठे नगीनों में यह आय कहीं ! चीज तो यह गुलबन्द है, कितने खुश सूत
 पूस है।” (पृष्ठ १)

माया भात्रालुल्लूख, सरल, सपाक, प्रभावोत्पादक, मुहाबरेदार तथा अम-
 सामान्य के अनुकूल है।

देशकाल

उपन्यास की रचना में देशकाल का अधिक महत्व है। उपन्यासकार
 जिस जीवन की व्याख्या करता है उस पर वहाँ की परिस्थितियों एवं
 वातावरण विशेष का प्रभाव पड़ता है। उपन्यासकार का युग विशेष की
 सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं का जानना आवश्यक
 है—तभी वह जीवन की व्यापकता को समझ सकेगा तथा चरित्र को
 विस्तार देने में समर्थ होगा। जीवन की घमास व्याख्या के लिए देश काल
 की भूमिका जानना अत्यन्त आवश्यक है। उपन्यासकार बहो सफल होता है
 जो परिस्थितियों को देखते हुए पात्रों का निमाण करता है और उनके तथ्यों
 पर विचार करता है।

प्रेमचन्दजी युग द्रष्टा थे। उन्होंने युग की समस्याओं एवं गतिविधि
 को मझी भाँति देखा और परखा था। प्रेमचन्द का युग परिवर्तन का युग
 था। युग की समा परिवर्तनशील घटनाओं को प्रेमचन्द जी ने ध्यान में

रखा है। अपने युग के सभी सामाजिक परिवर्तनों को प्रेमचन्द जी ने परखा था। अमेठी सभ्यता के प्रभाव का समाज बाह्याङ्ग्य राजनीतिक चेतना, भावि सभी का छल्लेख प्रेमचन्द जी ने किया है।

प्रस्तुत उपन्यास की रचना सम १९३१ में हुई। तटयुगीन मध्यवर्गीय परिवार की यथार्थता पर विचार करते हुए आभूपक और इससे उत्पन्न समस्याओं पर ही उपन्यासकार ने विचार किया है, इसके साथ ही साथ अन्य समस्याएँ भी जुड़ी हुई हैं।

मध्य वर्ग की भी मनोवैज्ञानिक आर्थिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि पर आभूपक विषयों की समस्या को लेकर उपन्यासकार ने उपन्यास लिखा है। प्रेमचन्द युगीन मध्य वर्ग की मनोभूमि के सम्बन्ध में सर्व प्रथम विचार कर लेना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में वास्तविक सामाजिक स्थिति में सम्बन्ध में डा० आकिर हुसेन ने अपनी पुस्तक 'दि इयिडियन हेरिटेज' में लिखा है—“समस्त प्राचीन मूल्यों पर विरवासी को चुनौती दी जा रही थी। विरवास और रीति-रिवाजों के प्राचीन रूप बह रहे थे। सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएँ तीव्र गति से टूट रही थीं। भारत वास्तविक अर्थ में परिवर्तन की अनिश्चित धरा में था। प्राचीन सामाजिक संगठन अस्तित्व में ही रह रहे थे। नये तत्व उभर रहे थे जिनकी किसी भी पीढ़ी युग में कोई मिसाल नहीं मिलती।”

मध्य वर्ग की मनोवैज्ञानिक पहलू का बहुत ही सुन्दर व्याख्या आकिर साहब आगे बढ़कर इसी पुस्तक में करते हुये कहते हैं—“आधुनिक भारत का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण तथ्य मध्यवर्ग का असंतुलित फैलाव है। सम्पूर्ण विश्व में मध्य वर्ग के लोग अशांत आलोचनप्रसक्त और व्यक्तिवादी हैं। ऐसी

1 "All old values and beliefs were being challenged. Social economic and political institution were breaking up a terrifying pace. India was literally in the melting pot. The old social satisfaction was disturbed. New types emerged which have no parallel in any previous period."

स्थिति के कारण उनकी आर्थिक स्थिति डोंघाडोस है। पूँजीवादी भेणी में ऊपर उठने की प्रयत्न इच्छा के फल स्वरूप उनमें बहुत से निम्न भेणी की स्थिति में पहुँच जाते हैं। वे अनुभव करते हैं कि उन्हें सम्मानपूर्ण स्तर बनाये रखना आवश्यक है जो प्रायः उनके साधनों की पहुँच के बाहर होता है। लगातार आर्थिक संघर्ष उनके जीवन के समस्त दृष्टिकोण पर प्रभाव डालता रहता है। अपनी स्थिति के सम्बन्ध में निरिच्छ होने के कारण अभिजात वर्गीय कमी अपने महत्त्व को बताने की आवश्यकता नहीं समझता। निम्न वर्गीय भी अपने भाग्य से संतुष्ट रहता है। मध्यमग संतुष्ट नहीं रहता वह प्रायः एहड़ आत्मप्रदर्शनकारी और मुँहफट होता है। अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये वह दूसरों की आलोचना करता है।'

प्रेमचन्द जी ने इसी प्रकार के मध्य वर्गीय परिवार का चित्रण अपने उपन्यास में किया है। रमानाथ के परिवार की पूरी घटना एवं व्यक्तियों का परिभ्रम प्रायः इसी प्रकार का है प्रारम्भ से ही रमानाथ को उपन्यासकार ने आत्म प्रदर्शनकारी दिखाया है, दयानाथ भी दिखावे में आकर विवाह में खूब खर्च करते हैं और दोनों का परियाम होता है कि पिता-पुत्र के कारण उपन्यास की घटना सूत्र का निर्माण होता है। यदि वास्तविकता से कुछ भी लगाव होता तो रमानाथ और दयानाथ इस प्रकार का कार्य नहीं करते जब कि दयानाथ नैतिकता की सदैव वकालत करते हैं।

उत्कलश्रीम भारतीय नारी समाज की आभूषण प्रियता को उपन्यासकार ने मछी-भाँति चित्रित किया है। यह एक प्रमुख समस्या है। उपन्यास को क्या के सभी नारी पात्रों में आभूषण के प्रति स्वभाविक लगाव है। मानकी, साक्षपा, रतन और अमों सभी को किसी न किसी रूप में गहनों की मूल्य है और वे इसे पाकर आत्म संतोष का अनुभव करती हैं। आज भी मले ही भारतीय समाज से नारी का आभूषण प्रेम कम हो गया हो किन्तु बिस्तुस्त समाप्त नहीं हुआ है।

आभूषण प्रेम के दुष्परिणाम के सम्बन्ध में प्रेमचन्दजी रमेरा के माध्यम से कहते हैं—गहनों का मरज न जाने इस इच्छि देरा में कैसे पैल गया। जिन लोगो को मोजन का ठिकाना नहीं, वे भी गहनों के पीछे प्राण बेटे हैं। दरसास अरपों रुपये केबल सोना चाँदी खरोदने में ध्यय हो जाते हैं। संसार

रखा है। अपने युग के सभी सामाजिक परिवर्तनों को प्रेमचन्द जी ने परखा था। अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव का समाज वाद्याङ्गण रासनीतिक खेतना, आदि सभी का अक्षेप प्रेमचन्द जी ने किया है।

प्रस्तुत उपन्यास की रचना सन् १९११ में हुई। तटयुगीन मध्यवर्गीय परिवार की यथार्थता पर विचार करते हुए आभूषण और उससे उत्पन्न समस्याओं पर ही उपन्यासकार ने विचार किया है, इसके साथ ही साथ अन्य समस्याएँ भी जुटी हुई हैं।

मध्य वर्ग की भी मनोवैज्ञानिक आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टभूमि पर आभूषण भिन्नता की समस्या को लेकर उपन्यासकार ने उपन्यास लिखा है। प्रेमचन्द युगीन मध्य वर्ग की मनोभूमि के सम्बन्ध में सर्व प्रथम विचार कर लेना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में तत्कालीन सामाजिक स्थिति में सम्बन्ध में डा० आर्किर हुसेन ने अपनी पुस्तक 'दि इविल्लिफम डेरिटेड' में लिखा है—“समस्त प्राचीन मूल्यों पर विरवाओं को चुनौती दी आ रही थी। विरवास और रीति-रिवाजों के प्राचीन रूप बह रहे थे। सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक संस्थाएँ ढील गति से टूट रही थी। भारत वास्तविक अर्थ में परिवर्तन की अनिश्चित दूरा में था। प्राचीन सामाजिक संगठन अल्पवस्थित हो रहा था। मये तब उमर रहे थे जिनकी किसी भी पीढ़े युग में कोई मिश्रण नहीं मिलती।”

मध्य वर्ग की मनोवैज्ञानिक पहलू का बहुत ही सुन्दर व्याख्या करके साहब आगे चलकर इसी पुस्तक में करते हुये कहते हैं—“आधुनिक भारत का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण तथ्य मध्यवर्ग का अस्तित्वित फैलाव है। सम्पूर्ण विरव में मध्य वर्ग के लोग अरात आलोचनात्मक और व्यक्तिवादी हैं। ऐसी

1 "All old values and beliefs were being challenged. Social economic and political institution were breaking up a terrifying pace India was literally in the melting pot. The old social satisfaction was disturbed. New types emerged which have no parallel in any previous period."

स्थिति के कारण उनकी आर्थिक स्थिति बर्बाद हो गई है। पूँजीवादी श्रेणी में ऊपर उठने की प्रयत्न इच्छा के फल स्वरूप उनमें बहुत से निम्न श्रेणी की स्थिति में पहुँच जाते हैं। वे अनुभव करते हैं कि उन्हें सम्मानपूर्ण स्तर बनाये रखना आवश्यक है और प्रायः उनके साधनों की पहुँच के बाहर होया है। लगातार आर्थिक संघर्ष उनके जीवन के समस्त दृष्टिकोण पर प्रभाव डालता रहता है। अपनी स्थिति के सम्बन्ध में निरिबत होने के कारण अभिजात बर्गीय कमी अपने महत्त्व को बताने की आवश्यकता नहीं समझता। निम्न बर्गीय भी अपने भाग्य से संतुष्ट रहता है। मध्यवर्ग संतुष्ट नहीं रहता वह प्रायः एहड़ आत्मप्रदर्शनकारी और सुँहफट होता है। अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये वह दूसरों की आलोचना करता है।”

प्रेमचन्द जी ने इसी प्रकार के मध्य बर्गीय परिवार का चित्रण अपने उपन्यास में किया है। रमानाय के परिवार की पूरी घटना एवं व्यक्तियों का चरित्र प्रायः इसी प्रकार का है प्रारम्भ से ही रमानाय को उपन्यासकार ने आत्म प्रदर्शनकारी दिखाया है, दयानाय भी दिखावे में आकर विवाह में लूप लक्ष्य करते हैं और दोनों का परिणाम होया है कि पिता-पुत्र के कारण उपन्यास की पठना सूत्र का निर्माण होता है। यदि वास्तविकता से कुछ भी लगाय होया तो रमानाय और दयानाय इस प्रकार का कार्य नहीं करते जब कि दयानाय नैतिकता की सदैव वकालत करते हैं।

वर्तमान भारतीय नारी समाज की आभूषण प्रियता को उपन्यासकार ने मस्ती-मूर्ति प्रियित किया है। यह एक प्रमुख समस्या है। उपन्यास की कथा के सभी नारी पात्रों में आभूषण के प्रति स्वभाविक लगाव है। मानकी, झालपा रतन और जमों सभी को किसी न किसी रूप में गहनों की मूल्य है और वे इसे पाकर आत्म संतोष का अनुभव करती हैं। आज भी मले ही भारतीय समाज से नारी का आभूषण प्रेम कम हो गया हो किन्तु विस्तृत समाप्त नहीं हुआ है।

आभूषण प्रेम के दुष्परिणाम के सम्बन्ध में प्रेमचन्दजी रमेरा के माध्यम से बहते हैं—गहनों का मरज न जाने इस दृष्टि देखा में कैसे पैठ गया। जिन लोगों को मोहन का ठिकाना नहीं, वे भी गहनों के पीछे प्राण देते हैं। हरसात भरपों रुपये केवल सोना चाँदी खरोदने में व्यय हो जाते हैं। संसार

के और किसी देश में हम चातुर्धों की इतनी क्षपण नहीं। तो वास्तव क्या है ?
 उन्मत्त देशों में धन व्यापार में लगता है, जिससे लोगों की परिचरिता होती
 है, और धन बढ़ता है। यहाँ धन श्रृंगार में खर्च होता है, उससे उन्नति
 और उपकार की जो महान शक्तियाँ हैं, उन दोनों ही का अन्त हो जाता है।
 वस यही समझ लो कि बिना देश के लोग बितने ही मूर्ख होंगे, यहाँ जेवरों
 का प्रचार भी उठना ही अधिक होगा। वह धन जो मोहन में खर्च होना
 चाहिये, वास्तविकता का पट काटकर गहनों को भेंट कर दिया जाता है।
 वास्तविकता को धृष्ट न मिले, न सही। धी की गंध तक उनकी नाक
 में न पहुँचे न सही, मेवे और फलों के दशान उन्हें न हो कोई परबाह नहीं,
 पर देवी जो गहने जरूर पहनेगी और स्वामी भी गहने जरूर बनवायेगा।
 इसके कारण हमारा कितना आत्मिक, नैतिक, वैदिक, आर्थिक और धार्मिक
 पतन हो रहा है, इसका अनुमान ब्रह्मा भी नहीं कर सकते।”

रमानाथ के चरित्र के माध्यम से उपन्यासकार ने उद्युगीन बेकारी की
 समस्या पर प्रकाश डाला है वह यह व्यक्त करता है शिथिल होकर भी बेकर
 रहना पड़ता था और नौकरी जीवन को एक समस्या थी—इस संबंध में
 रमेराबाबू कहते हैं—इसे इतना आसान समझ रहे हो इतनी आसान नहीं
 है। अच्छे-अच्छे पक्के ला रहे हैं। क्या तुम समझते हो घर बैठे
 बगल मिल जायेगी ? महीनों ढौड़ना पड़ेगा, महीनों। बीसियों सिफरिहों
 खानी पड़ेगी। सुबह शाम हाथिरी देनी पड़ेगी। क्या मीकरी मिलना आसान
 है।” यह समस्या मध्यवर्ग के बेकारी की है जो मर्यादा एवं सामाजिक
 प्रतिष्ठा के धरन पर जोटा-मोटा काम नहीं कर सकता और नौकरी की छाना
 में व्यर्थ भटकता है।

रिखत का प्रचलन सामाजिक वातावरण में व्यवहार बन गया था।
 रमानाथ अब नौकरी पत्ता है तो रिखत शुरू कर देता है वह उसे घुरा नहीं
 मानता प्रचलन के कारण स्वीकार कर लेता है।

कलकत्ते में पहुँचकर रमानाथ जिस प्रकार पुलिस के हाथों फँसता है और
 सुश्रुतिर धन के लिये वाप्य होता है, इससे पुलिस के हकदारों एवं आस-
 साजी का पता चलता है। भले आदिमियों को डरा धमकाकर निरपराधियों
 को सजा दिखाना यह पुलिस प्रशासन के भ्रष्टाचार को व्यक्त करता है।

पुलिस-विभाग प्रशासन का अंग है। अब पूरे शासन व्यवस्था की अत्याचार भावना पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है।

वत्सालीन जन सागृति एवं देश प्रेम की प्रबल भावना पर उपन्यास में पूर्ण प्रकाश पड़ता है। देशी आन्दोलन, विदेशी शासन का अत्याचार एवं न्यस्तत्रता के लिये किये जाने वाले सारे प्रयत्नों को देशी-हीन के जीवन के मध्यम से उपन्यासकारने उपस्थित किया है। देशी-हीन देश की भावना का प्रतीक है। देशी-हीन अपने पुत्रों के वल्लिदान की घटना रमानाथ को इस रूपमें सुनाता है—“भोड़ खग गयी। गोरे उनपर धोड़े चढ़ा छाते थे, पर दोनों चट्टान की तरह ठटे लड़े थे। आखिर जब इस तरह कुछ बस न चला तो सबों ने डंडों से पीटना शुरू किया। ... दोनों को लोगों ने चठा कर अस्पताल भेजा। वही रात को दोनों सिघार गये। मुन्हारे चरण छूकर कहता हूँ मैया उस बच्चे ऐसा खान पड़ता था कि मेरी छाती गज भर की हो गई है, पाँव जमीन पर न पड़ते थे। वही उमंग आती थी कि भगवान ने भीरों को पहले चठा न लिया होता तो इस समय उन्हें भी भेज देता।”

देशी-हीन स्वदेशी का उपासक है—जीवन की व्यवहार की वस्तुओं में देशी का ही प्रयोग करता है। देशी वस्तुओं के व्यवहार के संवन्ध में देशी-हीन कहता है—जिस देश में रहते हैं, विसका अन्न खल खाते हैं उसके लिये श्रमना भी न करे तो धीने को चिक्कार है। दो खवान सुदेशी को भेंट कर चढ़ा हूँ भइया।” बाहरी लोग का देशी-हीन विरस्कार करता है वह चाहता है पूरा देश स्वदेशी की बनो वस्तुओं का प्रयोग करे। केवल यग विशेष के प्रयोग से ही देश का प्रजन नहीं सुलभेगा। देशी-हीन कहता है—“इन बड़े बड़े आधुनिकों के किये कुछ भी न होगा। बड़े बड़े देश भगतां को पिना मिलायती सराफ के पैस नहीं आती। उनके पर में जाकर देखो वा एक भी ऐसी चीज न मिलेगी। दिग्गाने के लिये हम-बीस गाड़े के कुत्ते बनना लिये, पर का और सब समान मिलायती है, सबके सब भोग बिलास में अंधे हो रहे हैं, छोटे भी बड़े भी। उस पर से इस बात का दावा है कि देश का उद्धार करेंगे। अरे! तुम क्या देश का उद्धार करोगे। पहले अपना उद्धार कर लो। गरीबों को सूत कर मरना तुम्हारा

गवन की समस्याएँ

प्रेमचन्दजी ने उपन्यासों में युग-जीवन एवं उसकी परिस्थितियों का सामाजिक चित्रण किया है। यह किसी न किसी समस्या को लेकर भागे बढ़ते और सामाजिक परिवेश में विचार करते हुए समाधान का प्रयत्न करते हैं। फलतः उन्हें एक समस्या पर विचार करने के लिये तब्युगीन सम्पूर्ण सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण करना अनिवार्य हो जाता है। डा० महेन्द्र भटनागर प्रेमचन्दजी के उपन्यासों में समस्याओं की उपस्थिति प्रधान रूप से मानते हैं, उन्होंने अपनी पुस्तक में प्रेमचन्दजी को समस्यामूलक उपन्यासकार सिद्ध किया और उनके उपन्यासों का मूल-तत्त्व 'समस्या तत्व' स्वीकार किया है। इसे संबंध में श्री भटनागरजी कहते हैं "समस्या मूलक उपन्यास में कथा का विकास विशिष्ट दृष्टिकोण

को लेकर होता है। उपन्यासकार का उद्देश्य यहाँ पाठकों का मनोरंजन करना नहीं होता। उसे तो ययार्य की कठोर भूमि पर खड़े होकर अपनी कृति का निर्माण करना होता है। उस समस्या को लेकर वह बसता है और उसका उस समस्या को देखने का दृष्टिकोण होता है। वसी की पूर्ति-भावना को सामने रखकर वह क्या-सामग्री पकत्र करता है।^५

गयन का प्रकाशन मार्च १९३९ में हुआ था। अतः इसका रचना-काल ३०-३१ के बीच मानना चाहिये क्योंकि उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण तथा समाज पर पड़ने वाले गांधीवादी प्रभाव उपन्यास में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। देवीदीन की राष्ट्रभक्ति गांधीवादी चेतना के ही कारण है।

गयन में सर्वप्रथम उपन्यासकार ने नारी-समाज की आभूषण प्रियता को एक समस्या के रूप में दिखाया है। व्यक्तिगत संस्कार न मानते हुए वास्तविक गत संस्कार सिद्ध करने के लिये उपन्यासकार ने आत्मता को वास्तविकता से आभूषणों से गुड़िया को सजाते हुये दिखाया है जो उसके आभूषण-प्रेम अतः बसकर बढ़ता है। प्रेमचन्द जी ने नारी की आभूषण प्रियता को नारी समाज का व्यापक अंग माना है यह समस्या केवल मध्यवर्ग परिवार को ही नहीं है, अपितु रत्न और अगो की भी है जो अमरा उच्च और निम्न वर्ग की हैं। सभी आभूषण के लिये आत्मस्थ रहती हैं। आभूषण के कारण ही रमानाय को गयन के आरोप में फँसना पड़ता है।

प्रेमचन्द जी ने आभूषण को समस्या को उपस्थित करते हुए यह बिलाल का प्रयास किया है कि आभूषण प्रेम की कुलया के कारण समाज का आर्थिक जीवन तथा सामाजिक व्यवहार कितना अस्त-व्यस्त है। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने स्वयं उपन्यास में रमेश नामक पात्र से उद्धृत किया है।

आभूषण-प्रियता के दुष्परिणाम को उन्होंने मध्यवर्ग के जीवन में दिखाया है। साध-ही-साध मध्यवर्गीय जीवन एवं उनकी आह्वान प्रियता तथा आत्म प्रदर्शनकारी मनोवैज्ञानिक दृष्टभूमि का वर्णन किया है। मध्यवर्गीय परिवार बाह्य आह्वान और आत्म-प्रदर्शन के लिये समाज के सम्मुख की कितनी झंझो हीवार रखी करता है और इसका पारिवारिक जीवन तथा सामाजिक जीवन कितना अस्त-व्यस्त हो जाता है। इसी जीवन

का छद्मपाटन करना उपन्यासकार का अभीष्ट है। क्यानाथ और रमानाथ अपनी इसी प्रदर्शन के कारण इतना बट गइते हैं। यह स्पष्ट है कि यदि क्यानाथ अपनी आर्थिक अवरुद्धा के प्रति सचेत होते तो कदाचित् क्यानाथ का जीवन कुछ और हो होता। लेकिन उपन्यासकार को मध्यपर्याय जीवन की मनोवैज्ञानिक, आर्थिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि विरलाना या इसीप्रिये उसने इस प्रकार की योजना की। इस सम्बन्ध में श्री मन्थनाथ गुप्त की पंक्तिवाँ विनायरूप से उल्लेखनीय है — “यह पुस्तक मानो धर्मग्रन्थ है जिसमें मध्यवर्तवर्ग अपनी सजीव प्रतिष्ठाया लेख सफटा है। धरा गहन मुकाई कौर इसमें अपनी धस्वीर नजर आई। मध्यवर्तवर्ग की बड़ी अजीब परिस्थिति है। मानसिक रूप में उसका हन्मन ऊपर की ओर अथात् अपने से ऊपर वर्गों की ओर रहता है, किन्तु अपनी आय कम होने के कारण तथा नौकरी की प्रतियोगिता के कारण बस हमेरा अतरा सगा रहता है कि कहीं वह त्रिरांश की अवस्था में है, उससे कम से गिरकर सर्वहारा वर्गमें शामिल न हो जाय। इस कारण यह उपन्यास नारी के आत्मपूर्ण प्रेम की ट्रेजरी न होकर धारे मध्यवर्तवर्ग वग पत्रिक पुरुष प्रधान समाज की ट्रेजरी है।”

उपन्यास में सीसरी समस्या रिरवत की है। उपन्यासकार ने दिखलाया है कि यह सामाजिक कर्कश किस प्रकार सामाजिक संगठनों और प्रशासन में व्यक्त है। रमेरा घूस लेता है उसकी धात्रमा इसे स्वीकार करती है। बसकरी में पुलिस के कर्मचारी देवीदीन से माँग करते हैं। देवीदीन घूस देने से हिचकता नहीं क्योंकि वह जानता है कि इसके द्वारा पुलिस उसके काम में मदद देगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि उपन्यास के पात्र स्थान-स्थान पर घूस देने और देने में हिचकते नहीं और यह सामाजिक रोग सचमुच उपन्यास में समस्या के रूप में प्रस्तुत है।

कथानक में रतन को महत्व देकर उपन्यासकार ने नारी जीवन की सामाजिक बिचरता पर विचार किया है। अनमेत विवाह सचमुच में आत्मिक सुख का परिणाम नहीं हो सकता। रतन को समस्या एक मनो-वैज्ञानिक समस्या है। रतन के माध्यम से प्रेमचन्द जी नारी जीवन के दो पक्षों का छद्मपाटन किया है—पढ़िका है अनमेत विवाह का अनारिक्त

सुख दूसरा है वैभव्य जीवनकी आर्थिक समस्या। इन दोनों प्रकार की समस्याओं को उपन्यास में रखना लेखक का लक्ष्य है।

धोहरा भी सामाजिक दुर्भ्यवस्थाओं की ही उपज है। मारी प्रेम और सेवा का हृदय रखते हुए भी उसे घेरया बनना पड़ता है किन्तु जब वह भवसर पा जाती है तो जीवन को नई दिशा में मोड़कर आदर्श के जीवन पर चलने लगती है। धोहरा जैसे समाज की नारियाँ जो समाज के लिए गौरव बन सकती हैं, जिनकी सेवा से समाज सुखी हो सकता है। ये विधवाता के कारण ही वे अपना कुत्सित जीवन बिताती हैं।

प्रेमचन्द की ने तत्कालीन पुलिस प्रशासन के भ्रष्टाचार की ओर भी विचार किया है, जो सामान्य वर्ग के लोगों को बग धमका कर फँसा देते हैं और निरपराधी को अपराधा घोषित करने में यत्नकुस नहीं हिचकते। अपने स्वाय की सिद्धि के लिये जीवन, नैतिकता और मृत्यु का उनके जीवन में फोड़ें स्थान नहीं है। पुलिस जनता की रक्षा न होकर जनता की मर्तक और उनके जीवन सुख को नष्ट करने वाली है। इस सन्दर्भ में उपन्यासकार ने यह भी दिखलाया है कि स्थानिकारियों और दश भक्तों के प्रति उस समय पुलिस विभाग कितना घृणास्पद भाव तथा दमन और अत्याचार की भावना रखता था। इस प्रकार प्रेमचन्द जी ने पुलिस प्रशासन का पदाकारा कर उसके दुष्कर्मों को स्पष्ट रूप में सामने रखा।

गयन की गौख समस्याओं में राजनीतिक आन्दोलन और स्वतंत्रता की समस्या मुख्य है। उस समय देश की राजनीति में स्वतंत्रता की चेतना पूर्णतया पैज चुकी थी। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन के प्रति जनता आच्छा हाँ चुकी थी और अपना सर्वस्व त्यागकर देश को स्वतंत्र करने के प्रयत्न में लग गई थी। गयन उपन्यास में दृवीशील उस राजनीतिक वातावरण और स्वतंत्रता की समस्याओं को हमारे सम्मुख रखता है।

उस समय गाँधी जी के स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव था कि देशीय स्वदेशी के लिये अपना सबकुछ अर्पण कर देता है। वह जीवन व्यवहार की प्रत्येक पन्मुख दशा को ही पनी हुयी खरीदता है। स्वदेशी आन्दोलन में उसके दो बेटों की मृत्यु हो गई। उसे इन घातों का पिन्युस मोह नहीं है वह स्वतंत्रता के लिये दशा के प्रति अपने दायित्व को समझता

है। देवीदीन रमानाय के लिये भी देरी ही कपड़े काटा है। वह कहता है कि देश की आर्थिक समस्या ही प्रमुख है। केवल बाहरी ढोंग से काम नहीं चलेगा। छत्रपूर्ति और व्यवहार में साम्य होना चाहिये। गलत ढंग के नेताओं के प्रति वह अपनी अनास्था प्रकट करके पास्तविक समस्याओं की ओर संकेत करता है। देवीदीन स्वतंत्रता आन्दोलन का सक्रिय समर्थक होते हुए भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की समस्याओं के लिये भी चिन्तित है और सचमुच इस सम्बन्ध में जो भविष्य वाणी उसने सन् १९३१ में की थी आज वह पथार्थ का रूप लेकर स्वतंत्र भारत के राजनीतिक जीवन पर स्पष्ट है।

इसके अतिरिक्त इस उपन्यास में नये जीवन एवं विचार की ओर मुद्राव की समस्या है जिसे आधुनिकता की समस्या कह सकते हैं। रमानाय स्वतंत्रता चाहता है। आक्रमा साथ घूमना चाहती है। रमानाय का थकी कोट, पैठ का फैशन आक्रमा द्वारा समाज में अन्य रिश्तों के बीच जाने के लिये नयी चीजों की आवश्यकता एवं उनके पीछे रहने की स्वतंत्रता आधुनिकता की ओर संकेत करता है।

इस प्रकार नारी आत्मपूर्ण प्रेम और मध्यवर्गीय आर्थिक जीवन की प्रमुख समस्या का विचार करते हुये उपन्यासकार ने तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक जीवन का सफ़लता पूर्वक चित्रण किया है।

प्रेमचन्दः औपन्यासिक उपलब्धि

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में अपनी युगान्तकारी औपन्यासिक उपलब्धियों के कारण प्रेमचन्द जी उपन्यास सम्राट् कहे जाते हैं। यदि प्रेमचन्द जी के उपन्यासों का सामान्य सर्वेक्षण किया जाय तो उसमें जीवन एवं उसकी समस्याओं का इतना विशाल पट मिलता है कि हिन्दी के उपन्यासकारों में उनकी समता में दूसरा कोई खड़ा हो नहीं हो सकता। प्रेमचन्द के युग का जीवन एवं समस्याएँ मले ही समाप्त हो गईं हों जीवन क्या का वह रूप अब मले ही पड़ल गया हो किन्तु जीवन का विरलेपण एवं मनोवैज्ञानिक छूपाटन करके जिन चरित्रों की सृष्टि प्रेमचन्दजी कर गये हैं वे आज भी जीवित हैं और उनकी तुलना विरव के महत्वपूर्ण उपन्यासकारों के चरित्रों से कर सकते हैं।

जीवन तथा समाज में प्रगतिशील मूल्यों की स्थापना तथा तत्कालीन समाज के विविध व्यक्तियों के चरित्रांकन एवं जीवन की विविध समस्याओं के विरलेपण में प्रेमचन्द जी का उपन्यास-साहित्य क्रमशः विकसित होता गया। विषय विस्तार, शिल्प विधान चरित्रांकन एवं कलात्मकता की दृष्टि से प्रेमचन्द जी का प्रत्येक उपन्यास नवीनता और प्रौढ़ता लेकर उपस्थित हुआ है। पात्रों के निमाण एवं अयन में, जीवन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या में, सामाजिक समस्याओं के विरलेपण में क्रमशः इनकी शैली सरल होवी गयी। प्रेमचन्द जी के उपन्यासों का विकासक्रम इस प्रकार है।

वरदान प्रेमचन्द जो का प्रारम्भिक उपन्यास है। किन्तु इसका प्रकाशन सेवासदन के बाध हुआ। इस उपन्यास में कथानक की प्रभावता है। प्रमुख उपन्यास में असफल प्रेम एवं विवाह की समस्या बर्णित है। वर्धन कीशक की दृष्टि से यह उपन्यास सफल माना जाता है। चरित्रों का चमत्कार अच्छा नहीं बन पाया है। इस पुस्तक की आलोचना करते हुए और 'देवदास' से तुलनात्मक अध्ययन करते हुए भी मन्मथ माध गुप्त अपनी पुस्तक 'कवाकार प्रेमचन्द' में लिखते हैं—“एक युवक का एक युवती से प्रेम होता है। किसी कारण से दानों का विवाह नहीं हो पाता। कड़की का विवाह दूसरे व्यक्ति से हो जाता है। अथ इसके बाद क्या अटिष्ठताएँ उत्पन्न होती हैं यह इन दोनों पुस्तकों में दिखाया गया है।”

चरित्र चित्रण की दृष्टि से चरित्र असफलता प्राप्त होने पर भी समाज में अस्वरूप रूप में नहीं आते। उनकी असफलता सेवा भावना एवं जीवन की आगरूपता में दर्श आती है। डा० रामरतन भटनागर की उपन्यास फला की दृष्टि से विस्तृत नहीं जैसा वे लिखते हैं—“कथा संगठन और चरित्र चित्रण दोनों दृष्टि से वरदान असफल उपन्यास हो कहा जायगा। जिस प्रकार की प्रेम कहानियों की भूमि छन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों और बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में थी इनसे यह उपन्यास अरा भी भिन्न नहीं है। कथा संगठन शिथिल है। जतमें कथारमकता को विशेष स्थान नहीं मिल सका है। स्वयं कथा इतनी खम्बी है कि पाठक डब जाते हैं। न कथा रस का विकास ही संभव है, न चरित्र चित्रण का।”

प्रतिज्ञा का प्रकाशन १९०४ में हुआ। यह प्रेमा नामक उपन्यास का परिष्कृत रूप है। इसमें विधवा विवाह की समस्या प्रमुख है। प्रतिज्ञा का रचना एवं प्रकाशन फल में ही शिवरानी नामक बाबू विधवा से प्रेमचन्द जो की शादी भी हुई थी। इस उपन्यास में प्रेम और विधवा विवाह का यथाभवाही रूप अंकित है। निष्कर्ष रूप में डा० राम रतन भटनागर लिखते हैं—“जो हा यह निश्चित है कि कथा संगठन चरित्र चित्रण और भावों के अग्रान पतन की दृष्टि से यह छोटा उपन्यास साधारण कथा प्रेमी का अतिश्रमण कर देता है।”

सेवासदन का प्रकाशन १९१६ में हुआ। सेवासदन प्रेमचन्दजी की प्रथम प्रौढतम कृति है जिसमें उन्होंने नारी जीवन की मूल एवं व्यापक समस्याओं पर प्रकाश डाला है। सेवासदन भारतीय नारी जीवन की परंपरा एवं वैश्या जीवन को लेकर खड़ा है। वैश्यावृत्ति के सामाजिक कलक के कारणों एवं सुधारवादी जीवन पर विचार किया गया है। सेवासदन में सुमन अपने वैवाहिक जीवन से असंतुष्ट होने के कारण वैश्याजीवन स्वीकार करती है। वह शारीरिक सुखपर नहीं अपितु मानसिक तथा सामाजिक सुख की ओर झुका है। वह सामाजिक जीवन की मूर्छी एवं खाली मर्यादाओं पर फटारें व्यंग करती है। वैश्यालय में आने के बाद वह कहती है—“मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है उसका शर्वाश भी अब नहीं होना था। एक पार सेठ भिमान लाल के ठाकुर द्वारे में झूला देखने गई थी सारी रात बाहर लड़ो भोगती रही। किसी ने मुझे भीतर खाने न दिया। लेकिन कल उसी ठाकुर द्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पड़ा मानों मेरे घरवालों से वह मन्दिर पवित्र हो गया।”

नारी के कृतिसत जीवन पर सद्गुणमूर्ति पूषक विचार करते हुए और उनके प्रति सामाजिक दायित्व का ध्व्यान करते हुए प्रेमचन्द जी उपन्यास के पात्र परासिंह द्वारा निकारण भी प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास का पात्र परासिंह कहता है—“हमें उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उनके साथ पार आयाय होगा। यह हमारी ही दुःखसनापें, हमारे ही सामाजिक अत्याचार हमारी ही कुप्रथाएँ हैं, जिन्होंने वैश्याओं का रूप धारण किया है। यह बाहुमंडी हमारा ही फलुपित जीवन का प्रतिचिन्ह, हमारे पैशाचिक अधम का साक्षात् स्वरूप है। किस मुँह से उनसे घृणा करें। उनको अबतथा बहुत शोचनीय है। हमारा कर्तव्य है कि हम उन्हें सुमार्ग पर लानें और उनके जीवन का सुधारें।”

और अन्त में सेवासदन की स्थापना वैश्याओं के सुधार केन्द्र के रूप में की गई है। यही समस्या का समाधान है।

सेवासदन की मायिका सुमन के सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है—“हिन्दी कथा साहित्य की यह पहली नारी है जो आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए संपन्न को डगर पर पाँव उठाती है। उसके संपन्न एवं दुष्टों की गाथा कम रोमांचकारी नहीं है। पक्षपन से ही वह सीधी और निरस

वरदाग प्रेमचन्द को का प्रारम्भिक उपन्यास है। किन्तु इसका प्रकाशन सेवासदन के बाद हुआ। इस उपन्यास में क्यानक की प्रभावता है। प्रमुख उपन्यास में असफल प्रेम एवं विवाह की समस्या वर्णित है। वर्धमान कौराव की दृष्टि से यह उपन्यास सफल माना जाता है। चरित्रों का उभार अच्छा नहीं बन पाया है। इस पुस्तक की आलोचना करते हुए और 'देवदास' से तुलनात्मक अध्ययन करते हुए श्री मन्मथ नाथ गुप्त अपनी पुस्तक 'कबाकार प्रेमचन्द' में लिखते हैं—“एक युवक का एक युवती से प्रेम होता है। किसी कारण से दोनों का विवाह नहीं हो पाता। खड़की का विवाह दूसरे व्यक्ति से हो जाता है। अथ इसके बाद क्या अतिशयार्थ उपन्यस्त होती है यह इन दोनों पुस्तकों में दिखाया गया है।”

परित्र चित्रण की दृष्टि से चरित्र असफलता प्राप्त होने पर भी समाज में अस्वस्थ रूप में नहीं आते। उनकी असफलता सेवा भावना एवं जीवन की जागरूकता में बढ़ जाती है। डा० रामरतन मदनगार को उपन्यास कला की दृष्टि से विस्तृत नहीं लेखा वे लिखते हैं—“कथा संगठन और चरित्र चित्रण दोनों दृष्टि से वरदान असफल उपन्यास ही कहा जायगा। जिस प्रकार की प्रेम कहानियों की धूम कन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दो दशकों और बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में थी इनसे यह उपन्यास बराबरी में भिन्न नहीं है। कथा संगठन शिथिल है। उसमें कलात्मकता को विशेष स्थान नहीं मिल सका है। स्वयं कथा इतनी लम्बी है कि पाठक ऊब जाते हैं। न कथा रस का विकास ही संभव है, न चरित्र चित्रण का।”

प्रतिज्ञा का प्रकाशन १९०५ में हुआ। यह प्रेमा नामक उपन्यास का परिवर्धित रूप है। इसमें विषया विवाह की समस्या प्रमुख है। प्रतिज्ञा के रचना एवं प्रकाशन काल में ही शिवरानी नामक वास्तविक विषया से प्रेमचन्द को भी शायी भी हुई थी। इस उपन्यास में प्रेम और विषया विवाह का यथावधान रूप अंकित है। निष्कर्ष रूप में डा० राम रतन मदनगार लिखते हैं—“जो हो यह निरिषय है कि कथा संगठन चरित्र चित्रण और भावों के उत्थान पतन की दृष्टि से यह छोटा उपन्यास साधारण कथा प्रेमी का अतिशय कर देता है।”

सेवासदन का प्रकाशन १९१६ में हुआ। सेवासदन प्रेमचन्द्रजी की
 कम प्रौढ़तम कृति है जिसमें उन्होंने नारी जीवन की मूल एवं व्यापक
 समस्याओं पर प्रकाश डाला है। सेवासदन भारतीय नारी जीवन की पर-
 चिता एक बेरया जीवन को लेकर बसा है। बेरयापृथि के सामाजिक क्लृक
 के काम्यों एवं सुभारथानी जीवन पर विचार किया गया है। सेवासदन में
 मुमन अपने वैसाहिक जीवन से असंतुष्ट होने के कारण बेरयाजीवन स्वीकार
 करती है। वह शारीरिक सुश्रपर नहीं अपितु मानसिक तथा सामाजिक
 सुश्र की ओर मुड़ती है। यह सामाजिक जीवन की मूडी एवं त्यासकी
 मर्यादाओं पर फठारें ध्यग करती है। बेरयाक्षय में आने के बाद यह कहती
 है—“मेरा तो यह अनुभव है कि जितना आदर मेरा अब हो रहा है उसका
 शठारा भी तप नहीं होता था। एक बार सेठ बिमल सास के ठाकुर द्वारे में
 मूझा देखने गई थी। सारी रात बाहर खड़ी भोगती रही। किसी ने मुझे भीतर
 जाने न दिया। लेकिन कल उसी ठाकुर द्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा
 जान पड़ा मानों मर चरणों से वह मन्दिर पवित्र हा गया।”

नारी के कृतिसत जीवन पर सदानुमूति पूरक विचार करते हुए
 और उनके प्रति सामाजिक दायित्व का उपादन करते हुए प्रेमचन्द्र जी
 उपन्यास के पात्र पद्मसिंह द्वारा निधारण भी प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास का
 पात्र पद्मसिंह कहता है—“हमें उनसे पूणा करने का कोई अधिकार नहीं है।
 यह उनके साथ धार अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनाएँ, हमारे ही
 सामाजिक अत्याचार हमारी ही कुप्रथाएँ हैं, जिन्होंने बेरयाओं का रूप धारण
 किया है। यह दासमंडी हमारे ही क्लृपित जीवन का प्रतिबिम्ब, हमारे
 पैसाजिक अथम का साधत स्वरूप है। किस मुँह से उनसे पूणा करें।
 उनका अवस्था बहुत शान्नीय है। हमारा क्लृप्त्र है कि हम उन्हें सुमारी
 पर लावें और उनके जीवन का सुधारें।”

और अन्त में सेवासदन की स्थापना वेदयाओं के सुधार केन्द्र के रूप में
 की गई है। वहा समस्या का समाधान है।

सेवासदन की नायिका मुमन के सम्बन्ध में डा० रामचिन्दास शर्मा ने
 लिखा है—“हिन्दी कथा साहित्य का यह पहली नारी है आ अरम-सम्मान
 की रक्षा के लिए संघर्ष का बगर पर पाँव उठानी है। उसके संघर्ष एवं कुश्लों
 की गाथा कम रोमांचकारी नहीं है। मयपन से ही यह सीधी और निरस

रिश्ते

हाय है। उसकी इच्छाओं को आसानी से छुटकारा उसे एक अर्वाञ्छित पुरुष के हवाले किया जा सकता है। लेकिन उसके भीतर कहीं और नारी का रूप तो रहा था, वह रूप जो भारतीय नारी की विशेषता है, और ठोकर खा कर वह धागा छूटा है। केवल होरी से सुमन की मुझना की जा सकती है। वह नारी है इसीलिये उसके फट्ट उसका रूप होरी से दूसरी तरह के हैं। प्रेमचन्द ने सुमन को एक साँचे में ढकी हुई सुन्दर मूर्ति की तरह पलक के सामने नहीं रख दिया है। यह एक झड़न-भारनेवाली स्वाभिमानी नारी है जो अपने ही नहीं दूसरों के प्रति भी अन्याय सहन नहीं कर सकती।।”

क्यालम्बु के संगठन और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द को इसमें अपूर्व सफलता मिली है। इस सम्बन्ध में डा० रामरतन मदनमर लिखते हैं—‘सेवासदन, प्रेमचन्द का पहला सफल उपन्यास है। और स्थापित उसकी लोकप्रियता ने ही उन्हें उपन्यास-लेखन की ओर विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। इसमें हमें पहली बार प्रेमचन्द की माया और उसकी प्रसाद मुख्य-सम्पन्न सरासरी शैली का परिचय हुआ। साथ ही उपन्यास में नारी की जीवन की असमयता का एक बड़ा ही समर्थ चित्र उपस्थित होता है। सुमन की जीवन गाथा हिन्दू समाज के ऊपर सबसे बड़ा व्यंग है।”

प्रेमाश्रम का प्रकाशन काश् १९२० है। इस उपन्यास में कृपक वर्ग पर उसकी समस्याओं पर मुख्य रूप से विचार किया गया। कृपकों को अज्ञानावस्था और असहायता की दुःखमयी बहानी उसमें वर्णित है जिसमें उनकी अपनी समस्याओं को लेकर खड़ना और आगे बढ़ना है। उस उपन्यास की समस्या भूमि-समस्या है। जमींदारों के शोषण पर अत्याचारों के विरोध में किसान की वफादत करते हुए मायसांकर बढ़ता है—“भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। रामा देश की रक्षा करता है इसीलिए तो इसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप से ले इससे हम आपत्तिजनक व्यवस्था करें। अगर किसी अन्यबग या भेरी को भी इस मित्तिव्यय, जायदाद, अधिकार के नाम पर किसानों का अपना भोग पराध बनाने की व्यवस्था की जाती है तो इस प्रथा को बतमान समाज-व्यवस्था का बलक चिन्ह समझनी चाहिये। जमीन्दार को समझना चाहिये कि वह

प्रजा का माछिक नहीं बरन उसका सेबक है। यही उसके अस्तित्व का उद्देश्य और हेतु है अथवा संसार में इसकी कोई जरूरत न थी, उसके बिना समाज के संगठन में कोई पाषाण न पड़ती। यह इसलिए नहीं है कि प्रजा के पसीने की कमाई को खिलास और विषय-भोग में उड़ाये, उनके टूटे फूटे श्लेषों के सामने अपना ऊँचा महल खड़ा करें उनकी ज़ुन्नता को अपने रत्न-जटित वस्त्रों से अपमानित करें, उनकी संतोषम सरलता को अपने पार्थिव पैमव से लज्जित करें, अपनी स्वात्मनिष्ठा से उनकी झुपा-पीड़ा का उपहास करें अपने स्वर्गों पर आन देखा हो, पर अपने कर्तव्य से अनभिज्ञ हो। ऐसे निरक्षर प्राणियों से प्रजा की जितनी जल्द मुक्ति हो भाय, उनका भार प्रजा के सिर से जितनी ही जल्दी दूर हो उतना ही अच्छा है।”

शिल्प की दृष्टि से यह रचना उष्णकोटि की मही है क्योंकि जीवन के स्वामाधिक क्रम में जो प्रभाव होता है वह बीच-बीच में रुक सा गया है। उपन्यास में बहुत-सी ऐसी अस्वामाधिकता है जो बचाई जा सकती थी फिर भी कृपक जीवन एवं उसकी समस्याओं को चित्रित करने में उपन्यासकार को अपूप सफलता मिली है। इस दृष्टि से यह एक गौरवशाली रचना है। डॉ० रामविज्ञान शर्मा के शब्दों में —

“हिन्दो में इस तरह का उपन्यास किसी ने पहले न लिखा था। एक हा किसानों पर लिखना ही रसराम का अपमान करना था। उस पर किसी खास आदमी को नायक न बनाना और भी अनोखा प्रयोग था। प्रेमचन्द जी ने पाप और पुण्य का राक्षस और देवता नहीं रखे। उन्होंने उस घड़कन को सुना जो करोड़ों किसानों के दिल में हो रही थी। उन्होंने उस अद्भुत पयाथ को अपना क्या-विषय बनाया जिससे भरपूर निगाह देखने का हिमाय ही पड़ो-मड़ो का न हुआ था। उन्होंने दिखाया कि हिन्दुस्तान की साधारण जनता में साहस धीरता और मनाषल के कौन से मोठ छिपे पड़े हैं। प्रेमचन्द जी ने अपना क्या-विषय सुना—सरियों से पीमे हुए टाँके की चेतना का जो अर्थ जान रही थी और उनके हृदय में इन्तान की तरह जल की तीव्र झलझला पैदा कर रही थी। ‘प्रेमाश्रम’ लिखना एक सत्य का काम था। साहित्य का मंडा लिये हुए प्रेमचन्द जो घसे मारा पर वह मरे कि जिसे पहले किसी ने वे न किया था। उनकी प्रथिया का यह प्रमन्ना

रिद्ध

हाथ है। उसकी इच्छाओं को आसानी से कुपझकर उसे एक अर्थाहित पुरुष के हवाले किया जा सकता है। लेकिन उसके भीतर कहीं वीर नारी का रूप सो रहा था, वह वर्षों को भारतीय नारी की बिरोपता है, और ठोकर खा कर वह खारा पठता है। केवल होरी से सुमन की तुलना की जा सकती है। वह नारी है इसीलिये उसके पेट उसका संपन्न होरी से दूसरी तरह के हैं। प्रेमचन्द ने सुमन को एक साँचे में ढकी हुई सुन्दर मूर्ति की तरह पक्षक के सामने नहीं रख दिया है। वह एक लड़न-भारनेवाली स्त्री जन्मी नारी है जो अपने ही नहीं, दूसरों के प्रति भी अन्याय सहन नहीं कर सकती। — 1”

कथावस्तु के संगठन और चरित्र चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द को इसमें अपूर्व सफलता मिली है। इस सम्बन्ध में डा० रामरत्न भटनगर लिखते हैं—‘सेवासदन, प्रेमचन्द का पहला सफल उपन्यास है। और द्वाचित्त उसकी लोकप्रियता ने ही उन्हें उपन्यास-लेखन की ओर बिरोप रूप से प्रोत्साहित किया। इसमें हमें पहली बार प्रेमचन्दो भाषा और उसकी प्रसाव गुण-सम्पन्न सरासरी शैली का परिचय हुआ। साथ ही उपन्यास में नारी जीवन की असमयता का एक पड़ा ही समय बिच उपस्थित होता है। सुमन की जीवन गाथा हिन्दू समाज के ऊपर सबसे बड़ा व्यंग है।’

प्रेमाभ्रम का प्रकाशन काश १९०० है। इस उपन्यास में कुपक बग एवं उसकी समस्याओं पर मुख्य रूप से विचार किया गया। कुपकों को अज्ञानावस्था और असहाय्यता की दुःखभरी बहानी उसमें वर्णित है जिसमें उनको अपनी समस्याओं को लेकर लड़ना और भागे बचना है। उस उपन्यास की समस्या भूमि-समस्या है। जमींदारों के शोषण एवं अत्याचारों के विरोध में किसान की वकालत करते हुए मापसंकर कहता है—‘भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है इसीलिये तो उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, चाहे प्रत्यक्ष रूप से ले इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्यथा या अरेखी को भी इस मिस्त्रियत, आयदाद, अधिकार के नाम पर किसानों का अपना भोग पदा बनाने की व्यवस्था की जाती है तो इस प्रथा को वर्तमान समाज-व्यवस्था का बलक बिन्दू समझनी चाहिये। जमीन्दार को समझना चाहिये कि

प्रजा का माझिक नहीं बरन उसका सेवक है। वही उसके अस्तित्व का उद्देश्य और हेतु है अथवा संसार में इसकी कोई जरूरत न थी, उसके बिना समाज के संगठन में कोई बाधा न पड़ती। वह इसलिये नहीं है कि प्रजा के पसीने की फर्माई को बिलास और विषय-भोग में उड़ाये, उनके टूटे फूटे श्रेयकों के सामने अपना ऊँचा महल खड़ा करे उनकी नुनता को अपने रत्न-अटिठ वस्त्रों से अपमानित करे, उनकी संतोषम सरलता को अपने पार्श्व वैभव से लज्जित करे, अपनी स्वादलिप्सा से उनकी क्षुधा-पीड़ा का उपहास करे अपने स्वार्थों पर जान देता हो, पर अपने कर्तव्य से अनभिज्ञ हो। ऐसे निर्कुरा प्राणियों से प्रजा की अितनी खल्व मुक्ति हो जाय, उनका भार प्रजा के सिर से अितनी ही अल्की दूर हो उतना ही अच्छा है।”

शिल्प की दृष्टि से यह रचना लक्ष्मकोटि की नहीं है क्योंकि जीवन के स्वामाधिक कम में जो प्रभाव होता है वह बीच-बीच में रुक सा गया है। उपन्यास में बहुत-सी ऐसी अस्वामाधिकता है जो मथाई जा सकती थी फिर भी कृपक जीवन एवं उसकी समस्याओं को विव्रित करने में उपन्यासकार को अपूर्व सफलता मिली है। इस दृष्टि से यह एक गौरवशाली रचना है। डा. रामबिलास शर्मा के शब्दों में —

“हिन्दी में इस तरह का उपन्यास किसी ने पहले न किया था। एक ठाँफ़ि सामों पर लिखना ही रसराम का अपमान करना था। उस पर किसी रास आरमी को नायक न बनाना और भी अनोखा प्रयोग था। प्रेमचन्द जी ने पाप और पुण्य के राक्षस और देवता नहीं रचे। उन्होंने उस शकून को मुना जो करोड़ों किसानों के दिख में हो रही थी। उन्होंने उस अद्भुत पयार्थ का अपना कथा-विषय बनाया जिससे भरपूर निगाह देखने का इत्थाव ही पड़ो-पड़ो का न हुआ था। उन्होंने दिखसाया कि हिन्दुस्तान की सामाज्य अनता में साहस धोरता और मनायक के कौन से शोध द्विपे पड़े हैं। प्रेमचन्द जी ने अपना कथा-विषय मुना—सदियों से पीसे हुए दासों की खेतना का जो अथ जाग रही थी और उनके हृदय में इन्सान का तरह जीने की तीव्र साससा पैदा कर रही थी। ‘प्रेमात्मम’ लिखना एक साहस का काम था। साहित्य का मंडा सिधे हुए प्रेमचन्द जी देसे मार्ग पर चल पड़े कि जिसे पहले किसी ने तै न किया था। उनकी प्रतिमा का यह प्रमाण

हाय है। उसकी इच्छाओं को आसानी से कुपलकर उसे एक अवांछित पुत्र के इलाके किया जा सकता है। लेकिन उसके भीतर कहीं भीर नारी का रूप तो रहा था, वह रूप को भारतीय नारी की विशेषता है, और ठोकर खा कर वह जाता छूटा है। केवल होरो से सुमन की दुकाना की जा सकती है। वह नारी है इसीलिये उसके फुट उसका रूप होरो से दूसरी तरह के हैं। प्रेमचन्द ने सुमन को एक साँचे में ठपकी हुई सुन्दर मूर्ति की तरह पलक के सामने नहीं रख दिया है। वह एक छड़ने-भारनेवाली स्वाभाविक नारी है जो अपने ही नहीं, दूसरों के प्रति भी अन्याय सह्य नहीं कर सकती। -- -- ११८"

कथायत्सु के संगठन और चित्र-चित्रण की दृष्टि से प्रेमचन्द को इसमें अपूर्व सफलता मिली है। इस सम्बन्ध में डा० रामरत्न भटनगर लिखते हैं—'सेवासदन, प्रेमचन्द का पहिला सफल उपन्यास है। और कथायत्सु उसकी लोकप्रियता ने ही उन्हें उपन्यास-लेखन की ओर विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। इसमें हमें पहली बार प्रेमचन्दी माया और उसकी प्रसाद गुण-सम्पन्न सशक्त शैली का परिचय हुआ। साथ ही उपन्यास में मारी जीवन की असमयता का एक बड़ा ही समय चित्र उपस्थित होता है। सुमन की जीवन गाथा हिन्दू समाज के ऊपर सबसे बड़ा व्यंग्य है।"

प्रेमाश्रम का प्रकाशन साल १९२२ है। इस उपन्यास में कृष्ण वर्ग एवं नस्ली समस्याओं पर मुख्य रूप से विचार किया गया। कृष्णों को अज्ञानावस्था और असहायता की दुखमरी कहानी इसमें बखिब है जिसमें उनको अपनी समस्याओं को लेकर छड़ना और भागे बड़ना है। इस उपन्यास की समस्या भूमि-समस्या है। जमींदारों के शोषण एवं अत्याचारों के विरोध में किसान की वकालत करते हुए मायाश्रम कहता है—“भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा वरा की रक्षा करता है इसीलिए तो उसे किसानों से कर लेने का अधिकार है, जब प्रत्यक्ष रूप से उसे इससे कम आपत्तिजनक व्यवस्था करे। अगर किसी अन्यथा या भेरी को भी इस मिश्रित, सायदा, अधिकार के नाम पर किसानों का अपना भोग पदाय बनाने की स्वच्छता दी जाती है तो इस प्रथा को बतमास समाज-व्यवस्था का बखिब चिन्ह समझनी चाहिये। जमीन्दार को समझना चाहिये कि वह

पर हृदय धर्म और क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भंडार था। वेह पर मांस न था पर हृदय में विनय, शील और सहानुभूति भरी हुई थी।”

उपन्यास का राजनैतिक पक्ष बढ़ा ही सफल है जो जनता में राष्ट्रीयता की भावना भरने तथा वर्तमान शासन के प्रति अभ्रष्टा और असन्तोष उत्पन्न करने में सक्षम है। प्रेमचन्द जी का यह दृष्टिकोण शुद्ध रूप से देश को राजनीतिक जीवन को प्रेरणा देती है जिस समय “रंगभूमि” में डा० गंगोली गवर्नर से यह कहते हुए पाये जाते हैं “आप पशुबल से मुझे घुप करना चाहते हैं इसीलिये की आप में धम और न्याय का बल नहीं है। आज मेरे दिल से यह विश्वास उड़ गया जो गत बालीस वर्षों से जमा हुआ था कि गवर्नमेंट हमारे ऊपर न्याय यक्ष से शासन करना चाहती है। आज उस न्याय बल की कलाई खूज गई। हमारी आँखा से यह पर्दा उठ गया और हम गवर्नमेंट को उसके नमन-भावरागीन रूप में देख रहे हैं। अब हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि केवल हमको पिस कर तेरा निकालने के लिये, हमारा अस्तित्व मिटाने के लिये हमारी सम्पत्ता और हमारी मनुष्यता की हत्या करने के लिये हमको अन्तकाल तक बक्की का बेल घनाये रखने के लिये हमारे ऊपर राज्य किया जा रहा है।”

“रंगभूमि” एक पूरक उपन्यास होते हुए भी कला की दृष्टि से सफल है स्वाभाविकता के विकास में कहीं भी बाधा नहीं पहुँचती। कथानक बल पर विचार करते हुए ५० नन्दुसारे वाजपेयी कहते हैं “छोटी घटनाओं को लेकर लम्बे-लम्बे अप्पाय लिखे गये हैं जिससे कथावस्तु आकर्षकता से अधिक क्षम्यी हो गई है। समस्त मुख्य घटनाओं का लेकर प्रस्तुत आकाश के आधे में सारा उपन्यास खिरा जा सकता था।”

रंगभूमि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध उपन्यासकार भी श्रवणभरण जैन लिखते हैं—“रंगभूमि मेरी राय में एन्टी का नहीं हिन्दुस्तान का सयसे अच्छा उपन्यास है रंगभूमि में कहानी है काव्य है विज्ञासीकी है, मनोविज्ञान है और बूँदने पर नोक, धम और सोशलिज्म का भी बहुत-सा मसला मिठा जायगा। “रंगभूमि” हमारे जिन्दगी का ग्राहा है जिसके ओड़ की कल्पना येकरे के “यमिटी फेयर” में और मेरी कारेली के “बेराबेदा” में जरा-जरा मिला आय करना दुनिया में कहीं नहीं मिलेगी।”

है कि उन्होंने जो साहस किया, वह दुःसाहस साबित नहीं हुआ। 'प्रेमाभ्रम' एक अत्यन्त लोकप्रिय उपन्यास के रूप में आज भी जीवित है।"

रंगभूमि—इसका प्रकाशन सन् १९२४-२५ माना गया है। सन् ३० के स्वतन्त्रता आन्दोलनके पूर्व यह उपन्यास लिखा गया था। कथानक विराट् एवं उपन्यास गूढ़ है। प्रेमचन्द को का कोई उपन्यास इतना विराट् नहीं है। स्वतन्त्रता आन्दोलनके पूर्व की समस्त राजनैतिक एवं समाज की समस्याओं का विश्लेषण इस उपन्यासके विराट् पट पर चित्रित किया गया है किन्तु मुख्य समस्या औद्योगिकरण, उसका परिणाम तथा भारतीय रियासतों की समस्या है। प्रस्तुत उपन्यास में गाँधीवादी विचारों की द्वाप सत्र परिलक्षित होती है।

सूरदास इस उपन्यास का गौरवशास्त्री चरित्र है। सूरदास की दृढ़ता, दृढ्य की पवित्रता एवं परोपकारिता एक स्थायी प्रभाव छोड़ती है। सूरदासके व्यक्तित्वके सम्बन्ध में 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द की कहते लिखते हैं—“हाँ, वह साधु न था, महात्मा न था, फरिश्ता न था, एक भुट्ट, शक्तिहीन प्राणी था, चिन्ताओं और वापसों से घिरा हुआ—जिसमें अविश्वसनीय भी थे गुण भी। गुण कम थे अविश्वसनीय बहुत, लोभ, मोह, अहंकार ये सभी दुःगुण उसके चरित्र में भरे हुए थे। गुण केवल एक था। किन्तु ये सभी उस एक गुणके सम्पर्कसे नमक की खान में जाकर नमक हा जानेवाली वस्तुओंके समान वेब गुणोंका रूप धारण कर लेते थे, श्लेष सत्श्लेष हा जाता था, काम सद्गुराग, मोह, सदुत्साहके रूपमें प्रगट होता था अहंकार आत्ममिमानके घरा में। और यह गुण क्या था? न्याय, प्रेम, सत्य मर्तिक उपकार, दृढ़ या उसका जो नाम चाहे रख लीजिये, अन्यथा देखकर बससे न रहा जाता था, अनीति उसके लिये असह्य थी। दूसरे स्थान पर पुनः सूरदासको रंगभूमि का खिन्नाड़ी प्रस्तुत करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है “यह खिन्नाड़ी जिसके माथे पर कमी मीठ न आई, जिसने कभी हिम्मत न हारी, जिसने कमी कर्म पीछे नहीं हटाये, जीता तो प्रसन्न चित्त रहा, हारा तो जीतनेवालोंसे खोरा नहीं रखा जीता तो हारने वालों पर ताकियाँ नहीं बसाई, जिसने खेड़ में सड़क नीति का पालन किया कमी घाँसही नहीं की, कमी इन्द्री पर छिप कर चोट नहीं की। मिथ्या था, अर्पण था, अंधा था दीन था कमी अरपेट दाना नहीं मसीब हुआ कमी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला,

गया है। कथा-संगठन एवं मन-स्थितियों तथा परिस्थितियों के चित्रण की दृष्टि से उपन्यास आकार में छोटा होते हुये भी विशिष्ट है। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में "निमला प्रेमचंद के कथा साहित्य के विकास में एक मार्ग चिह्न है। यह पहला उपन्यास है जिसमें किसी सेवासदन या प्रेमाभ्रम का निर्माण करके पाठक को मूढ़ी सान्त्वना नहीं दी। कहानी अपने निर्मल ठर्क-संगत परिणाम की तरफ अचिराम गति से बढ़ती जाती है। उन्होंने कहानी लिखने में यथार्थवाद को पूरी तरह निषेधा है। यह अतिशय यथार्थवाद नहीं है, क्योंकि निमला और मन्साराम में काफी निष्क्रियता है। सुमन की तरह वे उपन्यास का प्रतिकार करने नहीं बढ़ते। फिर भी यथार्थवाद को लाने और पुष्ट करने में 'निमला' का महत्वपूर्ण स्थान है। यह उपन्यास असहयोग-आन्दोलन की असफलता के बाद लिखा गया था और माहिर करता है कि किस तरह हिन्दी लेखक फलित समाचारों से संतुष्ट न होकर यथार्थ जीवन का सामना करने के लिये आगे बढ़ रहे थे।"

कर्मभूमि की रचना सन् १९३०-३२ की है। कर्मभूमि का आधार-कलकत्ता पड़ुत ही दिखता हो गया है। इसमें अनेक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को रखा गया है जो सामाजिक परिस्थितियों की उपज थी। कर्मभूमि का घरातल अधिक यथार्थवादी है।

इस उपन्यास में प्रेमचंद जी राजनीतिक जीवन की समस्याओं का नया दृष्टि देते जान पड़ते हैं। स्वाधीनता आन्दोलन एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन की व्यापकता पर विचार प्रगट किया गया है। राष्ट्रीय चेतना का जन जीवन पर स्पष्ट प्रभाव

वस्तु-विन्यास की दृष्टि से इसे कई आलोचकों ने शायिल स्वीकार किया है किन्तु अरिच चित्रण की दृष्टि से उपन्यास सफल है। उपन्यास में आधी हुई बुद्ध मारियों का परिग्र-चित्रण बड़ा ही सुन्दर है जो प्रेमचंद जी के नारी-संबंधी दृष्टिकोण एवं भावनाओं का परिचायक है।

गोदान—गोदान का रचना काल १९३६ है शिन्धु विधान, कलात्मक प्रौढ़ता एवं अक्षर की दृष्टि से प्रेमचंद जी का यह सर्वोत्तम उपन्यास है। अपनी विशिष्टता के कारण यह कृति विश्व-साहित्य के औपन्यासिक कृतियों में एक है। गोदान में भारतीय ग्राम्य जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया

अपराध—इसमें जीवन की आधुनिक चरित्रकार की बातों की ओर संकेत है और साथ ही साथ सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याएँ भी चित्रित की गई हैं। पूर्व जीवन संघर्षी विचार एवं धारणाएँ तथा सामाजिक जीवन की प्रेम विवाह एवं राजनीतिक समस्याओं पर विचार किया गया है जिसमें साम्प्रदायिकता की विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला गया है। मानवता इससे बड़ी है। एक स्थान पर चरित्रकार कहता है। “मैं तो नाति को ही बर्मे समझता हूँ और सम्प्रदायों की नीति एकसो है—बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है जितना बुरे मुसलमान से हिन्दू है।”

चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह रचना पूर्व उपन्यासों से प्रौढ़तर है।

गहन—एक यथार्थवादी दृष्टि है जिसमें मध्यवर्गीय जीवन एवं समाज की तमाम सथाइयों को मूलरूप में व्यक्त किया है। दयानाथ के परिवार एवं परिस्थिति को देखकर कोई मध्यवर्गीय परिवार अपनी जीवन-शैली देख सकता है। यह घटना-चरित्र प्रधान उपन्यास है। गतिशील चरित्रों के सफल चित्रण के कारण घटनाओं एवं चरित्रों का विकास साथ-साथ चलता है। मूलरूप से आधुनिक प्रियता की समस्या को छेते हुये प्रेमचंद जी उपन्यास में नारी जीवन की उन मूल समस्याओं को छोड़ नहीं सके हैं जिनका जीवन पूर्व उपन्यासों में वर्णित है, वह है दूध विवाह, वैधव्य एवं बेरया जीवन की समस्या।

प्रस्तुत उपन्यास में नारी जीवन का आदर्श एवं दृष्टिकोण बहुत ऊँचा है। धारणा, अंगो, सोहरा और रतन सब की भावनाएँ विचार एवं जीवन दर्शन अलग-अलग एवं अलग-अलग चरित्रों का है। सामाजिक विपत्तियाँ मले ही हो किन्तु मूल जीवन ही उनका वास्तविक जीवन है।

बेश प्रेम के छिये त्याग करने वाले व्यक्तियों के जीवन तथा व्यवहार में कितना अन्तर है इसको प्रेमचंद जी निर्भिकता पूर्वक देवीदीन के माध्यम से यथार्थ रूप में रखा है।

इस रचना के संपन्ध में विराट् विवेचन के छिये पुस्तक की समीक्षा देखिये।

निर्मला एक छोटा सा उपन्यास है। जिसमें नारी जीवन की मनो वैज्ञानिक एवं सामाजिक समस्या पर पूरा प्रकाश डाला गया है। इहोय प्रया और दूध-विवाह की सामाजिक कुप्रथाओं का कारणात्मक चित्र उपस्थित किया

गया है। कथा-संगठन एवं मन-स्थितियों तथा परिस्थितियों के चित्रण की दृष्टि से उपन्यास आकार में छोटा होते हुये भी विशिष्ट है। डॉ० रामविलास शर्मा के शब्दों में "निमला प्रेमचंद के कथा साहित्य के विकास में एक मार्ग चिह्न है। यह पहला उपन्यास है जिसमें किसी सेवासदन या प्रेमाभ्रम का निमाण करके पाठक को झूठा सान्त्वना नहीं दी। कहानी अपने निर्मल ठक-संग्रह परिणाम की तरफ अविराम गति से बढ़ती जाती है। उन्होंने कहानी लिखने में यथार्थवाद को पूरी तरह नियाहा है। यह अतिकारी यथाथवाद नहीं है, क्योंकि निमला और मन्साराम में काफी निष्कियता है। सुमन की तरह वे अन्याय का प्रतिहार करने नहीं बढ़ते। फिर भी यथार्थवाद को खाने और पुष्ट करने में 'निमला' का महत्वपूर्ण स्थान है। यह उपन्यास असहयोग-आन्दोलन की असफलता के [याद] लिखा गया था और जाहिर करता है कि किस तरह हिन्दा श्रेष्ठक फलित समाधानों से संतुष्ट न होकर यथार्थ जोषन का सामना करने के लिये आगे बढ़ रहे थे।"

कर्मभूमि की रचना सन् १९३०-३२ की है। कर्मभूमि का आधार-फुलक पट्ट हो विस्तृत हो गया है। इसमें अनेक सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं को रखा गया है जो सामाजिक परिस्थितियों को उपज थी। कर्मभूमि का घरातल अधिक यथाथवाद है।

इस उपन्यास में प्रेमचंद जी राजनीतिक जीवन की समस्याओं का नया हल ढूँढते जान पड़ते हैं। स्वाधीनता आन्दोलन एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन की व्यापकता पर विचार प्रगट किया गया है। राष्ट्रीय चेतना का जन जीवन पर स्पष्ट प्रभाव

वन्दु-विन्यास की दृष्टि से इसे कई आलोचकों ने शिथिल स्वीकार किया है किन्तु परित्र चित्रण की दृष्टि से उपन्यास सफल है। उपन्यास में आपी हुई कुन्द नारियों का परित्र-चित्रण बड़ा ही सुन्दर है जो प्रेमचंद जी के नारी संघर्षी दृष्टिकोण एवं भावनाओं का परिष्कार है।

गोदान—गोदान का रचना काल १९३६ है शिल्प विधान, कलात्मक प्रौढ़ता एवं शैली की दृष्टि से प्रेमचंद जी का यह सर्वोत्तम उपन्यास है। अपनी विशिष्टता के कारण यह दृढ विरव-साहित्य के औपन्यासिक कृतियों में एक है। गोदान में भारतीय ग्राम्य जीवन का यथार्थवादी चित्रण किया

बेटी छोना तथा रूपा और उसकी खीचन सगिनी धनिया। माई ये वे भ्रमण हो गये थे। जीवन में न कोई सुख है न शांति, आजीवन परिस्थितियों एवं सामाजिक मर्यादाओं के बीच संघर्ष करता है। यह अपना जीवन श्रमणप्रवृत्ति में व्यतीत करता है। दरघाजे पर गऊ रखने, नित्य उसके दशन एवं सेवा करने की उसकी हार्दिक खालसा है किन्तु प्रकृति के क्रूरतम प्रहारों एवं दुर्भाग्य के झोंकों में यह खालसा पूरा नहीं हो पाती अपितु यह खालसा ही उसका दम खोकर चैन लेती है।

होरी के खीचन के साथ ही राय साहब अमरपाल सिंह की कथा वर्णित है जो अमादार हैं जिनकी जमींदारी में होरा रहता है। जमींदारों के बिलास प्रिय जीवन एवं उनकी जमींदारों में बसने वाले कृषकों के प्रति भावनाओं तथा व्यवहार का चित्रण किया गया है।

पूरे उपन्यास में दो कथाएँ चलती हैं—एक होरी की कथा और दूसरे जमींदार अमरपाल सिंह एवं उनके मित्रों की कथा जिनमें खन्ना, प्रो० मेहता और माझगी मुख्य हैं। दोनों कथाओं का परस्पर संबंध है जिसमें नागरिक जीवन तथा ग्राम्य जीवन की विरोधताएँ प्रगट की गई हैं—इन दो कथाओं के आधार पर वस्तु संगठन की दृष्टि से इस उपन्यास की अत्यधिक बर्षा है और आलोचकों के मत स्थिर नहीं हैं।

गोदान के चरित्र बड़े ही उत्कृष्ट एवं सफल हैं। वर्गीय जीवन की विरोधताओं का दिखलाने के लिये वर्गीय चरित्रों की सृष्टि की गई है। इन चरित्रों की सबसे बड़ा विरोधता उनका यथार्थवादी रूप है।

होरी कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। यह कृषक वर्ग को विवराता एवं शोषण का प्रतीक है। एक सीधा-सादा सरल किसान जो सामाजिक मर्यादाओं में घँसा हुआ सामाजिक मूल्यों में विश्वास करता हुआ किस प्रकार निरन्तर परिस्थितियों के आगे विवरा हो जाता है इसी जीवन को होरी से माध्यम से चित्रित किया गया है।

होरी के जीवन की विरोधता उसकी सामाजिक मर्यादा है। सामाजिक संघर्ष, विश्वासों और स्वधियों में विश्वास करता है। यह अपने परिवार को दुरी एवं विपन्न देख सकता है किन्तु दूसरों के आगे अपनी मर्यादा एवं परिभाषा का अचना नहीं चाहता। यह मानवता एवं मानवताय मूल्यों का प्रबल समर्थक है। होरी स्वयं मानवता का प्रतीक है उस में अंतिम त्याग,

गया है। कृपक जीवन की आर्थिक पराधीनता एवं सामाजिक शोषण की कल्पना गाथा का चित्रण ही इस उपन्यास का मूल उद्देश्य है।

इस उपन्यास में कृपक वर्ग का प्रतिनिधि पात्र होरी है। होरी के जीवन के माध्यम से कृपक वर्ग की सम्पूर्ण विवशताओं तथा सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का मर्मस्पर्शी यथार्थ जीवन प्रस्तुत किया गया है। भारतीय कृपक जीवन जीवन वर्णन एवं समस्याएँ एक जगह आकर होरी के जीवन में एकत्रित हो गई हैं।

गाँवों के प्रति प्रेमचन्द की स्वाभाविक ममता थी। गाँवों का सौन्दर्य, उसकी प्रकृति एवं सोते आगते मूक चरित्रों को सर्व प्रथम प्रेमचन्द जी ने वाणी प्रदान की। गोदान में कृपक जीवन एवं ग्राम्य जीवन का पूरा चित्र साकार हो उठा है। ग्राम्य जीवन का ऐसा मार्मिक और संवेदनशील जीवन-चित्रण हिन्दी के किसी अन्य उपन्यास में उपलब्ध नहीं है। कृपकों के कारुणिक जीवन पर यथार्थवादी दृष्टिकोण से विचार किया है। गोदान में कृपकों का कठण जीवन-चित्र देखिये—

“बछते फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, क्योंकि पिसना और घुटना उनकी तकदीर में लिखा था। जीवन में न कोई आराम है न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के साते सूख गये हों और सारी हरियाली मुरझा गयी हो। जेठ के दिन हैं अभी तक खलिहानों में अनाथ मौजूद है पर किसी के चेहरे पर खुरी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहानों में ही घुलकर महामानों एवं कारिम्बों को भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है वह भी बसतों का हा है। भविष्य अंधकार की मूर्ति उनके सामने है। उनमें उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। सारी चेठनाएँ शिथिल हो गई हैं। सामने जो कुछ मोटा-मोटा अन्धा है निगल जाते हैं उसी तरह जैसे श्वन कोयला निगल जाता है। उनके घँट घूनी चोकर के बगैर नाँद में मुह नहीं डालते, मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने का चाहिये, स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है, उनके जीवन में स्वाद का छाप हो गया है। (गोदान 'पृष्ठ' ४६१)

इन्हीं परिस्थितियों के बीच पल रहे होरी के जीवन की कहानी इस उपन्यास में वर्णित है। होरी का एक छोटा सा परिवार है, पुत्र गोबर और

पेटी सोना तथा रूपा और उसकी जीवन संगिनी धनिया। भाई धे धे अहाग हो गये थे। जीवन में न कोई सुख है न शांति, आजीवन परिस्थितियों एवं सामाजिक मर्यादाओं के बीच संघर्ष करता है। वह अपना जीवन अष्टांगप्रस्तता में व्यतीत करता है। दरवाजे पर गऊ रखने, नित्य उसके दरान एवं सेवा करने की उसकी दार्दिक लालसा है किन्तु प्रकृति के क्रूरतम प्रहारों एवं दुभाग्य के झोंको में यह लालसा पृथ नहीं हो पाती अपितु यह लालसा ही उसका दम लोडकर घेन लेती है।

होरी के जीवन के साथ ही राय साहब अमरपाल सिंह की कथा वर्णित है जो जमींदार हैं जिनकी जमींदारी में होरा रहता है। जमींदारों के खिलास प्रिय जीवन एवं उनकी जमींदारी में बसने वाले कृषकों के प्रति भावनाओं तथा व्यवहार का चित्रण किया गया है।

पूरे उपन्यास में दो कथाएँ चलती हैं—एक होरी की कथा और दूसरे जमींदार अमरपाल सिंह एवं उनके मित्रों की कथा जिनमें ग्यन्ता, प्रो० मेहता और मालवी मुख्य हैं। दोनों कथाओं का परस्पर संबंध है जिसमें नकारिक जीवन तथा ग्राम्य जीवन की विशेषताएँ प्रगट की गई हैं—इन दो कथाओं के आधार पर वस्तु संगठन की दृष्टि से इस उपन्यास की अत्यधिक खर्षा है और आलोचकों के मत स्थिर नहीं हैं।

गोदान के चरित्र बड़े ही छद्म एवं सफल हैं। वर्गीय जीवन की विशेषताओं को दिखलाने के लिये वर्गीय चरित्रों की सृष्टि की गई है। इन चरित्रों की सबसे बड़ा विशेषता उनका यथार्थवादी रूप है।

होरा कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। वह कृषक वर्ग की विचाराता एवं शांति का प्रतीक है। एक सीधा-सादा सरल चिन्तन जो सामाजिक मर्यादाओं में बंधा हुआ सामाजिक मूल्यों में विश्वास करता हुआ किस प्रकार निरन्तर परिस्थितियों के आग विचर हो जाता है इसी जीवन को होरी से माध्यम से चित्रित किया गया है।

होरी के जीवन की विशेषता उसकी सामाजिक मर्यादा है। सामाजिक र्थपनों विश्वासों और त्दियों में विश्वास करता है। वह अपने परिवार को दुःखी एवं विपन्न देता सकता है किन्तु दूसरों के आगे अपनी मर्यादा एवं विस्थाओं का बचना नहीं चाहता। वह मानवता एवं मानव मूल्यों का प्रबल समर्थक है। होरी स्वयं मानवता का प्रतीक है वस में अन्तम स्थान,

प्रेम एवं ममता है। वह बाहर से दृढ़ता है किन्तु भीतर से कमी हार नहीं मानता। जीवन से संघर्ष करने के लिये उसमें अदम्य छसाह है—वह छसाह ही उसके जीवन की प्रगतिशीलता का छसाहरण है। विवशता एवं असफलता ही उसके जीवन की सफलता है। हारो का जीवन भारतीय कृषक जीवन का गौरव है। जिसकी पवित्रता के आगे हृदय भद्रा एवं सहानुभूति से मर बैठता है।

प्रेमर्षद्व की को परिवारिक जीवन प्रिय था। परिवार की साधकता एवं उसकी प्रेमसत्ता का विश्रण बन्हींने अपना रचनाओं में किया है। उनका विश्वास था कि जीवन के संतुलन के लिये परिवार चाहिये, परिवार की मयादा चाहिये—और जीवन के सुख दुःख में साथ देने वाली विश्रसंगिनी चाहिये। हारो का भी अपना परिवारिक जीवन है धनिया उसकी जीवनसंगिनी है। धनिर-विपन्नता को मर्यादा में बचाकर नहीं रखना चाहती वह हारो से कई कदम आ समाज को देखती है। मानव मन को परखने और जीवन को देखने की चेष्टा उनके मन में सबैव रहती है। अन्याय और वैषम्य के प्रति हारो का सबै सचेत करती है। वह अपनी वरिष्ठता एवं विपन्न जीवन को अच्छी तरह समझती है किन्तु हर जगह हाथ जोड़कर समपण कर विपन्नता को बढ़ान नहीं चाहती है। जब हारो अपने अनाम पंचों का भेंट करने के लिये जाता है तो वह राक कर कहती है—

“अच्छा, अब रहने दो। हाँ तो तुझे विरादरी की लाव। वरुणों के लिये भी कुछ छोड़ोगे कि सब विरादरी के माद में भौंक होगे। मैं तुमसे हात बाली हूँ। मेरे माम्य में तुम्ही जैसे कुछ का संग लिखा था। -- “मर मरकर हमने कमाया पहर रात-रात को सींचा आगारा, इसीलिये कि पंच शोग मूखों पर धाब देकर भोग लगावें और हमारे बपचे दो बाने को तरसें। तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया है। मैं भी अपनी पविषयों के साथ सवो हुई हूँ। सींचे टोकरी रख दो, नहीं आब सदा के लिये नत्ता दूट जायगा। अरे देवी हूँ - - ।”

इस प्रकार हम देखते हैं कि धनिया हिन्दू गृहस्थ की परिवार पवित्र नारी रूप में एकदृष्ट अमूल्य वरिष्ठ लेकर हमारे सम्मुख आती है।

उसके अलावा गोवर बहसते हुये समाज के नयी पीढ़ी का नवयुवक है। श्री ० सेहता भी गम्भीर विचारक एवं भारतीय जीवन के योग्य तथा के रूप में माझशी नये नारी समाज की बन्धु शिषि नवयुवती के रूप में आता है।

वर्गीय-चरित्रों की विशेषताओं का सफल चित्रण इसमें मिलता है।
गोदान का 'होरी' साहित्य का अविस्मरणीय अमर पात्र है।

गोदान में होरी के जीवन के माध्यम से भारतीय ग्राम्य जीवन की सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है। अन्याय एवं वैषम्य की परिस्थितियों में जूझते हुए किसानों की दशा मानवता के छानोनुकूल जीवन की कथा है। इसके अतिरिक्त इसमें कई एक अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। नागरिक जीवन को कथा को ग्राम्य-कथा से जोड़कर नागरिक जीवन के बद्दलते हुए नैतिक-मूल्य एवं वैचारिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार से सामाजिक समस्याओं का भा प्रभाव पूर्ण अंकन हुआ है जिनका प्रभाव ग्रामीण जीवन पर स्पष्ट था। ग्राम्य जीवन की परिस्थितियों एवं समस्याओं का यथार्थवत् चित्रण ही उपन्यास की सफलता है। प्रेमचंद की की कलात्मक अभिव्यक्ति के शिक्षक के रूप में यह उनका सब श्रेष्ठ कृति है।

मंगल मूत्र प्रमर्शद की का अंतिम और अपूर्ण उपन्यास है। इसमें साहित्य-छायाक देव कुमार के पारिवारिक जीवन का कहानी चार अध्यायों में बखिटा है।

प्रेम एवं ममता है। वह बाहर से दृढ़ता है किन्तु भीतर से कभी हार नहीं मानता। जीवन से संघर्ष करने के लिये उसमें अहम्य उत्साह है—यह उत्साह ही उसके जीवन की प्रगतिशीलता का अन्वहारण है। विचलता एवं असफलता ही उसके जीवन की सफलता है। हारो का जीवन भारतीय रूप-जीवन का गौण है। जिसकी पवित्रता के आगे हारय मन्दा एवं सहजुर्भाव से मर सकता है।

प्रेमसंबंध को का परिवारिक जीवन प्रिय था। परिवार की सायकता एवं उसको प्रेमसत्ता का पित्राण बन्धाने अपनी रचनाओं में किया है। इनका विरपात था कि जीवन के संतुलन के लिये परिहार चाहिये, परिवार की मर्यादा चाहिये और जीवन के सुख दुःख में साथ देने वाला चिरसंगिनी चाहिये। हारो कभी अपना परिवारिक जीवन ही धनिया उसकी जीवनसंगिनी है। धनिया विपन्नता का मर्यादा में वृद्धाकर नहीं रखना चाहती वह हारो से कई कर्म एवं समाज का देखती है। मानव मन को परखने और जीवन को पहचानने की चेष्टा उनके मन में सदैव रहती है। अन्याय और वैयम्य के प्रति हारो को सदैव सचेत करती है। वह अपनी दृढ़ता एवं विपन्न जीवन को अच्छी तरह समझती है किन्तु हर अगह हाथ जोड़कर समर्पण पर विपन्नता को स्वीकार नहीं चाहती है। जब हारो अपने अनाज पशुओं को मोंट करने के लिये जा जाता है तो वह रोकर रहती है—

“अच्छा, अब रहने दो। दो तो तुझे विरादरी की आज। एकदो के लिए तो कुछ प्रोढ़ोगे कि सब विरादरी के भाइ में मोंक होगे। मैं तुमसे हम जाती हूँ। मेरे माथ में तुम्ही जैसे बुद्ध का संग लिखा था। —” मर मरकर हमने कमाया पहर राय-राय को सीखा अगोरा, इसीलिये कि पंच लोग मूर्ख पर दाब देकर भाग अगावें और हमारे पक्षे वा बल्ले को वरसें। तुमने अपने ही सब कुछ नहीं कर लिया है। मैं भी अपनी पक्षियों के साथ सदा हूँ ही सीमे टाकती रह दो, मही आज सदा के लिये मरता दृष्ट जायगा। व वेतो हूँ —”

इस प्रकार हम बोलते हैं कि धनिया हिन्दू गृहस्थ की परिवार पवित्र नम रूप में उत्कृष्ट अन्वय चरित्र लेकर हमारे सम्मुख आती है।

उसके अलावा गोबर पदार्थों के समान के मयी पीढ़ी का नवपुत्रक है प्रो० मेहता भी गम्भीर विचारक एवं भारतीय जीवन के पोषक तथा के रूप मासुकी नये मारी समाज की उत्कृष्ट शिक्षित नवपुत्री के रूप में आता है।

कर्णोप-चरित्रों की विशेषताओं का सफल चित्रण इसमें मिलता है।
 गेहान का 'होरी' साहित्य का अविस्मरणीय अमर पात्र है।

गोदान में होरी के जीवन के माध्यम से भारतीय ग्राम्य जीवन की सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है।
 ग्रन्थाय एवं वैयक्तिक परिस्थितियों में जूझते हुये किसानों की दशा मानवता के हामोन्मुख जीवन की कथा है। इसके अतिरिक्त इसमें कई एक अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। नागरिक जीवन की कथा को ग्राम्य-कथा से जोड़कर नागरिक जीवन के पदसते हुये नैतिक-मूल्य एवं वैचारिक घुसमूँ में पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार से सामाजिक समस्याओं का भी प्रभाव पूर्ण अंकन हुआ है जिनका प्रभाव ग्रामीण जीवन पर स्पष्ट था। ग्राम्य जीवन का परिस्थितियों एवं समस्याओं का यथार्थवत्ता चित्रण ही उपन्यास की सफलता है। प्रेमचंद जी का कलात्मक अभिव्यक्ति के शिखर के रूप में यह उनका सर्व श्रेष्ठ कृति है।

मंगल मृत प्रेमचंद जी का अंतिम और अपूर्ण उपन्यास है। इसमें साहित्य साधक देव कुमार के पारिवारिक जीवन का कहानी चार अध्यायों में वर्णित है।

